पालि साहित्य का इतिहास

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—७१

पालि साहित्य का इतिहास

लेखक
स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६२

+

मूल्य
पांच रुपये

+

मुद्रक
विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा) लि
मानमन्दिर वाराणसी–१

प्रकाशकीय

महापण्डित (स्वर्गीय) श्री राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्रणीत इस ग्रन्थ में बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कितनी ही महत्त्वपूर्ण कृतियों की चर्चा की गयी है और भगवान् बुद्ध के वचनों उपदेशों एवं उनके जीवन की कतिपय विशिष्ट घटनाओं का मनोरंजक ढंग से विवेचन किया गया है।

राहुल जी किस तरह पालि साहित्य और बौद्धधर्म के विद्वानों के सम्पर्क में आए इस पर उनकी पत्नी श्रीमती कमला सांकृत्यायन ने यथेष्ट प्रकाश डाला है। बौद्ध धर्म के विशद अध्ययन की तीव्र इच्छा उनके मन में लद्दाख की यात्रा के बाद उत्पन्न हुई। इसके लिए उन्होंने न केवल भारत के ही बौद्ध तीर्थों का भ्रमण किया, वरन् लंका, नेपाल तिब्बत आदि के भी विभिन्न स्थानों का परिभ्रमण किया। तिब्बत की यात्राओं में उन्हें प्रचुर सामग्री मिली और कितने ही मूल्यवान् संस्कृत ग्रन्थों के मूल तथा अनुवाद उपलब्ध हुए जो भारत में लुप्त हो चुके थे। उन्होंने अंग्रेजी फ्रेंच आदि भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों तथा जर्नलों के पृष्ठों को भी छान डाला और पत्राचार मेल-मिलाप आदि के सहारे भी अपने बौद्ध धर्म-सम्बन्धी ज्ञानभण्डार की अभिवृद्धि की। इस विषय पर उनके द्वारा लिखित दर्जनों ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं। प्रस्तुत रचना भी उनके इसी गंभीर अध्ययन का परिणाम है। इसमें बुद्ध भगवान् के वचन उनसे पूछे गए अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर और यात्राओं के वर्णन ऐसे ढंग से दिये गए हैं, जिनसे मनोरंजन भी होता है और साथ ही ऐसे उपदेश भी मिलते

है, जिससे जीवन को कल्याणकारी दिशा में मोड़ सकने में अभीष्ट सहायता मिलती है।

शीघ्रता में लिखी जाने के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी थीं जिन्हें दूर करने में काशीस्थ संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी ने अत्यधिक परिश्रम किया है। इसके प्रूफ-संशोधन में भी उन्होंने हमारी सहायता की है, जिसके लिए हम हृदय से उनके अनुगृहीत हैं।

ठाकुरप्रसाद सिंह
सचिव हिन्दी समिति

बौद्ध-साहित्य को राहुल जी की देन

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा गया है कि आज से सौ वर्ष पहले पालि नाम की कोई भाषा नहीं थी। सदियों से चटगांव और हिमालय के कुछ इलाकों के लोगों के सिवा बौद्ध धर्म और पालि भाषा का नाम भी भारत भूल बैठा था। बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने दशावतार में बुद्ध को एक अवतार बना दिया था। बुद्ध का नाम परवर्ती काल में कभी-कभी सुनाई पड़ जाने पर भी पालि भाषा का नाम शायद ही सुनने में आता था। चटगांव के बौद्ध अपने धार्मिक ग्रन्थ मूल भाषा पालि में पढ़ते थे किन्तु और कहीं इनके अस्तित्व का पता न चलता था।

सन् १८८० ई० के बाद चण्डीचरण सेन नवीनचन्द्र सेन गिरीशचन्द्र घोष ने बंगला में बुद्ध की जीवनी, उन पर कविताएँ और नाटक लिखे। इसके कुछ बाद ही बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान और बौद्ध तीर्थों के उद्धार के उद्देश्य से अनागारिक धर्मपाल कलकत्ते में रह कर अपना काम करने लगे। भारत की राजधानी में बुद्ध बौद्ध धर्म पालि भाषा और साहित्य का नाम अब कुछ अधिक सुनने में आने लगा। विलायत से मैक्स मूलर ने (Sacred Books of the East) में पालि के कितने ही ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराये। लंका के सिविलियन रीज डेविड्स दम्पती ने पालि टेक्स्ट सोसायटी स्थापित कर मूल त्रिपिटक और उसका अंग्रेजी अनुवाद छापना शुरू किया। वसिलियेफ और उनके शिष्य मिनाएव ने रूस में बौद्ध साहित्य का काम आरम्भ किया था। १८८० ई० के बाद ही रूस की तत्कालीन राजधानी सेन्ट पीटर्सबुर्ग में 'बिब्लियोथेका बुद्धिका' ग्रन्थमाला में संस्कृत तिब्बती आदि के बौद्ध ग्रन्थ उनके अनुवाद श्चेर्बात्स्की सिल्वाँ लेवी वोगीहारा डेनीसन रास आदि के सम्पादकत्व

में निकलने लगे। फ्रांस बेलजियम जर्मनी भी इस दिशा में काम करने लगे।

इसी समय चटगांव-निवासी और दार्जिलिंग प्रवासी शरच्चन्द्र दास 'बुद्धिस्ट टेक्स्ट सोसाइटी' स्थापित करके संस्कृत तिब्बती और अंग्रेजी में बौद्ध साहित्य का सम्पादन और अनुवाद प्रकाशित करने लगे। दास ने दो-दो बार तिब्बत की यात्रा की थी वह तिब्बती के बहुत बड़े विद्वान् थे।

फरीदपुर (पूर्वी बंगाल) निवासी महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण संस्कृत तिब्बती और पालि के महान् विद्वान् हो गये हैं। कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल रहते समय उन्होंने बड़े परिश्रम से पालि पढ़ी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से इस विषय में एम० ए० करना चाहा। उन दिनों विश्वविद्यालय कितने ही विषयों में एम० ए० की परीक्षा तो लेता था लेकिन उनके पढ़ाने की व्यवस्था वहाँ न थी। पालि का प्रश्नपत्र बनाने और परीक्षक बनने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से रीज डेविड्स साहब को लिखा गया। उन्होंने लिखा कि यहीं कलकत्ते में यह काम बड़ी आसानी से विद्याभूषण महाशय से कराया जा सकता है। बाद में उन्हें लिखा गया कि परीक्षार्थी स्वयं वे ही हैं तो वे प्रश्नपत्र बनाने और परीक्षक बनने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। आगे चल कर भारत में पालि के प्रथम एम० ए० यही विद्याभूषण कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालि के प्रथम अध्यापक भी रहे। उनके बाद सर आशुतोष मुकर्जी के प्रयत्न से विद्याभूषण की जगह धर्मानन्द कोसम्बी अध्यापक नियुक्त हुए। न जाने कितनी शताब्दियों के बाद पालि को अपने देश में फिर जड़ जमाने का मौका मिला। इसके बाद तो कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कितने ही स्कूलों और कालेजों में पालि पढ़ाने की व्यवस्था हुई।

इस शताब्दी के पहले दशाब्दी से ही हिन्दी में बुद्ध की एकाध रचनाओं के अनुवाद और जीवनियाँ तथा धम्मपद का अनुवाद एवं यदा-कदा पत्रिकाओं में एकाध लेख देखने में आने लगे।

आर्य मुसाफिर विद्यालय (आगरा) से निकलने के बाद राहुल जी और १९१७ में मिशनरी तैयार करने के प्रयास में लगने के पहले अपने जीवन के भूलभुलैया वाले अध्याय में लोगों से मिलते-जुलते और व्याख्यान देते पहुँचे। बौद्ध भिक्षुओं की धर्म प्रचार की लगन के बारे में वे बहुत बार व्याख्यान सुन चुके थे। नालन्दा-जैसे धर्मप्रचारक पैदा करने का केन्द्र चाहिए, इस विचार का अंकुर बड़ी मजबूती के साथ उनके हृदय में जम चुका था। इसलिए बौद्ध भिक्षु से मिलने और विहार देखने के लिए वा पहुँचे। वहाँ स्वामी बोधानन्द से ईश्वर वद आदि के अलावा बौद्ध साहित्य त्रिपिटक के बारे में भी बातचीत हुई। उन्होंने बौद्ध साहित्य पर बंगला में छपी पुस्तकों और बंगीय बौद्धों की मासिक पत्रिका "जगज्ज्योति' का पता दिया। पालि त्रिपिटक के पत्र के बारे में अनगारिक धर्मपाल से लिखा पढ़ी करने को कहा। इस संक्षिप्त साक्षात्कार के बारे में राहुल जी ने लिखा है कि "उस वक्त यह पता नहीं लगता था कि मेरे जीवन के विकास में इस साक्षात्कार द्वारा ज्ञात बातें खास पार्ट अदा करनेवाली हैं। (मेरी जीवन यात्रा भाग १ पृष्ट २७६, इलाहाबाद १९४६ ई०)।

बाद लिखने पर धर्मपाल ने बर्मी सिंहली स्यामी अक्षरों में छपे त्रिपिटक-ग्रंथों के प्राप्तिस्थान के पते दिये तो राहुल जी ने सिंहल और बर्मी लिपि में छपे कुछ पालि-ग्रंथ मँगा भी लिए। महाबोधि सोसाइटी (कलकत्ता) से डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण का अंग्रेजी अनुवाद सहित नागरी अक्षरों में छपा "कच्चान व्याकरण' भी मँगाया जिससे सिंहली बर्मी और स्यामी लिपियाँ सीखना आसान हो गया। वे मिशनरी-तैयारी करने के लिए महेन्द्रपुरा में रह रहे थे। वहाँ पढ़ानेवाला कोई नहीं था फुर्सत के समय वे स्वयं कुछ पन्नों को पढ़ते।

१९१९ ई० के मार्शल ला के दिनों को पंजाब में बिता वे चित्रकूट की छाया में घूमते रहे (१९२०)। इसी समय उन पर घुमक्कड़ी का भूत सवार हुआ तो बौद्ध तीर्थों को देखने निकल पड़े। सारनाथ होते हुए कुशीनगर

देखा और वहाँ से लुम्बिनी-कपिलवस्तु की ओर चल पड़े। तिलौराकोट में एक महन्त ने इन्हें भोटियों के मुल्क में जाने का रास्ता बताया और चालीस पचास भोटिया शब्द भी लिखा दिये। वहाँ से सहेट-महेट (श्रावस्ती) जाकर जेतवन देखा। इन स्थानों के महत्त्व का उनका ऐतिहासिक ज्ञान अभी कुछ नया था। फा-हियान इत्सिंग और हुएन-च्वांग की किताबें पढ़कर वे निकले थे। आप नालन्दा-राजगिर और बोधगया को देखा। चीनी यात्रियों की पुस्तकों ने देशाटन का मजा बढ़ा दिया था। इस वक्त की अपनी धार्मिक अवस्था के बारे में लिखा है—"बुद्ध के प्रति मेरी भक्ति दयानन्द से भी बढ़कर थी—हाँ उस वक्त मैं यह समझने की गलती कर रहा था कि बुद्ध दयानन्द की ही भाँति वैदिक धर्मप्रचारक ईश्वरविश्वासी ऋषि थे। (मेरी जीवन-यात्रा भाग १ पृष्ठ ३११)।

इसके बाद १९२१ ई० में सरयू की बाढ़ से पीड़ित लोगों की छपरा में सेवा और सत्याग्रह की तैयारी करते रहे। अब वे जिला कांग्रेस के मंत्री और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। गया कांग्रेस के पहले प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से बोधगया बौद्धों को सौंपने के बारे में प्रस्ताव पास कराते वक्त उन्होंने कुछ बौद्ध भिक्षुओं को बुलाया था। यहीं अनागारिक धर्मपाल भिक्षु श्रीनिवास भिक्षु धर्मपाल और कितने ही बर्मी भिक्षुओं से उनका परिचय हुआ। गया कांग्रेस (१९२२ ई०) में इस विषय में प्रस्ताव पास कराने में वे सफल नहीं हुए।

इसके बाद वे डेढ़ महीने के लिए नेपाल पहुँचे। शिवरात्रि में बौद्ध पण्डित रत्नबहादुर ने उन्हें बौद्ध साहित्य के कुछ ग्रंथ दिखाये और कुछ बातें बतायीं। वह तिब्बत में भी रह चुके थे और तिब्बती कन्जूर के कुछ ग्रंथों की सूची भी बनायी थी। इन सब को देखकर राहुल जी प्रभावित हुए। रत्नबहादुर उन्हें तिब्बत भेजना चाहते थे किन्तु उनको काम के लिए छपरा लौटना था इसलिए मामला आगे न बढ़ सका। तथा दो साल की सजा काटकर १९२५ में जेल से निकलने पर राहुल जी ने देखा

कि राजनीति में शिथिलता आ गयी है । छपरा जिले का दौरा कर उन्होंने फिर जोश भरने की कोशिश की । बोधगया बौद्धों को दिलाने के बारे में थी राजेन्द्रप्रसाद के सभापतित्व में एक कमेटी बनायी गयी थी । सदस्य की हैसियत से राहुल जी इस का काम करते रहे । इसी बीच कांग्रेस का कानपुर अधिवेशन आ गया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य की हैसियत से उसमें शामिल हुए । वहाँ से व काश्मीर होते लद्दाख की सैर भी कर आये । लौटकर मेंबर के नाते कौंसिल और जिला बोर्ड के चुनावों में जोर-शोर से काम किया और १९२७ में कांग्रेस के गौहाटी अधिवेशन में शामिल हुए । आगे उन्होंने देखा कि कांग्रेस के सामने कोई नया कार्यक्रम नहीं है । उधर बौद्ध धर्म के विशेष अध्ययन की इच्छा जो लद्दाख यात्रा में जग उठी थी जोर मार रही थी । सारनाथ में भिक्षु श्रीनिवास ने उनके विचारों का समर्थन किया । लंका का विद्यालंकार विहार एक संस्कृत-अध्यापक की खोज में था । वहाँ के सुभीतों को बताते हुए भिक्षु श्रीनिवास न उन्हें लंका जाने की सलाह दी ।

मई १९२७ ई० से उन्नीस महीने विद्यालंकार परिवेण में रहकर वे १८-२० विद्यार्थियों और कुछ अध्यापकों को संस्कृत काव्य व्याकरण और न्याय पढ़ाते और धर्मानन्द महास्थविर से स्वयं पालि बौद्ध साहित्य और दूसरे विषयों का गंभीर अध्ययन करते रहे । इसके साथ ही बौद्ध धर्म की ओर उनका आकर्षण बढ़ता गया । लंका में एक महीने के बाद ही उन्होंने 'सुत्तपिटक' के ग्रंथों को शुरू किया । संस्कृत के अत्यन्त सन्निकट होने से पालि उनके लिए आसान थी । भारत में रहते हुए इस भाषा का जितना अभ्यास किया था वह भी इस समय बड़ काम में आ रहा था । पढ़ने के लिए वे अपनी पुस्तकों का इस्तेमाल करते और भौगोलिक ऐतिहासिक बातों पर निशान करके पीछे उन्हें नोटबुक में उतारते जाते । नायक महास्थविर, आचार्य प्रज्ञासार, आचार्य देवानन्द आचार्य प्रज्ञालोक से रोज डेढ़-डेढ़ दो-दो घंटे समय लेने पर भी उनकी तृप्ति न होती थी ।

पालि त्रिपिटक में बुद्धकालीन भारत के समाज, राजनीति, भूगोल का काफी मसाला है। इससे भी विद्यार्थी की भूख और तेज हुई। 'पालि टेक्स्ट सोसाइटी' (लंदन) के त्रिपिटक के संस्करणों की विस्तारपूर्ण भूमिकाओं ने आग में घी डालने का काम किया। उन्होंने 'पालि टेक्स्ट सोसाइटी' के जर्नल के पुराने अंकों को भी पढ़ डाला। इसके बाद एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता), रायल एशियाटिक सोसाइटी ब्रिटेन, सीलोन, बम्बई के पुराने जर्नलों का पारायण किया। ब्राह्मी लिपि से हजारीबाग जेल में परिचय हुआ था। यहाँ 'एपीग्राफिका इंडिका' की सारी जिल्दें देख डालीं। छः-सात महीने बीतते-बीतते भारतीय संस्कृति की गवेषणाओं के बारे में उनका ज्ञान गुण और परिमाण इतना हो गया था कि जब मार्गबुर्ग (जर्मनी) के प्रोफेसर एडाल्फ ओटो विद्यालंकार विहार में आए तो उनसे बातचीत करके उन्हें हैरानी हुई कि राहुल जी किसी विश्वविद्यालय के कभी विद्यार्थी नहीं रहे। वस्तुतः इसके पीछे केवल चार महीनों की पढ़ाई ही नहीं बहुत अव्यवस्थित रूप से पढ़ा छिटपुट ज्ञान भी था। हाँ यह बात अवश्य थी कि सभी तरह के ज्ञान ने मस्तिष्क और स्मृति के अन्दर उथल-पुथल मचा करके उनमें एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा कर दिया था।

ढाई हजार साल पहले के समाज में बुद्ध के युक्तिपूर्ण सरल और चुभने वाले वाक्यों का राहुल जी तन्मयता के साथ आस्वाद लेने लगे। त्रिपिटक में आए मौखिक और चमत्कार अपनी असंभवता के लिए उनकी घृणा नहीं बल्कि मनोरंजन करते थे। विचारों का प्रभाव हर चीज पर पड़ता है तो बुद्ध-वचन इससे परे कैसे हो सकते हैं। राख में छिपे अंगारा या पत्थरों से ढके रत्न की तरह बीच-बीच में आते बुद्ध के चमत्कारिक वाक्य उनके मन को बलात् अपनी ओर खींच लेते। जब उन्होंने केसपुत्तिय कालामों को दिये बुद्ध का उपदेश—'मत तुम अनुश्रव (श्रुत) से, मत परंपरा से, मत 'ऐसा ही है' से, मत पिटक-सम्प्रदाय (अपने मान्य शासन की अनुकूलता) से, मत तर्क के कारण से, मत नय (न्याय)-हेतु से, मत वक्ता के आकार

के विचार से, मत अपने चिर विचारित मत के अनुकूल होने से, मत वक्ता के भव्य रूप होने से, मत श्रमण हमारा गुरु (बड़ा) है से विश्वास करो। जब, कालामो तुम अपने ही जानो—यह धर्म अकुशल है यह धर्म सदोष है, यह धर्म विज्ञ-निंदित है यह लेने ग्रहण करने पर अहित (दुःख) के लिए होता है तब कालामो तुम (उसे) छोड़ देना—" पढ़ा तो हठात् उनके दिल ने कहा—यह है एक आदमी जिसका सत्य पर अटल विश्वास है, जो मनुष्य की स्वतंत्र बुद्धि की महत्ता को समझता है। आगे जब 'मज्झिम निकाय' में पढ़ा—'बेड़े की भाँति मैंने तुम्हें धर्म का उपदेश दिया है वह पार उतरने के लिए है सिर पर ढोये-ढोये फिरने के लिए नहीं—' तो उन्होंने समझा कि जिस चीज को इतने दिनों से ढूँढ़ रहे थे वह मिल गयी।

पढ़ाई के लिए पालि की जो पुस्तकें वहाँ थीं उन्हें तो पढ़ना ही था इसके अतिरिक्त व तीस-चालीस रुपए की पुस्तकें प्रतिमास भारत या यूरोप से मँगाया करते। तिब्बत जाने का विचार भी उनके मन में प्रबल होने लगा। अन्य कामों के साथ-साथ पुस्तकों की सहायता से वे खुद तिब्बती पढ़ने लगे। अपनी जगह काम करने के लिए उन्होंने एक आदमी भी ठीक कर लिया। तिब्बत के लिए भारत रवाना होने के पहले १ सितम्बर, १९२८ ई० को विद्यालंकार विद्यालय ने उन्हें 'त्रिपिटकाचार्य' की उपाधि प्रदान की।

दक्षिण पश्चिम मध्य और उत्तर भारत के अधिकांश बौद्ध तीर्थों की यात्रा कर राहुल जी बिना पासपोर्ट के नेपाल के रास्ते अगस्त १९२९ ई० में ल्हासा पहुँचे। वहाँ उन्होंने संस्कृत व्याकरणों और दूसरे ग्रंथों को तिब्बती अनुवाद से साथ मिलाकर पढ़ना शुरू किया। आगे ल्हासा को केन्द्र बनाकर उन्होंने तिब्बत के कितने ही पुराने मठों की यात्रा करके पुस्तकें चित्रपट जमा किये। कंजूर और तंजूर* भी खरीद लिया। सारी

*कंजूर और तंजूर दो सौ से ऊपर जिल्दात्मक ग्रन्थसंग्रह हैं। प्रथम में बुद्धवचन और दूसरे में अन्य ग्रंथों के तिब्बती अनुवाद संगृहीत हैं।

चीनें पटना के लिए रवाना कर २० जून १९३० को सवा वर्ष तिब्बत प्रवास के बाद लंका पहुँचे । २२ जून को श्री धर्मानन्द महास्थविर के उपाध्यायत्व में उनकी प्रव्रज्या हुई । लंका में वे पहले रामोदार स्वामी के नाम से परिचित थे । वहाँ से चलते समय उन्होंने गोत्र का नाम जोड़ कर अपने को रामोदार सांकृत्यायन बना लिया था । प्रव्रजित होने पर उनका नाम 'राहुल सांकृत्यायन' हुआ ।

लंका में रहते ही उन्होंने ७ अक्टूबर से १४ दिसम्बर १९३० के बीच 'बुद्धचर्या' लिख डाली । इसमें बुद्ध की जीवनी और उपदेश दोनों ही सन्निविष्ट हैं । लंका में रहते ही छह महीने लगाकर वसुबन्धु प्रणीत 'अभिधर्मकोश' का अपनी 'नालन्दिका टीका' के साथ सम्पादन किया । सभाष्य अभिधर्मकोश के ह्वेन-चांग कृत चीनी अनुवाद को अपने फ्रांसीसी अनुवाद और टीका के साथ बेलजियम के प्रोफ़ेसर पुर्से दे ला वेली पुसें ने पाँच खण्डों में पेरिस से प्रकाशित कराया था (१९२३–२६) । इसकी पादटिप्पणियों में उन्होंने संस्कृत पोथियों में से पाँच सौ से ऊपर कारिकाएँ संस्कृत में दी थीं । अभिधर्म के अपने संस्करण में राहुल जी को पुसें के संस्करण से विशेष सहायता मिली । इसीलिए "प्रणम्य चीन-भोट्-भाषायामर्व क्षीरमहार्णवम् । मनोभूतं कोशरत्नं तस्मै योऽपूर्पिजर्पये ॥" इस श्लोक के साथ समर्पित किया । नवम्बर, १९३१ तक ये दोनों पुस्तकें यथाक्रम से बाबू शिवप्रसाद गुप्त और काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित कर दी गयीं ।

यूरोप से लौट कर राहुल जी १९३३ में दूसरी बार लद्दाख गये । वहीं लेह में ४ जुलाई से १९ सितम्बर के बीच उन्होंने 'मज्झिमनिकाय' का अनुवाद किया और 'तिब्बत में बौद्ध धर्म' नामक अपनी पुस्तक के अतिरिक्त 'तिब्बती प्राइमर' 'तिब्बती पद्यावलियाँ' और 'तिब्बती व्याकरण' लिखा ।

१९३४ में दूसरी बार तिब्बत जाने से पहले लंका में रहते ह्वेन चांग द्वारा अनूदित वसुबन्धु के 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' के चीनी अनुवाद के प्रतिरूप चीनी भिक्षु वाङ्मोस की सहायता से एकत्रित किये थे । इसके

आप संस्कृत में उल्था कर 'बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' के जर्नल में प्रकाशित करवाया (१९३४)।

'तिब्बत में बौद्ध-धर्म' लिखते समय जब राहुल जी ने भोटिया ग्रंथों के पत्र उलटे, तो उन्हें विश्वास हो गया कि भारत से गयी कई हजार ताल पोथियों में से वहाँ कुछ जरूर होनी चाहिए। तिब्बत की दूसरी यात्रा में ल्हासा में बैठ कर उन्होंने 'विनयपिटक' का अनुवाद भी समाप्त किया। इस बार रेडिङ, छाक्या आदि प्राचीन मठों की यात्रा में 'वादन्याय' अभिधर्मकोशमूल, सुभाषित रत्नकोष, न्यायबिन्दुपञ्जिका टीका हेतुबिन्दु-अनुटीका, प्रातिमोक्षसूत्र, मध्यान्तविभंग भाष्य, वार्तिकालंकार (खण्डित) आदि भारत से लुप्त ग्रंथ मिले। उन्होंने इनकी प्रतिलिपियाँ अथवा फोटो कापियाँ तैयार कर लीं। पहली बार तिब्बत से लौट कर उन्होंने धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक का तिब्बती से संस्कृत भाषान्तर करना शुरू किया था। तिब्बत की दूसरी यात्रा से नेपाल के रास्ते लौटते समय राजगुरु पण्डित हेमराज के यहाँ मूल की फोटो कापी ही मिल गयी जिसमें सिर्फ दस पत्र नहीं थे।

भारत लौट कर उन्होंने 'वादन्याय' छपवाया। १९३५ में जापान चीन कोरिया की यात्रा पर सोवियत रूस की पहली झाँकी लेते ईरान के रास्ते भारत लौट १९३६ में राहुल जी तीसरी बार तिब्बत पहुँचे। साक्या में 'वार्तिकालंकार प्रमाणवार्तिक भाष्य' पूरा मिला। साथ ही कर्णगोमिकृत स्ववृत्ति टीका भी अर्थात् प्रमाणवार्तिक की टीका और भाष्य असंग की महत्वपूर्ण पुस्तक 'योगाचारभूमि' भी मिली। प्रमाणवार्तिक के तीन परिच्छेदों पर प्रज्ञाकरगुप्त की टीका भी मिली। शलु विहार में प्रमाणवार्तिक पर मनोरथनन्दी की सुन्दर वृत्ति मिली। उन्होंने सबकी नकल उतार ली।

धर्मकीर्ति के हेतुबिन्दु का तिब्बती से अनुवाद और अर्चट (धर्माकरदत्त) की टीका के सहारे इसे उन्होंने बाद में संस्कृत में किया अर्चट की टीका और 'न्यायबिन्दुपञ्जिका' (धर्मोत्तरकृत) पर दुर्वेक मिश्र की टीकाएं उन्हें १९३६ में 'ङोर' मठ में मिलीं।

धर्मकीर्ति की 'संबंध-परीक्षा' को भी उन्होंने संस्कृत में तैयार कर दिया है। अब धर्मकीर्ति के न्याय के सात ग्रंथों में 'सन्तानान्तरसिद्धि' और और 'प्रमाणविनिश्चय' दो ही बचे हैं जो सिर्फ तिब्बती में ही मिलते हैं। इनका मूल ढूँढ़ना या तिब्बती से संस्कृत में लाने का उनका संकल्प अपनी चौथी और अन्तिम तिब्बत यात्रा में पूरा नहीं हुआ।

मई १९३८ में राहुल जी चौथी और अंतिम बार तिब्बत गये। शलू मठ में नैयायिक ज्ञानश्री के १२ ग्रंथ मिले तथा योगाचारभूमि के खण्डित अध्याय भी मिले। नरथङ से उन्होंने कई बड़े-बड़े भारतीय चित्रपटों और घटती पत्थरों पर बन चौरासी सिद्धों की मूर्तियों के फोटो लिये। साक्या के मित्र से मिलते वे भारत लौट आये।

यहाँ एक बात लिख देना जरूरी है। तिब्बत की चारों यात्राओं से राहुल जी ३६३ पोथियों की प्रतिलिपियाँ या फोटो ले आये। इनमें से केवल एक प्रमाणवार्तिक का ही अन्वेषण उनकी अक्षय कीर्ति होता। उनकी लायी इन पोथियों की संख्या के बारे में बहुत बड़ा भ्रम फैला दिखाई देता है। उनकी संख्या कई हजार से लेकर ६ हजार तक लिखी जा रही है। एक विद्वान् ने लिख दिया कि सारी पोथियाँ ल्हासा के दुकानदार के यहाँ मिल गयीं जो उन्हें फाड़कर मसाले की पुड़िया बाँध रहा था। जिन्हें इन पोथियों का ब्योरा जानना हो, वे बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल (खण्ड २१, २३ और २४) में प्रकाशित इनका विवरण देखने का कष्ट करें तथा उनकी भूमिका भाषा पढ़कर सही बातें मालूम करें। मनगढ़न्त बातें लिखने से कोई फायदा नहीं।

इसी तरह राहुल जी की लिखी सम्पादित और अनूदित पुस्तकों की संख्या के बारे में भी लोग भ्रम फैला रहे हैं। उनकी संख्या भी डेढ़ सौ से चार-पाँच सौ तक लिखी जा रही है। मैंने उनके सारे साहित्य को देखा है। उनकी सभी प्रकार की ११८ पुस्तकें छप चुकी हैं। 'पालि साहित्य का इतिहास' आपके हाथों में है। 'तिब्बती-हिन्दी कोश' साहित्य अकादमी (दिल्ली) छाप रही है। वहाँ से 'पालि काव्य-धारा' के भी निकलने की आशा है। १९२९

तृतीय खण्ड

(अन्यत्र पालि)



स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

विषय प्रवेश

पालिपिटक

त्रिपिटक का संग्रह तथा बुद्धवचन की भाषा

बोधि की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण-पर्यन्त करुणा के अनन्त सागर भगवान् बुद्ध संसार के प्राणियों के कल्याण के लिए अपने मार्ग का उपदेश देते रहे। बोधि की प्राप्ति के पश्चात् प्रारम्भ में ही उन्हें इस प्रकार की धारणा उत्पन्न हुई कि अपने द्वारा खोजे गये मार्ग को विश्व को बतलाना है, और इसको तभी से उन्होंने कार्यरूप में परिणत करना प्रारम्भ कर दिया तथा इसका निर्वाह जीवन-पर्यन्त किया। इसके लिए सर्वप्रथम सुव्यवस्थित नियमों की नींव पर उन्होंने एक सुदृढ़ भिक्षु-संघ की स्थापना की और यह सर्वदा ही बौद्ध-धर्म का मार्ग विधायक रहा है। भगवान् बुद्ध के ये उपदेश मौखिक ही होते थे। उपदेश के समय उपस्थित स्मृतिमान् तथा बहुश्रुत भिक्षु इन्हें याद कर लेते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् इनके संग्रह की आवश्यकता हुई तो त्रिपिटक रूप में ये संगृहीत हुए। त्रिपिटक का अर्थ होता है तीन पिटारियाँ। पहले इन संग्रहों को पिटारियों में रखा जाता होगा और तीनों पिटकों के लिए अलग-अलग तीन पिटारियाँ प्रयोग में लायी जाती होंगी अतः कालान्तर में यह संग्रह ही त्रिपिटक की संज्ञा से विभूषित किया गया। ये तीनों पिटक हैं—(१) सुत्तपिटक (सूत्रपिटक) (२) विनयपिटक (३) अभिधम्मपिटक (अभिधर्मपिटक)।

इनके संग्रह के लिए बुद्ध के निर्वाण से लेकर वर्तमान युग तक समय समय पर संगीतियों का आयोजन होता रहा। पहली संगीति तो बुद्ध-परिनिर्वाण के तीन मास पश्चात् हुई और इसमें धम्म तथा विनय का संगायन हुआ। इसमें ५०० अर्हत् सम्मिलित हुए। राजगृह के वैभार पर्वत पर स्थित सप्तपर्णी गुहा को ही स्थान-स्वरूप चुना गया और इसके अध्यक्ष थे

महास्थविर महाकाश्यप । इन्होंने स्थविर उपालि से विनय-सम्बन्धी बातें पूछीं । उन्होंने जो कुछ भगवान् से सुना था उसे प्रस्तुत कर दिया । इसी प्रकार आयुष्मान् आनन्द से धर्म पूछा गया । इन दोनों—विनय तथा धर्म का सभी उपस्थित भिक्षुओं ने संगायन किया ।

इस संगीति के १०० वर्ष बाद भिक्षुओं को विनय-विरुद्ध आचरण से विमुख करने के लिए वैशाली में द्वितीय संगीति का आयोजन हुआ । इसमें ७०० अर्हत् भिक्षु सम्मिलित हुए थे और इसके अध्यक्ष थे महास्थविर रेवत । इसमें विनय के नियमों पर निर्णयादि हुए ।

वैशाली की संगीति के पश्चात् तृतीय संगीति सम्राट् अशोक के राज्य काल में हुई । इसका आयोजन पाटलिपुत्र में हुआ था । इस युग में बौद्ध-धर्म को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण दूसरे मत के लोग भी अपने को बौद्ध-मतावलम्बी बतलाकर राज्य से प्राप्त सुविधाओं से लाभ उठाने लगे तथा बौद्ध-संघ के भीतर आकर वे अपने मत-मतान्तरों को भी बुद्ध-सम्मत बतलाने लगे । अतः बुद्ध के वास्तविक मन्तव्य को जानने में कठिनाई होने लगी । बौद्ध-संघ अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था । अतः 'थेरवाद' या 'विभज्यवाद' को बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य निश्चित करने के लिए ही यह संगीति हुई । इसके अध्यक्ष 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' हुए । इन्होंने अन्य वादों की तुलना में 'थेरवाद' को स्थापित किया और इनके लिए 'कथावत्थु' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसे अभिधम्मपिटक में स्थान मिला । इसी संगीति के बाद बौद्ध-धर्म के व्यापक प्रचार के लिए अनेक भिक्षु भिन्न-भिन्न देशों में भेजे गये । सम्राट् की पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र सिंहल द्वीप गये और वहाँ पर बौद्ध-शासन को सुदृढ़ करने में 'देवानम्पिय तिस्स' राजा के अत्यन्त सहायक हुए । वे अपने साथ त्रिपिटक के रूप में बुद्धवचन की परम्परा ले गये थे और सिंहल में इसकी नींव पड़ी ।

पर अभी तक सम्पूर्ण बुद्धवचन की मौखिक परम्परा ही चलती रही । समयानुसार यह आवश्यकता समझी गयी कि स्मरणशक्ति के ह्रास होने पर कहीं लोग बुद्धवचन को भूल न जायँ । अतः इसे लिपिबद्ध किया गया । उस समय सिंहल के शासक सम्राट् 'वट्टगामणि' थे । इनके साथ ही इन

पर रचित अट्ठकथाएँ भी लिपिबद्ध की गयीं। यही चतुर्थ संगीति के नाम से विख्यात है। 'वट्टगामणि' का समय ई० पू० २९ माना गया है।

पञ्चम संगीति थेरवाद की परम्परा के अनुसार बर्मा के सम्राट् 'मिन्डोन मिन्' (१८७१) के समय में हुई, जिसमें संगमरमर की पट्टिकाओं पर सम्पूर्ण बुद्धवचन को उत्कीर्ण कराकर उन्हें एक स्थान पर गड़वा दिया गया, जिससे वह चिरस्थायी हो सके। छठी संगीति १९५४ से लेकर १९५६ तक २५००वीं बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बर्मा में ही सम्पन्न हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परम्परा से बुद्धवचनों का संग्रह उपर्युक्त विधि से समय-समय पर हुआ।

बुद्धवचन की भाषा—तृतीय संगीति के वर्णन में ऊपर यह कहा जा चुका है कि समयानुसार बौद्ध धर्म तथा दर्शन के विचारों के सम्बन्ध में भी मतभेद होने लगा था और अशोक के समय में यह इस स्थिति को प्राप्त हुआ था कि इसके १८ निकाय अथवा सम्प्रदाय हो गये। प्रारम्भ में यह विभाग 'थेरवाद' (स्थविरवाद, प्राचीन परम्परा के अनुयायी) तथा 'महासांघिक' इन दो रूपों में ही था। इन सम्प्रदायों ने अपने-अपने अनुसार मूल बुद्धवचन का स्वीकार किया साथ ही भाषा के विषय में भी वे परम स्वतन्त्र हो गए क्योंकि स्वयं शास्ता ने किसी भाषा विशेष का आग्रह न करके बुद्धवचनों को अपनी-अपनी भाषा में सीखने अथवा धारण करने की अनुमति प्रदान कर दी थी। अतः प्रारम्भ से ही इस धर्म में भाषा-विषयक रूढ़िवादिता का समावेश नहीं हो पाया। और इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि त्रिपिटक का संग्रह अनेक भाषाओं में हुआ। एक प्रसिद्ध तिब्बती परम्परा के अनुसार मूल-सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के ग्रन्थ संस्कृत में महासांघिकों के प्राकृत में महासाम्मितियों के अपभ्रंश में और स्थविर सम्प्रदाय के पैशाची में थे।

पालि भाषा—आज हम पालि शब्द का भाषा के अर्थ में व्यवहृत करते हैं और इसमें बौद्ध-धर्म के 'थेरवाद' का सम्पूर्ण त्रिपिटक एवं अनुपिटक साहित्य प्राप्त है। प्रारम्भ में यह शब्द मूल बुद्धवचन अथवा त्रिपिटक के लिए प्रयुक्त होता रहा और बाद में यह उस भाषा का द्योतक हो गया

जिसमें बुद्धवचन प्राप्त है। इस प्रकार भाषा के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग नवीन ही है, विशेषकर उन्नीसवीं शती से इसका व्यापक प्रचार हो गया है। आज हम जिस भाषा को पालि की संज्ञा से अभिहित करते हैं इसका परम्परा से प्राप्त नाम मागधी है। त्रिपिटक पर लिखी गयी अट्ठकथाओं के युग से ही लोग इसे इस नाम से कहते आये हैं। पर मागधी का प्राचीनतम उपलब्ध रूप उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश में मिलनेवाले अशोक के शिलालेख हैं। इन शिलालेखों की भाषा से मागधी कही जानेवाली पालि भाषा की विलक्षणताएँ हैं। पालि ने यदि 'श' का बायकाट तथा 'र' के स्थान पर भरसक 'ल' नहीं आने देने की कसम न खायी होती तो शायद उसे ही मागधी का प्राचीनतम रूप होने का सौभाग्य प्राप्त होता, किन्तु सिंहल के पुराने गुजराती (शौरसेनी-महाराष्ट्री-भाषी) उपाध्यायों तक मागधी के उच्चारण को कैसे बनाये रखते? तो भी हम पालि के पुराने 'सुत्तों' में 'ल' 'श' की भरमार कर उसे मागधी के पास तक पहुँचा सकते हैं। मागधी का प्रमुख मगध के विशाल साम्राज्य की स्थापना के बाद ही स्थापित हो पाया था।

यदि हम प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के विकास क्रम पर विचार करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक भाषा निरन्तर विकास पथ पर अग्रसर होती गयी। जितनी ही भाषा बदलती गयी उतना ही हमारे परवर्ती पूर्वजों की अपने पूर्वजों की भाषा और इतिहास के प्रति अधिक उत्तरोत्तर श्रद्धा बढ़ती गयी और उन्होंने इसकी रक्षा के अनेक उपाय किये। फिर भी बोलचाल की भाषा आगे बढ़ती ही गयी। समय बीतने के साथ लोगों को इसकी चिन्ता हुई कि इस भाषा को कैसे सजीव तथा सुरक्षित रखा जाय। इसके लिए उन्होंने (वेद) मन्त्रों को जहाँ संहिता, पद, जटा, घन आदि नाना क्रम से उच्चारण तथा कंठस्थ करके सुरक्षित किया, वहाँ उन भाषा की भीतरी बनावट के लिए अपनी-अपनी शाखा के प्रातिशाख्य बनाये। पर बोलचाल की भाषा तथा इस भाषा में निरन्तर अन्तर बढ़ता चला जा रहा था और जब यह काफी दूर तक आगे बढ़ चुका था तब ईसा पूर्व छठी शताब्दी में गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए। उन्होंने साहित्यिक भाषा को छोड़कर प्रचलित तथा उपयुक्त होने से लोकभाषा में ही लोगों को उपदेश

किया। पर बुद्ध की शिष्यमंडली में मगध कोसल कुरु अवन्ती और गान्धार प्रदेश के लोग थे और जब उन लोगों ने बुद्धवचनों का अपनी अपनी भाषा में पाठ करना प्रारम्भ कर दिया तो सूक्तों की भाषा में फेर-बदल का समावेश हुआ। कुछ शिष्यों को यह बात खटकी और उन्होंने प्राचीन साहित्यिक भाषा में बुद्धवचनों को सुरक्षित करने की बात सोची और इसके लिए बुद्ध से निवेदन किया। बुद्ध ने उन्हें ऐसा करने से मना किया और ऐसा करने को दुक्कट दण्ड से दण्डनीय एक अपराध करार दिया। पर बुद्ध निर्वाण के तीन-चार शताब्दियों के बाद यह आगे दिन की अदम्य वरस धर्मधरों का अर्थविचार प्रतीत होने लगी। उनमें से कुछ लोगों ने बुद्धवचनों को प्राचीन भाषा का ही अपनाया और आगे यथासंभव प्रयत्न किया कि इसमें कुछ रद्दोबदल न होने पावे। दूसरे प्रकार के शिष्यों ने उसे अधिक स्थायी संस्कृत में कर दिया और तीसरे प्रकारवालों ने परवर्ती भाषा में उसे सुरक्षित करने का प्रयास किया। पहले प्रकार में सिंहल के स्थविरवादी श्रमणों की गणना होती है। ये लोग मागधी की सबसे बड़ी विशेषताएँ—"स" की जगह "श" "न" की जगह "ण" और "र" की जगह "ल" को सहस्राब्दियाँ पहले छोड़ चुके हैं तो भी कहते हैं—"हमारे धर्म-ग्रन्थ मूल मागधी भाषा में हैं।"

इस प्रकार स्थविरवादी त्रिपिटक हमें जिस भाषा में उपलब्ध है, उसी को पालि के नाम से अभिहित किया जाता है।

पालि पिटक

आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले और बुद्धनिर्वाण से प्राय: हजार वर्ष बाद आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धवचनों के बारे में लिखा था—"प्रथम संगीति में संगायित अथवा धर्मसंगायित सब मिलाकर—(१) दो प्रातिमोक्ष (भिक्षु प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष) दो विभङ्ग (भिक्षु-विभङ्ग तथा भिक्षुणी-विभङ्ग) बीस खन्धक (स्कन्धक) तथा सोलह परिवार (इन सबसे युक्त)—यह विनयपिटक है।

(२) सुत्तपिटक (सूत्रपिटक) है—ब्रह्मजाल आदि ३४ सुत्तों का संग्रह दीघनिकाय मूलपरियाय आदि १५२ सुत्तों का संग्रह मज्झिमनिकाय ओघतरण आदि ७७६२ सुत्तों का संग्रह संयुत्तनिकाय चित्तपरियादान

आदि ९५५७ सुत्तों का संग्रह अङ्गुत्तरनिकाय तथा इन पन्द्रह ग्रन्थों के मेल से (युक्त) खुद्दकनिकाय—(क) खुद्दकपाठ (ख) धम्मपद (ग) उदान (घ) इतिवुत्तक (ङ) सुत्तनिपात (च) विमानवत्थु, (छ) पेतवत्थु, (ज) थेरगाथा (झ) थेरीगाथा (ञ) जातक (ट) निद्देस (ठ) पटिसम्भिदामग्ग (ड) अपदान (ढ) बुद्धवंस और (ण) चरियापिटक।

(३) अभिधम्मपिटक (अभिधर्मपिटक) है—(क) धम्मसंगणि (ख) विभंग (ग) धातुकथा (घ) पुग्गलपञ्ञत्ति (ङ) कथावत्थु, (च) यमक तथा (छ) पट्ठान।"

इन सब उपर्युक्त ग्रन्थों के काल के बारे में विद्वानों ने बहुत बहस की है और वास्तव में यह एक विचारणीय बात है।

त्रिपिटक का काल निर्णय

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में त्रिपिटक लेखबद्ध हुआ अर्थात् तब से पाठ में अधिक स्थिरता आयी। उससे पहले सावधानी रखते हुए भी स्मृति के स्खलन से पाठ में हेर-फेर होना स्वाभाविक था। फिर आचार्य बुद्धघोष उपर्युक्त ग्रन्थों में ऐसे ग्रन्थों का होना भी मानते हैं, जो प्रथम संगीति में दुहराये नहीं गये। अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ 'कथावत्थु' को तृतीय संगीति के प्रधान 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' (तिष्य) ने लिखा इसलिए यह प्रथम और द्वितीय संगीति के समय अस्तित्व में भी नहीं आया था—तृतीय संगीति के समकालिक तथा बाद के स्थविरवादि-विरोधी निकायों के मतों के खंडन के लिए इसे लिखा गया था। यह इससे भी ज्ञात होता है कि इसमें खंडित २१४ सिद्धान्तों में केवल २७ ही तृतीय संगीति के समकालीन या पुराने निकायों के थे जिनका ही खंडन 'मोग्गलिपुत्त' कर सकते थे। अंधक अपरशैलीय पूर्वशैलीय राजगिरिक सिद्धार्थक वैतुल्यक उत्तरापथक हेतुवाद आदि निकाय अशोक के बाद अस्तित्व में आये। उनका खंडन 'मोग्गलिपुत्त' कैसे कर सकते थे? काल के बारे में विद्वानों ने बहुत-सी कसौटियाँ रखी हैं और उनमें तथ्य भी है। एक और कसौटी भी है—थेरवाद और सर्वास्तिवाद के पिटकों की तुलना। द्वितीय संगीति अर्थात् ३८७ ई० पू० तक सर्वास्तिवाद आदि ग्यारह निकाय थेरवाद से अलग

अस्तित्व नहीं रखते थे। इनमें सर्वास्तिवाद का विनयपिटक चीनी और तिब्बती अनुवाद के रूप में मौजूद है। पालि में प्राप्त सुत्तपिटक की चीनी अनुवाद से तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि थेरवाद तथा सर्वास्तिवाद इन दोनों निकायों में पाँच निकाय (दीघनिकाय आदि निकाय नामक उपर्युक्त ग्रन्थ) अथवा आगम थे—दीघ (दीर्घ) मज्झिम (मध्यम) संयुत्त (संयुक्त) अङ्गुत्तर (अङ्गोत्तर) तथा खुद्दक (क्षुद्रक)। इनमें भी पहले चार निकायों में कुछ ही हेरफेर मिलता है। इनके आधार पर नीचे त्रिपिटक के सम्बन्ध में तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किया जाता है—

१ सुत्तपिटक—थेरवादी दीघनिकाय (पालि में प्राप्त दीघनिकाय) के बत्तीस सुत्तों में से सत्ताइस चीनी दीर्घागम में मिलते हैं शेष सात में से तीन मध्यमागम में प्राप्त हैं और बाकी चार वहाँ अप्राप्त ही हैं। अतः द्वितीय संगीति के समय में वे विद्यमान थे इस पर संदेह किया जा सकता है। दीघनिकाय के बत्तीसवें 'सुत्त' 'आटानाटिय' में भूतप्रेत सम्बन्धी बातें हैं और यह सम्मिलित त्रिपिटक में नहीं था। इसलिए यह सर्वास्तिवादी दीघनिकाय में तो नहीं है पर तिब्बती कञ्जूर में उसका अनुवाद प्राप्त है। चीनी त्रिपिटक में भी इसका अनुवाद (नंजियो ६७४) मौजूद है। दोनों के सुत्तों में इस बात में भी अन्तर मिलता है कि एक में वे छोटे हैं तथा दूसरे में बड़े। सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के बाद में प्रादुर्भूत होने से यह भाव स्पष्ट नहीं है कि उसके सुत्तों को हर जगह बढ़ाया गया हो। पालि में प्राप्त दीघनिकाय का 'महापरिनिब्बान-सुत्त' उससे मूल के करीब है। थेरवाद (स्थविरवाद) से भिन्न निकाय का 'महापरिनिर्वाण-सुत्त' चीनी भाषा में अनूदित है। इसका पुनः संस्कृत में अनुवाद मैंने भी वाङ् मो लम् की सहायता से किया था। इस कार्य के पश्चात् मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब पुनः कभी तिब्बती तथा चीनी अनुवादों का संस्कृत में अनुवाद होगा तभी इस प्रकार की आलोचनात्मक तुलना को अवकाश प्राप्त होगा। अभिधम्मपिटक में पाठभेद आदि का सवाल नहीं था यह सभी थेरनिकायों के एक होने के समय अस्तित्व में आया ही नहीं था। थेरवादी आचार्य बुद्धघोष ने भी उस थेरवादी परंपरा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार

उसे खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत माना जाता था। विद्वानों ने खुद्दकनिकाय में उसके अंश का होना दिखलाया है।

२ विनयपिटक—पालि विनयपिटक का विभाग इस प्रकार से है—

१ विभङ्ग { १ भिक्खुविभङ्ग
२ भिक्खुनीविभङ्ग }

२ खन्धक { १ महावग्ग
२ चुल्लवग्ग }

३ परिवार

ग्रन्थों की दृष्टि से विनयपिटक में ये पाँच ग्रन्थ आते हैं—(१) पाराजिक (२) पाचित्तिय (३) महावग्ग (४) चुल्लवग्ग तथा (५) परिवार। इनमें परिवार तो बहुत बाद का है क्योंकि इसमें त्रिपिटक के लिपिबद्ध होने की चर्चा है। विभङ्ग के अन्तर्गत ही 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' नामक ग्रन्थ आते हैं। वास्तव में विभङ्ग प्रातिमोक्ष सूत्रों की व्याख्या है। प्रातिमोक्ष सूत्रों का वर्गीकरण भिक्षु तथा भिक्षुणी प्रातिमोक्षों में किया जाता है अतएव विभङ्ग भी इसी के अनुसार है। बाद में ग्रन्थों के रूप में इनका नामकरण 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' में कर दिया गया। इस नामकरण का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है क्योंकि 'पाराजिक' ग्रन्थ में केवल भिक्षुओं से सम्बन्धित 'पाराजिकों' की तथा 'सङ्घादिसेस' आदि नियमों की चर्चा है, जबकि 'पाचित्तिय' से प्रारम्भ होकर भिक्षुओं के और नियम तथा उनकी व्याख्या एवं सम्पूर्ण भिक्षुणियों के नियम (पाराजिक से प्रारम्भ होकर अन्त) पाचित्तिय' में सगृहीत हैं। अतएव 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' ये नाम भ्रमोत्पादक ही हैं और इनकी अपेक्षा इनका 'भिक्खु' तथा 'भिक्खुनी' विभङ्ग नाम देना अधिक उपयुक्त है।

थेरवाद और सर्वास्तिवाद के विनयों में भी समानता है। थेरवाद में २२७ प्रातिमोक्ष नियम हैं जिनकी अवहेलना करने से दोष की प्राप्ति होती है पर सर्वास्तिवाद विनय के अनुसार ये २५० हैं। इन दोनों में इन नियमों में बहुत समानता विद्यमान है। पालि विनय के खन्धक को दो भागों में विभक्त कर एक को 'महावग्ग' तथा दूसरे को 'चुल्लवग्ग' की संज्ञा प्रदान की जाती है। मूल-सर्वास्तिवाद के विनय को भी 'महावस्तु' तथा

'क्षुद्रक' इन दो भागों में बाँटा जाता है। इस प्रकार दोनों के खन्धकों में काफी समानता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि इन दोनों विनयों का विकास एक ही विनयपिटक से हुआ।

३ अभिधम्मपिटक—पालि अभिधम्मपिटक में तथा सर्वास्तिवाद के अभिधर्मपिटक में विनय की उपर्युक्त समानता के दर्शन नहीं होते। यद्यपि दोनों की ग्रन्थ-संख्या सात ही है तथापि उनके नामों तथा विषयों में कोई समानता नहीं है। इस भिन्नता के साथ-साथ सर्वास्तिवाद की अपनी यह विशेषता और है कि वह इसे बुद्धवचन नहीं मानता जैसे—

ग्रन्थ	कर्ता
१ ज्ञानप्रस्थान	कात्यायनीपुत्र
२ संगीतिपर्याय	महाकौष्ठिल
३ प्रकरणपाद	वसुमित्र
४ विज्ञानकाय	देवशर्मा
५ धातुकाय	पूर्ण
६ धर्मस्कन्ध	शारिपुत्र
७ प्रज्ञप्तिशास्त्र	मौद्गल्यायन

'ज्ञानप्रस्थान' के अधिकांश भाग का पुनः संस्कृत अनुवाद विश्व भारती के डाक्टर शान्ति शास्त्री ने किया है और वह वहीं से प्रकाशित भी हुआ है।

अभिधर्म के सात ग्रन्थकर्ताओं में शारिपुत्र मौद्गल्यायन और पूर्ण बुद्ध के शिष्य माने गये हैं। सातों में 'ज्ञानप्रस्थान' को प्रधान माना जाता है जिसको कात्यायनीपुत्र की कृति कहा जाता है। कात्यायनीपुत्र कश्मीर के सर्वास्तिवादी आचार्य थे। कश्मीर को बौद्ध बनानेवाले आर्य मध्यान्तिक अशोक के समय तीसरी संगीति द्वारा कश्मीर भेजे गये थे। थेरवाद अभिधम्म को बुद्धवचन मानता है और उसके सात ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ 'कथावत्थु' के रचयिता 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' माने जाते हैं।१ तीनों संगीतियों में धर्म और विनय का ही संगायन किया गया यह भी कहा जाता है।२ धर्म का अर्थ है सूत्र। मज्झिमनिकाय में अभिधम्म की कुछ बातें आती हैं।

फिर जब तक अभिधम्म का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं माना गया था तब तक उसे खुद्दकनिकाय में सम्मिलित किया जाता था।

इस तरह जान पड़ता है, अभिधम्म तृतीय संगीति में भी तैयार नहीं हुआ अतः यह अर्हत् महेन्द्र के साथ सिंहल नहीं गया था।

विद्वानों ने पिटक-रचना के काल को पाँच भागों में बाँटा है—

पहला युग ४८३ ई० पू० से ३८३ ई० पू० अर्थात् पहली और दूसरी संगीति के बीच।

दूसरा युग ३८३ ई० पू० से २६५ ई० पू० अर्थात् अशोक के राज्यारंभ तक।

तीसरा युग २६५ ई० पू० से २३० ई० पू० अर्थात् अशोक के राज्य के अंत तक।

चौथा युग २३० ई० पू० से ८० ई० पू० तक अर्थात् सिंहल में।

पाँचवाँ युग ८० ई० पू० से २० ई० पू० अर्थात् त्रिपिटक के लेखबद्ध होने तक।

डॉ० रीस डेविड्स ने पालि त्रिपिटक का बुद्ध परिनिर्वाण काल से लेकर अशोक के काल तक निम्नलिखित विकास-क्रम दिया है[1]।

१ वे बुद्धवचन जो समान शब्दों में ही त्रिपिटक के प्रायः सभी ग्रन्थों की गाथाओं आदि में मिलते हैं।

२ वे बुद्धवचन जो समान शब्दों में केवल दो या तीन ही ग्रन्थों में प्राप्त हैं।

३ सील पारायणवग्ग तथा अट्ठकवग्ग पातिमोक्ख।

४ दीघ मज्झिम अङ्गुत्तर और संयुत्तनिकाय।

५ सुत्तनिपात थेरगाथा थेरीगाथा उदान खुद्दकपाठ।

६ सुत्तविभङ्ग खन्धक।

७ जातक धम्मपद।

८. निद्देस इतिवुत्तक पटिसम्भिदामग्ग।

९. पेतवत्थु, विमानवत्थु, अपदान चरियापिटक बुद्धवंस।

१० अभिधम्मपिटक के सभी ग्रन्थ जिनमें विकास-क्रम के अनुसार पुग्गलपञ्ञत्ति प्रथम तथा कथावत्थु अन्तिम है।

---

१ बु०—बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ८४।

डॉ० विमलाचरण लाहा ने उपर्युक्त मत में संशोधन उपस्थित करते हुए इस त्रिपिटक-विकास-क्रम को निम्नप्रकार से व्यक्त किया है[1]—

१ वे बुद्धवचन जो समान शब्दों में त्रिपिटक के प्रायः सभी ग्रन्थों की गाथाओं में प्राप्त होते हैं।

२ वे बुद्धवचन जो समान शब्दों में केवल दो या तीन ग्रन्थों में ही विद्यमान हैं।

३ सील पारायण अट्ठकवग्ग सिक्खापद।

४ दीघनिकाय (प्रथम स्कन्ध) मज्झिमनिकाय संयुत्तनिकाय अङ्गुत्तरनिकाय पातिमोक्ख के १५२ नियम।

५. दीघनिकाय (द्वितीय तथा तृतीय स्कन्ध) थेरगाथा थेरीगाथा ५०० जातक सुत्तविभङ्ग पटिसम्भिदामग्ग पुग्गलपञ्ञत्ति विभङ्ग।

६ महावग्ग चुल्लवग्ग पातिमोक्ख (२२७ नियमों के रूप में पूर्ण होना) विमानवत्थु, पेतवत्थु, धम्मपद कथावत्थु।

७ चुल्लनिद्देस महानिद्देस उदान, इतिवुत्तक सुत्तनिपात धातु कथा यमक पट्ठान।

८ बुद्धवंस चरियापिटक अपदान।

९. परिवार।

१० खुद्दकपाठ।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम पालि त्रिपिटक के विकास-क्रम को समझ सकते हैं। तथ्यों के आधार पर लोगों ने इस विकास-क्रम को ही अपना शोध का विषय बनाकर इस पर विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत किया है[2]।

मूल बुद्धवचन—त्रिपिटक में कुछ भाषाओं के प्रक्षिप्त होने की बात को प्राचीन आचार्यों ने भी स्वीकार किया है। यह तो हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि मातिकाओं को छोड़ कर सारा अभिधम्मपिटक पीछे का है और इसीलिए आचार्य बुद्धघोष के समय से ही इसके बुद्धवचन होने

१ द्र०—हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, भाग १, पृ० ४२।

२ द्र०—क्रोनोलॉजिकल स्टडीज इन दि थेरवाद कैनन ऑफ बुद्धिज्म।

पहला अध्याय

१ सुत्तपिटक

१ दीघनिकाय

भारत की देन पालि त्रिपिटक अथवा बुद्धवचन है। पहले पिटक के रूप में धम्म तथा विनय की ही परिगणना थी। अभिधम्म को तो बाद में स्थान मिला इसका व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है। धम्म तो सुत्तपिटक का ही नामान्तर है।

सुत्तपिटक

सुत्तपिटक इन पाँच निकायों अथवा आगमों में विभक्त है—(१) दीघनिकाय (२) मज्झिमनिकाय (३) संयुत्तनिकाय (४) अङ्गुत्तर निकाय और (५) खुद्दकनिकाय। इनमें वर्णित विषय निम्नप्रकार से हैं—

१ दीघनिकाय

पालि में ग्रन्थपरिमाण बतलाने के लिए ३२ अक्षरों के अनुष्टुप् छंद को गिना जाता है। २२० छंदों का एक भाणवार होता है जो शायद अ ह्निक का पर्याय है। एक भाणवार में इस प्रकार २२०×३२=७०४० अक्षर होते हैं। दीघनिकाय में सीलक्खन्ध महा और पाथिकवग्ग नाम के तीन वग्ग चौंतीस सूत्र और ६४ भाणवार हैं जिनका विवरण है—

१ सीलक्खन्धवग्ग

(१) ब्रह्मजालसुत्त
(२) सामञ्ञफलसुत्त
(३) अम्बट्ठसुत्त
(४) सोणदण्डसुत्त

(५) कूटदन्तसुत्त
(६) महालिसुत्त
(७) जालियसुत्त
(८) कस्सपसीहनादसुत्त
(९) पोट्ठपादसुत्त
(१०) सुभसुत्त
(११) केवट्टसुत्त
(१२) लोहिच्चसुत्त

२ महावग्ग

(१३) तेविज्जसुत्त
(१४) महापदानसुत्त
(१५) महानिदानसुत्त
(१६) महापरिनिब्बानसुत्त
(१७) महासुदस्सनसुत्त
(१८) जनवसभसुत्त
(१९) महागोविन्दसुत्त
(२०) महासमयसुत्त
(२१) सक्कपञ्हसुत्त
(२२) महासतिपट्ठानसुत्त
(२३) पायासिसुत्त

३ पाथिकवग्ग

(२४) पाथिकसुत्त
(२५) उदुम्बरिकसीहनादसुत्त
(२६) चक्कवत्तिसीहनादसुत्त
(२७) अग्गञ्ञसुत्त
(२८) सम्पसादनीयसुत्त
(२९) पासादिकसुत्त

(३०) सक्कपञ्हसुत्त
(३१) सिगालोवादसुत्त
(३२) आटानाटियसुत्त
(३३) संगीतिपरियायसुत्त
(३४) दसुत्तरसुत्त

इन सूत्रों का भारत के तात्कालिक इतिहास भूगोल तथा सांस्कृतिक परिचय के लिए कितना महत्त्व है, यह उनमें वर्णित विषयों से ही ज्ञात होता है। अतः इस दृष्टि से इनका परिचय दिया जाता है—

१ सीलक्खन्धवग्ग

(१) ब्रह्मजालसुत्त—अपनी शिष्य-मंडली के साथ बुद्ध राजगृह और नालन्दा के बीच राजपथ पर जा रहे थे। उनके पीछे सुप्रिय नामक परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ जा रहा था। सुप्रिय अनेक प्रकार से बुद्ध, धर्म तथा संघ की निन्दा कर रहा था और ब्रह्मदत्त उनकी प्रशंसा। भिक्षु-संघ के साथ बुद्ध तथा वे दोनों 'अम्बलट्ठिका' के राजागार में रात भर के लिए ठहर गये तथा वहाँ भी सुप्रिय तथा ब्रह्मदत्त वैसा ही करते रहे। भिक्षुओं में इसकी चर्चा हो रही थी, उसी समय बुद्ध उनके पास पहुँचे। पूछे जाने पर भिक्षुओं ने सारी बात उन्हें बतलायी। बुद्ध ने कहा कि यदि कोई मेरी निन्दा करे तो तुम लोगों को उससे वैर, असन्तोष अथवा चित्त में कोप नहीं करना चाहिए, साथ ही हम लोगों की प्रशंसा में भी तुम्हें आनन्दित नहीं होना चाहिए। इन दोनों हालतों में तुम लोगों का कर्त्तव्य है उस कथन की सत्यता की जाँच करना। इसके पश्चात् बुद्ध ने शील (सदाचार) का विभाजन बतलाते हुए उसके क्षुद्र (प्रारम्भिक) मध्यम तथा महा ये तीन विभाग किये। प्रारम्भिक शील के अन्तर्गत उन्होंने अदत्तादान-त्याग, व्यभिचार-त्याग, कठोरभाषण-त्याग, चापलूसी त्याग, हिंसा-त्याग, मध्यमशील के अन्तर्गत चीजों का अपरिग्रह, जुआ आदि खेल-त्याग, ठाटबाट की शय्या का त्याग, सजने-धजने का त्याग, राजकथा, चोरकथा आदि व्यर्थ कथाओं का त्याग, अकार की बहस का

त्याग राजा आदि के दूत का काम न करना, पाखंडी वंचक, बातूनी न होना और महाशील के अन्तर्गत अंग (लक्षण) विद्या स्वप्न मानना भूत-प्रेत सांप-बिच्छू के झाड़फूंक की विद्या का त्यागना, राजविजयी मानना ग्रहण-फल मानना उल्कापात आदि का फल मानना, हस्तरेखा गणना, कविता आदि हीनविद्या से जीविका न करना शरीर पर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना तथा वमन-विरेचन आदि क्रियाओं का परित्याग करते हुए उनसे भिक्षुओं को अलग रहने की देशना की। इसके बाद बुद्ध ने उस समय में प्रचलित बासठ दार्शनिक मतों की व्यर्थता के सम्बन्ध में भिक्षुओं को उपदेश दिया। इनमें से अट्ठारह पूर्वान्तकल्पिक (आदि सम्बन्धी) तथा चौवालिस अपरान्तकल्पिक (अन्तसम्बन्धी) धारणाएँ हैं जो मिथ्या दृष्टि-स्वरूप ही हैं। अट्ठारह पूर्वान्त दृष्टियाँ—(१) शाश्वतवाद (२) नित्यता-अनित्यतावाद, (३) सान्त अनन्तवाद (४) अमराविक्षेप वाद (अनेकान्तवाद) तथा (५) अकारणवाद पर आधारित हैं। अपरान्त चौवालिस दृष्टियाँ मरणान्तर होशवाले आत्मा मरणान्तर बेहोश आत्मा मरणान्तर न होशवाला न बेहोश आत्मा आत्मा का उच्छेद तथा इसी जन्म में निर्वाण की प्राप्ति सम्बन्धी हैं।

बासठ दृष्टियों की असारता दिखलाते हुए बुद्ध ने कहा—जन्म के भोम (भवतृष्णा) के उच्छिन्न हो जाने पर भी तथागत का शरीर जब तक रहता है, तभी तक उन्हें मनुष्य और देवता देख सकते हैं। शरीरपात हो जाने पर, उनके जीवनप्रवाह के निरुद्ध हो जाने से उन्हें देव और मनुष्य नहीं देख सकते। भिक्षुओं जैसे किसी आम के गुच्छे की डेंप के टूट जाने पर उस डेंप से लगे सभी आम नीचे आ गिरते हैं उसी तरह भवतृष्णा के छिन्न होने पर तथागत का शरीर होता है।

इस सूत्र का उपदेश करने के पश्चात् जब आनन्द ने इसके नाम के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की तो बुद्ध ने उसका यह उत्तर दिया—"आनन्द तुम इस धर्मोपदेश को अर्थजाल धर्मजाल ब्रह्मजाल दृष्टिजाल अथवा अलौकिक-संग्राम विजय कह सकते हो।"

इस सूत्र का तिब्बती तथा चीनी अनुवाद प्राप्त है। चीनी अनुवाद को मैंने फिर से संस्कृत में किया है।

(२) सामञ्ञफलसुत्त—श्रामण्यफलसूत्र दीघनिकाय का दूसरा सूत्र राजगृह में जीवक के आम्रवन में कहा गया। राजा मागध वैदेही-पुत्र अजातशत्रु शरद पूनो (आश्विन पूर्णिमा) को मन्त्रियों के साथ राज प्रासाद की छत पर बैठा हुआ था। एकाएक उसके मुँह से निकला—"कैसी रमणीय चाँदनी रात है कैसी सुन्दर चाँदनी रात है किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्संग करें, जो हमारे चित्त को प्रसन्न करे।" इस पर मन्त्रियों में से किसी ने कहा—'महाराज यह 'पूरणकस्सप संघ-स्वामी गणाध्यक्ष गणाचार्य ज्ञानी यशस्वी तीर्थंकर, (संप्रदायप्रवर्तक) बहुत लोगों से सम्मानित अनुभवी चिरकाल के साधु वयोवृद्ध हैं। महाराज उन्हीं 'पूरणकस्सप' से धर्मचर्चा करें। थोड़ी ही चर्चा करने से आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।" ऐसा कहने पर राजा चुप रहा।

दूसरे मन्त्री ने कहा—'महाराज यह 'मक्खलिगोसाल' संघ-स्वामी है " इस उत्तर से भी राजा चुप ही रहा।

इसके पश्चात् और मन्त्रियों ने क्रमशः 'पकुधकच्चायन' 'सञ्जय-बेलट्ठिपुत्त तथा 'निगण्ठनातपुत्त' आदि गणाचार्यों की चर्चा की। पर राजा को इन नामों से कोई तुष्टि नहीं हुई और वह चुप ही बैठा रहा।

उस समय राजा के पास ही प्रसिद्ध वैद्य जीवक कुमारभृत्य बैठा था। वह चुपचाप ही था। उसकी चुप्पी के सम्बन्ध में राजा ने प्रश्न किया। इस पर उसने अजातशत्रु को सम्यक सम्बुद्ध के पास जाने की सलाह दी। राजा तैयार हो गया और उसने आज्ञा की—"तो सौम्य जीवक हाथियों की सवारी तैयार कराओ।"

राजा पाँच सौ हथिनियों पर रानियों को बिठला कर, स्वयं राजहाथी पर सवार हो मशालों की रोशनी के साथ निकला। बगीचे के निकट पहुँचने पर (बाप के हत्यारे) अजातशत्रु को भय घबराहट तथा रोमांच होने लगा। वह घबड़ाकर जीवक से बोला—"सौम्य जीवक कहीं तुम मुझे धोखा

तो नहीं दे रहे हो ? कहीं तुम मुझे शत्रुओं के हाथ में तो नहीं दे रहे हो ? साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बड़े संघ के रहने पर भी जरा भी थूकने तथा खाँसने तक का या किसी दूसरे प्रकार का शब्द न होगा ?

"महाराज मत डरें, आगे चलें महाराज यह मण्डप में दीप जल रहे हैं।"

पश्चात् जहाँ भगवान थे वहाँ गया निर्मल जलाशय की तरह बिलकुल चुपचाप शान्त भिक्षु-संघ को देखकर यह प्रीतिवाक्य (उदान) उचारा—"मेरा उदयभद्र भी इसी शान्ति से युक्त हो जैसा यह भिक्षु-संघ विराज रहा है।" राजा भगवान् को अभिवादन कर भिक्षु-संघ को हाथ जोड़ एक ओर बैठ गया और भगवान् से कुछ प्रश्न की अनुमति माँगी।

बुद्ध ने कहा—"जो चाहो पूछो।" उसने पूछा—"जैसे भन्ते यह भिन्न-भिन्न जो शिल्पस्थान हैं इनके शिल्पफल से इसी शरीर में लोग प्रत्यक्ष जीविका करते हैं। इसी प्रकार क्या श्रामण्य (साधुत्व) फल का भी इसी जन्म में साक्षात्कार किया जा सकता है ?"

बुद्ध ने उससे इस प्रश्न के विषय में यह भी पूछा कि इसे उसने दूसरे श्रमण तथा ब्राह्मणों से पूछा है अथवा नहीं और यदि पूछा है तो वहाँ पर उसे क्या उत्तर प्राप्त हुआ है ? बुद्ध के ऐसा पूछने पर राजा ने इस सम्बन्ध में जो उत्तर दूसरे तीर्थंकरों ने उसे दिए थे उसे उनके समक्ष उपस्थित किया—

'पूरणकस्सप' ने पूछने पर कहा—महाराज करते-कराते छेदन करते, सेंध काटते गाँव लूटते, बटमारी करते परस्त्री-गमन करते झूठ बोलते भी पाप नहीं होता। दान देते दान दिलाते यज्ञ करते यज्ञ कराते, गंगा के उत्तर तीर भी जाये तो इस कारण पुण्य नहीं होता। दान, दम तथा संयम करने और सत्य बोलने से न पुण्य है, न पुण्य का आगम। इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष श्रामण्यफल के पूछने पर अक्रियावाद का वर्णन किया। जैसे भन्ते पूछे आम जवाब दे कटहल यही बात यहाँ भी हुई।

'मक्खलिगोसाल' (आजीवक आचार्य) से भी एक दिन राजा ने यही प्रश्न पूछा तो गोसाल ने कहा—महाराज जीवों के क्लेश का कोई हेतु

नहीं, बिना हेतु-प्रत्यय के ही प्राणी क्लेश पाते हैं, शुद्ध होते हैं। सभी जीव निर्बल निर्वीर्य भाग्य और संयोग के फेर से जातियों में उत्पन्न हो सुख-दुख भोगते हैं। अस्सी लाख छोटे-बड़े कल्प हैं जिन्हें मूर्ख और पंडित जानकर और अनुगमन कर दुःखों का अन्त कर सकते हैं। वहाँ यह नहीं है—इस शील या व्रत या तप अथवा ब्रह्मचर्य से मैं अपरिपक्व कर्म को परिपक्व करूँगा परिपक्व कर्म को भोगकर अन्त करूँगा। सुख-दुःख द्रोण (नाप) से तुले हुए हैं तथा संसार में घटना-बढ़ना—उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं होता। जैसे सूत की गोली फेंकने पर खुलती हुई गिरती है, वैसे ही मूर्ख और पंडित दौड़कर दुःख का अन्त करेंगे। श्रामण्यफल के बारे में पूछने पर 'मक्खलि गोसाल' ने इस प्रकार से अहेतुक संसार की शुद्धि का निरूपण किया।

'अजितकेसकम्बल' के सम्बन्ध में राजा ने कहा—अजितकेसकम्बल से यही प्रश्न पूछा तो अजित ने उत्तर दिया—महाराज न दान है, न यज्ञ है न होम है और न पुण्य अथवा पाप का अच्छा-बुरा फल होता है। न यह लोक है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज देव हैं और न इस लोक में वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण हैं जो इस लोक या परलोक को स्वयं जानकर, देखकर बतलायेंगे। मनुष्य चार महाभूतों से मिलकर बना है। जब वह मरता है, तब पृथिवी महापृथिवी में जल जल में तेज तेज में वायु वायु में और इन्द्रियाँ आकाश में लीन हो जाती हैं। लोग मरे को खाट पर रख कर ले जाते हैं, उसकी निन्दा-प्रशंसा करते हैं। हड्डियाँ कबूतर की तरह उजली हो (बिखर) जाती हैं और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते हैं उसका कोई फल नहीं होता। आस्तिकवाद (आत्मा है) झूठ है। मूर्ख और पंडित दोनों ही शरीर के नष्ट होते ही नाश (उच्छेद) को प्राप्त होते हैं। मरने के बाद कोई नहीं रहता। इस प्रकार श्रामण्यफल के पूछे जाने पर उन्होंने उच्छेदवाद का ही विस्तार किया।

'पकुधकच्चायन' ने यही प्रश्न पूछने पर कहा—महाराज, ये सात काय अकृत, अवध्य तथा स्तम्भवत् हैं। ये चल नहीं होते विकार को

प्राप्त नहीं होते। वे कौन सात काय हैं? पृथिवीकाय आपकाय तेज-काय वायुकाय सुख दुःख और जीवन। यहाँ न कोई हन्ता है न कोई घातयिता। तीक्ष्ण शस्त्र से यदि शीश भी काट दें तो भी कोई किसी को प्राण से नहीं मारता। शस्त्र उन कायों से अलग उनके बीचवाले अवकाश में गिरता है। इस प्रकार ककुधकच्चायन ने दूसरी ही इधर-उधर की बातें बतायीं।

मैंने 'निगण्ठनातपुत्त' से पूछने पर उन्होंने इसका उत्तर दिया—महाराज निर्ग्रन्थ चार प्रकार के संवरों से आच्छादित रहता है—(१) वह जल के व्यवहार का वारण करता है (जिससे जल के जीव मारे न जायें) (२) सभी पापों का वारण करता है (३) सभी पापों के वारण से धुले पाप-वाला होता है तथा (४) सभी पापों के वारण करने में लगा रहता है। इस प्रकार यह भी उत्तर सन्तोषप्रद नहीं रहा।

'सञ्जयवेलट्ठिपुत्त' से भी जब मैंने यही प्रश्न पूछा तो उन्होंने इसका उत्तर अनिश्चयवाद में दिया—महाराज यदि आप पूछें कि क्या परलोक है और यदि मैं समझूँ कि परलोक है तभी तो उसे आप को बता सकता हूँ। मैं ऐसा भी नहीं कहता मैं वैसा भी नहीं कहता मैं दूसरी तरह से भी नहीं कहता मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं है मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं नहीं है। यही स्थिति उसकी अयोनिज प्राणियों अथवा उपासत के सम्बन्ध में रही। इस प्रकार उन्होंने अनिश्चयवाद का ही व्याख्यान किया।"

अजातशत्रु ने यही प्रश्न बुद्ध से भी पूछा। बुद्ध ने उत्तर में प्रश्न किया—"तो मैं आप से ही पूछता हूँ जैसा आप समझें वैसा उत्तर दें। आपका नौकर (जो) आपके सारे कामों को करता है—आप के उठने से पहले ही आप के सारे कामों को कर देता है; आपके सोने या बैठने के बाद ही स्वयं सोता या बैठता है आपकी आज्ञा सुनने के लिए तैयार रहता है प्रिय आचरण करनेवाला प्रिय बोलनेवाला है आपकी आज्ञाओं को सुनने के लिए सदा आपके मुँह की ओर ताकता है। उस

नौकर के मन में यह होता है—मगधराज वैदेहीपुत्र भी मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूँ। यह मगधराज पाँच प्रकार के भोगों का भोग करता है, जैसे मानों कोई देव हो, और मैं उसका नौकर हूँ, मैं भी क्यों न पुण्य करूँ? ऐसा कहकर यदि वह सिर-दाढ़ी मुड़ा काषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाये तो क्या आप कहेंगे कि यह पुरुष लौट आवे तथा फिर मेरा नौकर हो जाये?"

"हम ऐसा नहीं कह सकते। बल्कि हम ही उसका अभिवादन करेंगे उसकी सेवा करेंगे उसे आसन देंगे, चीवर, भिक्षापात्र शयनासन पथ्य देने के लिए निमंत्रण देंगे; उसकी सभी तरह देखभाल करेंगे।"

"तो महाराज क्या साधु होने का यह फल इसी जन्म में नहीं मिल रहा है?"

अजातशत्रु ने "हाँ" कहा।

इसके बाद बुद्ध ने आरम्भिक-शील मध्यम-शील महाशील एवं इन्द्रिय-संयम, स्मृति की सावधानी सन्तोष समाधि चार ध्यान ज्ञान-साक्षात्कार, सिद्धियाँ दिव्यश्रोत्र परचित्तज्ञान पूर्वजन्मस्मृति और दिव्यदृष्टि प्राप्त करनेवाले श्रमणों की बात कही जिनकी साधुता का फल भी इसी जन्म में मिलता है।

राजा बुद्ध के वचन का अभिनन्दन कर चला गया। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—"यदि इसने अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या न की होती तो यह इसी आसन पर निष्पाप धर्मचक्षुवाला हो जाता।"

(३) अम्बट्ठसुत्त—भगवान् उस समय कोशल (अवध) देश के 'इच्छानगल' नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे। कोशल के राजा प्रसेनजित् ने पौष्करसाति नामक विद्वान् ब्राह्मण को 'उक्कट्ठा' की जागीर दे रखी थी। वह ब्राह्मण स्वयं भगवान् के दर्शन को नहीं जा सका। उसने अपने प्रमुख छात्र अम्बष्ठ को यह कहकर इच्छानंगल भेजा—"जाओ देखो कि श्रमण गौतम की जो इतनी ख्याति फैली हुई है वह ठीक है या नहीं। क्या उसमें शास्त्रों में वर्णित बत्तीस महापुरुष-लक्षण विद्यमान हैं?"

अम्बष्ठ उस द्वारा उस स्थान पर गया जहाँ बुद्ध ठहरे थे और वहाँ जाकर भिक्षुओं [illegible] यह पूछा कि भगवान् कहाँ हैं? उन्होंने कहा—"वह बंद द्वारवाली कोठरी है, चुपचाप धीरे से जा कर वहाँ पर कुंडी को हिलाओ, भगवान् तुम्हारे लिए द्वार खोल देंगे।" अम्बष्ठ ने वैसा ही किया। बुद्ध ने द्वार खोल दिया और उसने अन्दर प्रवेश किया।

उस समय अम्बष्ठ माणवक स्वयं बैठे हुए ही भगवान् के टहलते समय कुछ पूछ रहा था, स्वयं खड़ा हो बैठे भगवान् से कुछ पूछ रहा था। उसके इस अशिष्टाचार को देख भगवान् ने कहा—"अम्बष्ठ क्या वृद्ध आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणों के साथ कथा-संलाप ऐसे ही होता है, जैसे कि तुम चलते खड़े बैठे हुए मेरे साथ कर रहे हो?"

"नहीं हे गौतम, चलते ब्राह्मणों के साथ चलते हुए, खड़े ब्राह्मणों के साथ खड़े हुए, बैठे ब्राह्मणों के साथ बैठकर बात करनी चाहिए। किन्तु हे गौतम जो मुंडक श्रमण इभ्य (नीच) काले पैर की संतान (शूद्र) हैं उनके साथ ऐसे ही कथा-संलाप होता है, जैसा कि मेरा आप गौतम के साथ।"

"अम्बष्ठ याचक के तौर पर तेरा यहाँ आना हुआ है। मनुष्य जिस काम के लिए आये उसी अर्थ को उसे मन में करना चाहिए। अम्बष्ठ जान पड़ता है तू ने गुरुकुल में वास नहीं किया।"

तब अम्बष्ठ कुपित हो भगवान् की निन्दा करते तथा ताना देते हुए बोला—"शाक्य जाति चंड है, शाक्य जाति क्षुद्र है, शाक्य जाति बकवादी है। नीच होने से शाक्य ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते और यह अनुचित है कि नीच नीच-समान शाक्य लोग ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते।"

इस प्रकार अम्बष्ठ ने इभ्य (नीच) कह शाक्यों पर यह प्रथम आक्षेप किया।

"शाक्यों ने तेरा क्या बिगाड़ा?

"हे गौतम, एक समय मैं अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसाति के किसी काम से कपिलवस्तु गया था। वहाँ शाक्यों का जहाँ संस्थागार (सभाभवन)

था वहाँ पहुँचा। उस समय बहुत से शाक्य तथा शाक्यकुमार संस्थागार में ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठकर एक दूसरे पर अंगुली चलाते हँस-खेल रहे थे। वहाँ किसी ने मुझे आसन नहीं दिया। अतः हे गौतम यह अयुक्त है, जो इभ्य तथा इभ्यसमान शाक्य ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते।"

इस प्रकार अम्बष्ठ माणवक ने शाक्यों पर दूसरा आक्षेप किया।

"गौरैया भी अम्बष्ठ अपने घोंसले पर स्वच्छन्द आलाप करती है कपिलवस्तु तो शाक्यों का अपना घर है। अम्बष्ठ इस थोड़ी-सी बात से तुम्हें अमर्ष नहीं करना चाहिए।"

"हे गौतम चार वर्ण हैं—क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य और शूद्र। इनमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये तीनों वर्ण ब्राह्मणों के ही सेवक हैं। अतः यह अयुक्त है।"

इस प्रकार अम्बष्ठ ने शाक्यों पर तीसरी बार आक्षेप किया।

तब भगवान् को यह हुआ—यह बहुत बढ़-बढ़ कर, इभ्य कह, शाक्यों पर आक्षेप कर रहा है। क्यों न मैं इससे गोत्र पूछूँ।

"अम्बष्ठ तुम्हारा क्या गोत्र है?"

"कृष्णायन हे गौतम!"

"तुम्हारे पुराने नाम-गोत्र के अनुसार शाक्य आर्यपुत्र होते हैं तुम शाक्यों के दासी-पुत्र हो। शाक्य राजा इक्ष्वाकु को अपना पुरखा मानते हैं। अपनी प्रिया रानी के पुत्र को राज्य देने के ख्याल से ही राजा इक्ष्वाकु ने अपने चार बड़े लड़कों—उल्कामुख करण्डु हस्तिनिक और सिनी-पुर—को राज्य से निर्वासित कर दिया। वे निर्वासित हो हिमालय के पास सरोवर के किनारे एक बड़े शाक (साखू) के वन में रहने लगे। वर्ण (रंग) के बिगड़ने के डर से उन्होंने बहनों के साथ सहवास किया। राजा इक्ष्वाकु के पूछने पर अमात्यों ने यह बात बतायी, तो इक्ष्वाकु ने कहा—कुमार शाक्य (शक्तिवाले) हैं। तब से वही (शाक्य) नाम पड़ गया। दिशाओं को देखकर उस समय उन्हें कृष्ण कहते थे। उसी कृष्ण के वंशज कार्ष्णायन हैं, तुम शाक्यों के दासी-पुत्र हो।"

अम्बष्ठ ने इसे स्वीकार किया। तब दूसरे माणवकों ने यह हल्ला करना शुरू किया—"अम्बष्ठ शाक्यों का दासी-पुत्र है।" भगवान् ने कार्ष्णायनों के पूर्वज कृष्ण की महिमा बतलायी और कहा—"कृष्ण ने दक्षिण देश में जाकर, ब्रह्ममंत्र (वेद) पढ़कर, राजा इक्ष्वाकु से उसकी मद्ररूपी कन्या माँगी। राजा ने सोचा—मेरी दासी का पुत्र होकर मेरी कन्या माँगता है। यह सोच क्रुद्ध होकर, उसने बाण चढ़ाया पर वह ऋषि के प्रताप से बाण को न छोड़ सकता था न समेट सकता था। अमात्यों ने कृष्ण ऋषि के पास जाकर प्रार्थना की—'भदन्त राजा का मंगल हो।'

कृष्ण ऋषि ने उन अमात्यों को यह अवगत कराया कि इन परिस्थितियों में ऐसा करने पर ही राजा का मंगल होगा और वैसा हुआ भी। उस ब्रह्मदण्ड से तर्जित राजा इक्ष्वाकु ने ऋषि को अपनी कन्या प्रदान की। अतएव वे कृष्ण एक महान् ऋषि थे।" बुद्ध ने यही कहते हुए उन दूसरे माणवकों को सम्बोधित करके कहा—"माणवको! अम्बष्ठ माणवक को दासी-पुत्र कह तुम बहुत अधिक मत लजाओ। इससे कृष्ण की महत्ता ही सिद्ध होती है।"

आगे सूत्र में बुद्ध ने जातिवाद का खंडन करते हुए बतलाया—'क्षत्रिय लोग जाति से शुद्धता का ज्यादा ख्याल रखते हैं—ब्राह्मण-कन्या से क्षत्रिय-कुमार का जो पुत्र होगा उसे क्षत्रिय अभिषेक नहीं देंगे क्योंकि माँ की ओर से कमी है। इसके विरुद्ध ब्राह्मण क्षत्रिय-कन्या से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र को श्राद्ध, स्थालीपाक, यज्ञ, पहुनाई आदि सब में सहयोग देंगे। ब्राह्मण उसे वेद पढ़ायेंगे। उसे अपनी कन्या भी देंगे। इस प्रकार, अम्बष्ठ, स्त्री की ओर से तथा पुरुष की ओर से क्षत्रिय ही श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मण हीन हैं।"

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनों में क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है।"

बुद्ध ने जाति तथा गोत्र के अभिमान को छोड़ दिया और आचरण को मुख्य बतलाया—"हे अम्बष्ठ, क्या तुमने ब्राह्मणों के आचार्य प्राचार्यों से सुना है कि जो ये ब्राह्मणों के अष्टक आदि आचार्य थे क्या वे ऐसे सुस्नात सुविभूषित (अंगराग लगाये), कच-मूँछ सँवारे, मणिकुंडल

आमरण पहन स्वच्छ ब्रह्मचारी पाँच काम-भोगों में लिप्त युक्त घिर रहते थे जैसे कि आज आचार्य सहित तुम ?"

"नहीं हे गौतम !"

अम्बष्ठ ने लौटने पर आचार्य पौष्करसाति से सब बातें बतलायीं। वह स्वयं दर्शन करने आया और अपने यहाँ भोजन का निमंत्रण दे गया। भोजन के बाद बुद्ध-उपदेश सुन पौष्करसाति पुत्र-भार्या-परिषद्-अमात्य-सहित भगवान् की शरण में आ उपासक हुआ। उसने कहा—"जैसे 'उक्कट्ठा' में आप गौतम दूसरे उपासक-कुलों में जाते हैं वैसे ही पौष्करसाति-कुल में जावें। वहाँ माणवक या माणविका भगवान् का अभिवादन करेंगी आपको जल देंगी या आपके प्रति चित्त को प्रसन्न करेंगी और यह उनके लिए चिरकाल तक हित तथा सुख के लिए होगा।

(४) सोणदण्डसुत्त—'सोणदण्ड' अंग देश के ब्राह्मण महाशाल और मगधराज बिम्बिसार की ओर से चंपा का जागीरदार था। बुद्ध अंग देश में चारिका करते हुए चंपा पहुँचे और गग्गरा पुष्करणी के तट पर विहार करने लगे। उस समय 'सोणदण्ड' उनके दर्शन के लिए आया। उनसे बुद्ध ने ब्राह्मण-धर्म के विषय में प्रश्न किये। इसके उत्तर में 'सोणदण्ड' ने 'सुजातित्व वेद में पारंगत होना अभिरूपता शील तथा पाण्डित्य और मेधा' इन पाँच ब्राह्मण-धर्मों को बताया।

पाँचों धर्मों में किसी की कमी से भी क्या ब्राह्मण हो सकता है यह पूछने पर एक-एक को छोड़ते प्रज्ञा और शील को उसने आवश्यक बतलाया क्योंकि दोनों एक दूसरे को पूर्ण तथा शुद्ध करते हैं। इस पर साथ गए ब्राह्मणों ने बहुत हल्ला किया—"सोणदण्ड तो श्रमण गौतम की बात मान गया।" इस पर 'सोणदण्ड' ने स्वयं उनसे वाद करने की बात करते हुए अपने भांजे अंगक माणवक की उपमा देते कहा—"अंगक माणवक अभिरूप तथा वेदपाठी भी है किन्तु यदि वह शीलभ्रष्ट हो तो वह सम्पूर्ण गुण किस काम का ?"

निमंत्रण स्वीकार कर भगवान् दूसरे दिन 'सोणदण्ड' के घर भोजन

कराने गये। 'सोणदण्ड' को धार्मिक कथा का उपदेश करके भगवान् चले गये।

बिलकुल शिष्य की तरह आचरण करने पर 'सोणदण्ड' का यश क्षीण होता जिसमें उसके लोगों को हानि की संभावना होती। इसलिए उसने बुद्ध से कहा—"परिषद् में बैठे हाथ जोड़ने को आप प्रत्युत्थान, साफा हटाने को सिर से अभिवादन यान में बैठे कोड़ा उठाने को यान से उतरना तथा धनु उठाने को अभिवादन समझें।"

(५) कूटदन्तसुत्त—मगधराज-सम्मानित विद्वान् ब्राह्मण महाशाल कूटदन्त सोणदण्ड के जैसा ही वैभवशाली मगधदेश के 'खाणुमत' गाँव का स्वामी था। पास के 'अम्बलट्ठिका' में भगवान् विहार कर रहे थे। उनके दर्शन के लिए खाणुमत के ब्राह्मण जा रहे थे। कूटदन्त ने भी जाना चाहा। इस पर ब्राह्मणों ने कहा—"आप बड़े हैं आप न जाइए। उस समय कूटदन्त एक महायज्ञ करने जा रहा था जिसके लिए एक बड़ी संख्या में बैल बछड़े बकरियाँ तथा अन्य पशु यज्ञ के स्थूण पर बलि के लिए लाये गये थे। कूटदन्त ने सुन रखा था कि भगवान् बुद्ध सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदा से भलीभाँति परिचित हैं। अतएव ब्राह्मणों के उक्त कथन पर कूटदन्त ने बुद्ध की महिमा का व्याख्यान करते हुए कहा—

"श्रमण गौतम विद्या तथा आचरण से युक्त हैं और इन्हीं गुणों के कारण मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार जैसे सम्राट् तथा पौष्करसाति के समान अन्य ब्राह्मण आदि उनकी शरण को गये हैं। इस समय वे हमारे गाँव 'खाणुमत' में आये हैं। जो हमारे गाँव-खेत में आते हैं, वे हमारे अतिथि होते हैं और अतिथि हमारे लिए सत्करणीय गुरुकरणीय एवं पूजनीय हैं। साथ ही इस समय जो मैं विशाल यज्ञ संपन्न करना चाहता हूँ उसके संबन्ध में मैं बुद्ध से पूछना चाहता हूँ।

ब्राह्मणों ने यह सुनकर उसका समर्थन किया और उसने बुद्ध के पास जाकर यज्ञ-सम्पदा के सम्बन्ध में प्रश्न किया। बुद्ध ने अतीत काल के महाविजित राजा के महिमामय यज्ञ का वर्णन उसे सुनाया जिसमें चार,

बैल भेड़ बकरियाँ सुअर तथा मुर्गियों आदि का वध नहीं हुआ था साथ ही नौकरों को भयर्तजित करके उनसे बेगार भी नहीं लिया गया था। यज्ञों में बुद्ध ने दान-यज्ञ त्रिशरण-यज्ञ शिक्षापद-यज्ञ समाधि-यज्ञ तथा प्रज्ञा-यज्ञ को भी सम्मिलित करते हुए कूटदन्त को उनका व्याख्यान सुनाया।

कूटदन्त भी उनकी शरण गया तथा उसने दूसरे दिन बुद्ध को भोजनार्थ अपने घर पर निमन्त्रित किया। बुद्ध उसके यहाँ भोजन के लिए गये और भोजनोपरान्त उपदेश देकर वहाँ से चले गये।

(६) महालिसुत्त—वैशाली के महावन की कूटागारशाला में बुद्ध विराज रहे थे। भिक्षु नागित भगवान् के उपस्थाक थे। उस समय मगध तथा कोसल के कुछ ब्राह्मण दूत किसी काम से वैशाली आये हुए थे। वे भगवान् के दर्शन के लिए कूटागारशाला में पहुँचे। आयुष्मान् नागित ने कहा—"भगवान् के दर्शन का यह समय नहीं है।" यह सुनकर वे प्रतीक्षा करने लगे। लिच्छविकुमार 'ओट्ठद्ध' (कटे होंठों वाले) भी एक बड़ी लिच्छवि परिषद् के साथ वहाँ पहुँचे। भिक्षु नागित ने उनसे भी यही कहा कि भगवान् के दर्शन का यह समय नहीं है।

तब 'सिंह श्रमणोद्देश' ने दर्शनार्थ आये इन लोगों को प्रतीक्षा करते हुए देखकर नागित से कहा—"भन्ते काश्यप अच्छा हो यदि यह जनता भगवान् का दर्शन पाये।" भिक्षु नागित ने उन्हीं को भगवान् से यह निवेदन करने के लिए कहा। उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया कि लोग उनके दर्शनार्थ प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बुद्ध ने 'सिंह श्रमणोद्देश' को विहार की छाया में आसन बिछाने को कहा और वहीं आकर बैठ गये। वे ब्राह्मण दूत तथा 'ओट्ठद्ध' लिच्छवी आदि भी वहीं आये। वहाँ 'ओट्ठद्ध' लिच्छवी ने 'सुनक्खत्त' लिच्छवीपुत्र की बात छेड़ी कि वह तो दिव्यभोग आदि चमत्कारों के उद्देश्य से ही भिक्षु बना था और तीन वर्षों तक जब कुछ हाथ नहीं आया तो वह अलग हो गया। बुद्ध ने इसके उत्तर में कहा—"महालि, इनसे भी अधिक उत्तम धर्म आदि हैं जिनके साक्षात्कार तथा अनुभूति के लिए लोग भिक्षु-धर्म का पालन करते हैं।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने ध्यानवाद के सम्बन्ध में 'अभिभायतन' की कथा कही और निर्वाण के साक्षात्कार के उपाय बतलाये।

(७) जालियसुत्त—बुद्ध के कौशाम्बी में घोषिताराम नामक विहार में विहार करते समय 'मुण्डिय' परिव्राजक तथा दारुपात्रिक के शिष्य जालिय इन दोनों ने वहाँ आकर उनसे पूछा—"आवुस गौतम वही जीव है, वही शरीर है अथवा जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?" बुद्ध ने जीव तथा शरीर के भेद-अभेद कथन को अयुक्त बतलाते हुए शील समाधि तथा प्रज्ञा के विश्लेषण द्वारा इसका व्याख्यान किया और उन्हें समझाया कि ये प्रश्न तो उनके सामने उठते हैं, जो अज्ञानान्धकार से आच्छादित हैं। पर एक अर्हत् के लिए इन प्रश्नों का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि वह अज्ञानान्धकार से दूर मिथ्यादृष्टियों से परे रह कर अन्तर्दृष्टि द्वारा स्थिति की वास्तविकता को समझता है।

(८) महासीहनादसुत्त—कोशल देश के 'उजुञ्ञा' के पास 'कण्णकत्थल' 'मिगदाय' (मृगदाव) में बुद्ध विहार करते थे। अचेल (नग्न साधु) काश्यप ने भगवान् के पास जाकर तपस्याओं के बारे में पूछा। भगवान् ने कहा—"सभी तपस्यायें निन्दनीय नहीं हैं। उत्तम धर्माचरण से भी मैं सहमत हूँ। जो श्रमण-ब्राह्मण निपुण पंडित शास्त्रार्थ-विजयी बाल की खाल निकालनेवाले अपनी बुद्धि से दूसरे के मत को छिन्न करते डोलते हैं वे भी किन्हीं-किन्हीं बातों में मुझ से सहमत हैं पर किन्हीं में वे सहमत नहीं हैं। कुछ बातें जिन्हें वे ठीक कहते हैं, उन्हें हम भी ठीक कहते हैं और कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते उन्हें हम भी ठीक नहीं कहते। किन्तु कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते उन्हें हम ठीक कहते हैं। उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—'आवुसो जिन बातों में हमलोग सहमत नहीं हैं उनको अभी जाने दें जिनमें सहमत हैं उन्हीं को एक दूसरे से पूछें-विचारें।"

यहाँ नाना प्रकार की झूठी तपस्याओं एवं उत्तम मार्गान्वित तपस्याओं का उल्लेख अचेल काश्यप ने किया। भगवान् ने उनका खंडन करते हुए

कहा—"जो मग्न रहता है वह आचार-विचार को छोड़ देता है। वह शील-सम्पत्ति चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति की भावना नहीं कर पाता और वह उनका साक्षात्कार भी नहीं कर पाता। अतः वह श्रामण्य तथा ब्राह्मण्य दोनों से दूर है। जब भिक्षु वैर और द्रोह से रहित होकर मैत्री-भावना करता है, चित्त-मलों के क्षय होने से निर्मल चित्त की मुक्ति और प्रज्ञा की मुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार प्राप्तकर विहार करता है यथार्थ में वही भिक्षु तब श्रमण या ब्राह्मण की संज्ञा से विभूषित होता है साग-भात खानेवाला शील चित्त एवं प्रज्ञा की भावना नहीं कर पाता।" इस प्रकार से बुद्ध ने झूठी शारीरिक तपस्याओं का निषेध किया और उनके विपरीत शील चित्त एवं प्रज्ञा सम्पत्तियों का व्याख्यान किया।

इसी प्रकरण में बुद्ध ने राजगृह में न्यग्रोध तपस्वी के प्रश्नों के पूछने की चर्चा की तथा उनके उत्तरों से सन्तुष्ट होकर किस प्रकार से सन्तुष्टि को प्राप्त हो वह उनकी शरण में आकर प्रव्रजित हुआ इसे भी उन्होंने बतलाया। दूसरे मतवाले जो बुद्ध के दर्शन से प्रभावित होकर उनके पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा चाहते हैं उसके बारे में बुद्ध ने कहा—"काश्यप दूसरे मतवाले परिव्राजक इस धर्म में प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा चाहते हैं तो वे चार मास परीक्षार्थवास (परिवास) करते हैं तब भिक्षु उन्हें प्रव्रज्या देते हैं। अभी तो मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम कोई मनुष्य हो।" अचेल काश्यप ने कहा—"भन्ते मैं चार साल परिवास करूँगा यदि भिक्षु लोग मुझ से सतुष्ट हों तो प्रव्रज्या दें।"

अचेल काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या-उपसम्पदा पायी।

(६) पोट्ठपादसुत्त—बुद्ध श्रावस्ती में जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय 'पोट्ठपाद' परिव्राजक वहीं पास में एक शाला में ठहरा था। श्रावस्ती जाते समय बुद्ध 'पोट्ठपाद' के यहाँ गये। उस समय इस परिव्राजक की परिषद् में राजकथा चोरकथा तथा ग्रामकथा आदि व्यर्थ की कथाओं की चर्चा हो रही थी। बुद्ध ने पहुँचते ही पूछा—"क्या कथा

बीच में बस रही थी ?" 'पोट्ठपाद' ने उत्तर दिया—"जाने दीजिए, भन्ते इस कथा को. यह भगवान् को पीछे भी सुनने को दुर्लभ न होगी ।" तथा इसके पश्चात् 'अभिसंज्ञा-निरोध' के सम्बन्ध में अनेक मतों का उल्लेख करते हुए इसकी चर्चा बुद्ध से की । बुद्ध ने इन मतों को अन्धविश्वास बतलाते हुए उस अनुपम साधना का व्याख्यान किया जिससे साधक 'निरोध-समापत्ति' नामक अवस्था को प्राप्त करता है साथ ही इसके लिए शील तथा समाधि आदि सम्पत्तियों को भी उन्होंने बताया । 'निरोध समापत्ति' के बारे में बुद्ध ने यह कहा—"इसमें 'अभिसंज्ञा' का पूर्ण निरोध हो जाता है । उसको यह होता है—मेरा चिन्तन करना बहुत बुरा है और चिन्तन न करना ही श्रेयस् है । यदि मैं अभिसंस्करण न करूँ तो मेरी ये संज्ञाएँ नष्ट हो जायेंगी और दूसरी उदार (विज्ञान) संज्ञाएँ उत्पन्न होंगी । क्यों न मैं न चिन्तन करूँ और न अभिसंस्करण । उसके चिन्तन न करने तथा अभिसंस्करण न करने से वे संज्ञाएँ नष्ट हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञाएँ उत्पन्न नहीं होतीं । वह निरोध को प्राप्त होता है और उसे क्रमशः अभिसंज्ञा निरोधवाली 'संप्रजान-समापत्ति' उत्पन्न होती है ।" इसके पश्चात् वहाँ संज्ञा और आत्मा पर प्रश्न उपस्थित हुआ और बुद्ध ने उसका भी विवेचन किया ।

'पोट्ठपाद' इस प्रसङ्ग को छोड़कर अव्याकृत (अनिर्वचनीय) प्रश्नों पर आया कि (१) लोक नित्य है, (२) लोक अनित्य है, (३) लोक अन्तवान् है, (४) लोक अनन्तवान् है (५) वही जीव है वही शरीर है, (६) जीव दूसरा है शरीर दूसरा है (७) तथागत मरने के बाद उत्पन्न होते हैं, (८) मरने के बाद तथागत उत्पन्न नहीं होते (९) मरने के बाद तथागत होते हैं नहीं भी होते तथा (१०) मरने के बाद तथागत न होते हैं, न नहीं होते ।

बुद्ध ने इनका निर्वचन करते हुए यह व्यक्त किया कि ये दस प्रश्न अर्थयुक्त नहीं हैं और न धर्मयुक्त । ये न आदि-ब्रह्मचर्य के लिए, न उदासीनता के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न शान्ति के

लिए, न अभिज्ञा के लिए, न सम्बोधि के लिए और न निर्वाण के लिए उपयुक्त हैं। इसीलिए इनको अव्याकृत कहा गया है।

'पोट्ठपाद' ने तब व्याकृत के विषय में उनसे पूछा और बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होंने (१) दुःख (२) दुःखहेतु, (३) दुःखनिरोध तथा (४) दुःखनिरोधगामिनी-प्रतिपद् (मार्ग) को व्याकृत किया है, क्योंकि ये ही सार्थक धर्म-उपयोगी आदि ब्रह्मचर्य-उपयोगी निर्वेद विराग निरोध उपशम अभिज्ञा सम्बोधि तथा निर्वाण के लिए हैं। 'पोट्ठपाद' ने इस उत्तर का अनुमोदन किया और बुद्ध वहाँ से चले गये।

बुद्ध के जाने के पश्चात् परिव्राजकों ने 'पोट्ठपाद' को चारों ओर से वाग्बाणों द्वारा जर्जरित करना प्रारम्भ कर दिया कि उसने श्रमण बुद्ध का अनुमोदन क्यों किया जिसका कोई मत एकांश नहीं है? इसके दो-तीन दिन बाद 'पोट्ठपाद' तथा "चित्त हत्थिसारिपुत्त' बुद्ध के यहाँ गये और सब वृत्तान्त से उन्हें अवगत कराया।

भगवान् ने कहा—"पोट्ठपाद परिव्राजक आँख बिना अंधे हैं, उनमें तू ही एक आँखवाला है। कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण आत्मा को मरने के बाद नीरोग एकान्त-सुखी बतलाते हैं। उनसे मैं पूछता हूँ—क्या तुम उस एकान्त-सुखवाले आत्मा को जानते हो? पूछने पर नहीं कहते हैं। क्या एकान्त-सुखवाले देवताओं के शब्द को सुनते हो? पूछने पर नहीं कहते हैं। ऐसा होने पर उनका कथन प्रमाणरहित है। 'पोट्ठपाद' जैसे कोई पुरुष कहे—इस जनपद में जो जनपदकल्याणी (देश की परम सुन्दरी) है, उसे मैं चाहता हूँ। उससे लोग पूछें—जिसे तू प्रेम करता है, जानता है वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है या शूद्री है? ऐसा पूछने पर 'नहीं' कहे। तब पूछें—जिसे तू चाहता है, जानते हो वह किस नामवाली है, किस गोत्रवाली है, लम्बी, नाटी अथवा मझोली है, काली, श्यामा या मद्गुर वर्ण की है, किस ग्राम निगम या नगर में रहती है? ऐसा पूछने पर वह 'नहीं' यह उत्तर दे। तब लोग यह कहें—जिसे तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है। इस पर

यह 'हाँ' कहे। ऐसा होने पर उस पुरुष का कथन क्या प्रमाणरहित नहीं हो जाता ?"

'पोट्ठपाद' ने इसे स्वीकार किया। इस पर बुद्ध ने यह कहा कि इसी प्रकार से उन श्रमण-ब्राह्मणों का कथन प्रमाणरहित है।

इसके पश्चात् बुद्ध ने कहा—"तीन प्रकार के शरीर हैं—स्थूल मनोमय और अरूप। स्थूल शरीर चार महाभूतों से बना है। मनोमय शरीर इन्द्रियों से पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्गवाला है। देवलोक में संज्ञामय होना यह अरूप शरीर है।

'पोट्ठपाद' मैं स्थूल शरीर-परिग्रह से छूटने के लिए धर्म का उपदेश करता हूँ। इस तरह मार्गारूढ हुए के चित्तमल उत्पन्न करनेवाले धर्म छूट जायेंगे शोधक धर्म प्रज्ञा की परिपूर्णता तथा विपुलता को प्राप्त होंगे और वह पुरुष इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरेगा मैं मनोमय शरीर तथा अरूप शरीर के परिग्रह से छूटने के लिए भी धर्मोपदेश करता हूँ।"

बुद्ध ने यह भी कहा कि वर्तमान शरीर ही सत्य है। 'पोट्ठपाद' तथा चित्त हत्थिसारिपुत्त' दोनों ने बुद्ध के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पायी।

(१०) सुभसुत्त—भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के थोड़े ही समय बाद आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती आये हुए थे। वहाँ पर 'सुभ' माणवक ने उनसे उन धर्मों को सीखने की जिज्ञासा प्रकट की जिसका प्रतिपादन तथा प्रतिष्ठापन स्वयं बुद्ध द्वारा हुआ था। आनन्द ने उन्हें शील समाधि तथा प्रज्ञा स्कन्धों के विषय में उपदेश दिया।

(११) केवट्टसुत्त—बुद्ध नालन्दा के पावारिकाम्रवन में ठहरे थे। वहाँ पर 'केवट्ट' गृहपति ने किसी भिक्षु द्वारा अलौकिक ऋद्धियों को प्रदर्शित करने के लिए बुद्ध से निवेदन किया पर बुद्ध ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसके पश्चात् बुद्ध ने उसे उस भिक्षु की कहानी सुनायी जो अपने ऋद्धिबल से विभिन्न लोकों के देवताओं के पास गया था और सभी से यह प्रश्न किया

था कि चारों महाभूत (पृथ्वी जल तेज वायु) कहाँ निरुद्ध होते हैं। पर कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। यहाँ तक कि ब्राह्मणों के देवता ब्रह्मा भी इससे अनभिज्ञ थे। अन्त में वह भिक्षु बुद्ध के पास आया और उपमा के द्वारा बुद्ध ने उसके इस प्रश्न का यह उत्तर दिया कि अनिदर्शन अनन्त तथा अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है, वहाँ चारों महाभूत नहीं रहते और वहीं दीर्घ ह्रस्व अणु स्थूल शुभाशुभ नाम और रूप सर्वथा समाप्त हो जाते हैं।

(१२) **लौहिच्चसुत्त**—कोसल देश के 'साल्वतिका' नदी के तट के पास का जागीरदार ब्राह्मण महाशाल लौहित्य तथा बुद्ध के संवाद का वर्णन इस सूत्र में है। वह सभी धर्मों तथा धर्माचार्यों को झूठा मानता था। बुद्ध ने उसे इस ऐकान्तिक दृष्टि से मुक्त किया।

(१३) **तेविज्जसुत्त**—कोसल देश में विचरण करते हुए बुद्ध अचिरवती (राप्ती) नदी के किनारे 'मनसाकट' नामक ब्राह्मण ग्राम में पहुँचे। उस समय यह स्थान कोसल के प्रमुख ब्राह्मण 'चकी' 'तारुक्ख' 'पोक्खरसाति' 'जानुस्सोणि' 'तोदेय्य' तथा अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मणों का निवास स्थान था। वहाँ पर वशिष्ठ तथा भारद्वाज इन दो ब्राह्मण-तरुणों में ब्रह्मलोक की प्राप्ति के विवादग्रस्त प्रश्न को लेकर विवाद उपस्थित हो गया। दोनों बुद्ध के पास गये। बुद्ध ने वेदों के रचयिता अष्टक वामक वामदेव विश्वामित्र यमदग्नि अंगिरा भारद्वाज वशिष्ठ काश्यप तथा भृगु के बारे में कहा कि उन्हें भी ब्रह्मा की सलोकता का मार्ग विदित नहीं था तथा इन त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषियों को भी इसका ज्ञान नहीं था। बुद्ध ने उन्हें समझाते हुए कहा—"इस परिस्थिति में भी त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकता के लिए मार्ग का उपदेश करते हैं।

जिस प्रकार अचिरवती नदी जल से लबालब भरी हो और किनारे पर बैठे कौवे के पानी पीने लायक हो। उसी समय पार जाने की इच्छा वाला पुरुष आवे और इस किनारे पर खड़े होकर दूसरे तीर का आह्वान

कहे कि हे तीर तुम चले आओ । तो क्या नदी का पार (दूसरा किनारा) इस पार आ जायेगा ? इसी प्रकार 'इन्द्रं ह्वयेम' (इन्द्र को पुकारता हूँ) आदि कहने से क्या वे चले आयेंगे । इस तरह इनके आवाहन में कोई अर्थ नहीं है ।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने प्रथम मार्ग का उन्हें उपदेश दिया ।

२ महावग्ग

(१४) महापदानसुत्त—अपदान (अवदान) पुराण पुरुषों के चरित को कहते हैं । श्रावस्ती के जेतवन में कहे गये इस सुत्त में अर्द्ध ऐतिहासिक विपस्सी बुद्ध के जाति गोत्र जन्म में आने का समय गृहत्याग प्रव्रज्या बुद्धत्व प्राप्ति धर्मचक्र-प्रवर्तन देवता-साक्षी आदि की कथा है जो बुद्ध जीवनी के ही आधार पर वर्णित है ।

(१५) महानिदानसुत्त—उपनिषद् युग में प्रज्ञा ज्ञान के लिए प्रसिद्ध कुरु देश के कम्मासदम्म नामक निगम (कस्बे) में यह सूत्र आनन्द से भगवान् ने कहा । इसमें बुद्धदर्शन के मुख्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद, नानात्मवाद अनात्मवाद तथा प्रज्ञाविमुक्ति आदि का वर्णन है ।

(१६) महापरिनिब्बानसुत्त—यह सूत्र बुद्ध की जीवनी के अन्तिम वर्ष (४८३ ई०पू०) का पूरा विवरण देता है । बुद्ध राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर रहते हैं फिर पैदल चल पाटलिग्राम आते हैं जहाँ मगध के महामन्त्री सुनीथ और वर्षकार लिच्छवियों (वज्जियों) से रक्षा पाने के लिए पाटलिपुत्र (पटना) नगर बसा रहे थे । फिर वैशाली में जीवन के अन्तिम वर्ष को बिता वेलुवा की बीमारी में फँसते हैं । अच्छे होकर पैदल चलते कुसीनारा (कसया) जा वैशाख की पूर्णिमा को निर्वाण प्राप्त करते हैं ।

लिच्छवियों पर कई बार आक्रमण कर असफल हो राजा अजातशत्रु ने अपने मन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को भगवान् बुद्ध के पास गृध्रकूट पर्वत पर यह कहकर भेजा—"ब्राह्मण भगवान् के पास जाओ और जाकर कहो— [illegible] ना चाहता है मगध राजा इन [illegible]वासी 'वज्जियों' को [illegible]

भगवान् जैसा तुमसे बोलें उसे याद कर मुझसे कहो तथागत अयथार्थ नहीं बोला करते।"

यह आदेश पाकर वर्षकार भगवान् बुद्ध के पास गृध्रकूट पर्वत पर पहुँचा और उनसे जाकर राजा अजातशत्रु के सन्देश को कहा। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे खड़े हो उन्हें पंखा झल रहे थे। भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित करके कहा—

गण के अपराजेय होने के कारण

१ "आनन्द क्या तुमने सुना है—वज्जी सम्मति के लिए बराबर बैठक (सन्निपात) करते हैं तथा सन्निपात-बहुल हैं?"

"हाँ भन्ते।"

"आनन्द, जब तक वज्जी बैठक करते रहेंगे सन्निपात-बहुल रहेंगे तब तक उनकी वृद्धि ही समझना हानि नहीं।

२ आनन्द क्या तुमने सुना है—वज्जी एक हो बैठक करते हैं एक हो उत्थान करते हैं एक हो करणीय को करते हैं?

"हाँ भन्ते।"

"आनन्द जब तक वज्जी

३ आनन्द क्या तुमने सुना है—वज्जी अप्रज्ञप्त (गैरकानूनी) को प्रज्ञप्त नहीं करते प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही प्राचीन वज्जि-धर्म को ग्रहण कर बर्तते हैं?

"हाँ भन्ते।"

"आनन्द जब तक वज्जी

४ आनन्द क्या तुमने सुना है—वज्जियों के जो वृद्ध हैं, उनका वे सत्कार करते हैं, उन्हें मानते हैं पूजते हैं तथा उनकी सुनने योग्य बात स्वीकार करते हैं?

"हाँ भन्ते"।

आनन्द जब तक वज्जी

५ आनन्द, क्या तुमने सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ है, कुल-कुमारियाँ है, उन्हें वे छीनकर जबर्दस्ती नहीं बसाते ?

"हाँ भन्ते।"

"आनन्द जब तक वज्जी

६ आनन्द, क्या तुमने सुना है—वज्जियों के नगर के भीतर या बाहर के जो चैत्य (चौरा) हैं वे उनका सत्कार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनके लिए पहले किये गये दान का, पहले की गयी धर्मानुसार बलि को लोप नहीं करते ?"

"हाँ भन्ते।"

"आनन्द जब तक वज्जी

७ आनन्द, क्या तुमने सुना है—वज्जी लोग अर्हतों की अच्छी तरह धार्मिक रक्षा करते हैं। किसलिए ? भविष्य में अर्हत् राज्य में आवें तथा आये हुए अर्हत् राज्य में सुख से विहार करें।

"हाँ भन्ते।

"आनन्द जब तक वज्जी

तब भगवान् बुद्ध ने वर्षकार ब्राह्मण को सम्बोधित किया—"ब्राह्मण जब तक ये सात अपरिहानीय धर्म वज्जियों में रहेंगे तब तक उनकी वृद्धि ही समझना चाहिए, हानि नहीं।

वर्षकार ने कहा—"हे गौतम, इनमें से एक भी अपरिहानीय धर्म से वज्जियों की वृद्धि ही समझनी होगी, सात धर्मों की तो बात ही क्या। राजा को उपलाप (रिश्वत) या आपस में फूट को छोड़ युद्ध करना ठीक नहीं।" ऐसा कहकर वह वहाँ से चला आया।

अट्ठकथा के अनुसार ब्राह्मण ने लौटकर सारी बात राजा से कही। राजा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपलाप का सौदा महँगा है, इसलिए फूट कराने का रास्ता पकड़ना चाहिये। दिखावे के रूप में राजा से समझा करके निर्वासित हो वर्षकार वैशाली पहुँचा और वज्जियों ने उसका विश्वास किया। चार वर्षों में ही उसने ऐसी फूट पैदा कर दी कि

या आदमी भी एक साथ रास्ता नहीं चलने लगे। और इस प्रकार से इस प्रथम गणतन्त्र को निर्बल कराकर अजातशत्रु ने उसे पराजित कर दिया।

अन्तिम यात्रा के लिए बुद्ध राजगृह से निकले। इसके पश्चात् इस सूत्र में राजगृह और नालन्दा के बीच 'अम्बलट्ठिका' (सिलाव) में आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा व्यक्त किये गये बुद्ध के प्रति सुन्दर उद्‌गारों का कथन है, पर यह असंगत ही जान पड़ता है, क्योंकि उसके पहले ही सारिपुत्र का नालन्दा में देहावसान हो चुका था।

पाटलिपुत्र की ओर

'अम्बलट्ठिका' में ठहर कर बुद्ध पाटलिग्राम (पटना) की ओर चले। वहाँ के उपासकों ने नये आवसथागार (अतिथिशाला) में आसन बिछा बुद्ध का उपदेश सुना। वहाँ सदाचार के लाभ तथा दुराचार की हानि पर रात भर उनका उपदेश होता रहा।

उस समय सुनीध और वर्षकार मगध महामात्य वज्जियों को रोकने के लिए पाटलिग्राम में नगर बसा रहे थे। दोनों महामात्यों ने बुद्ध को भोजन का निमंत्रण दिया। भगवान् ने स्वीकार किया। भोजनोपरान्त दोनों मन्त्री भगवान् के पीछे-पीछे यह सोचते चले—जिस द्वार से श्रमण गौतम निकलेंगे उसका नाम 'गौतम' द्वार होगा तथा जिस घाट से गंगा नदी पार करेंगे उसका नाम 'गौतम' तीर्थ होगा। वही हुआ।

वैशाली की ओर

गंगा तट से वैशाली जाते समय बुद्ध कोटिग्राम में ठहरे और वहाँ पर उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया। इसके पश्चात् वे 'नादिका' (नातृका) गये और वहाँ भी धर्म के आदर्शों पर उनका व्याख्यान हुआ। वहाँ से बुद्ध वैशाली गये और अम्बपाली गणिका के आम्रवन में ठहरे। अम्बपाली ने सुना कि भगवान् आकर मेरे आम्रवन में ठहरे हैं। तब वह सुन्दर सुन्दर यानों को जुतवाकर, उन पर बैठ, वैशाली से निकली और भगवान्

के ठहरने के स्थान पर गयी। वहाँ पहुँच उन्हें अभिवादन करके, वह एक ओर बैठ गयी और भगवान् के उपदेशों का उसने श्रवण किया। धार्मिक कथा से संदर्शित होकर उसने दूसरे दिन के भोजन के लिए अपने यहाँ बुद्ध को निमंत्रण दिया। भगवान् ने मौन हो उसे स्वीकार किया।

लिच्छवियों (वज्जियों) ने भी भगवान् के आगमन की बात सुनी। वे भी सुन्दर-सुन्दर यानों पर आरूढ़ हो वैशाली से निकले। उनमें से कोई कोई नील नील वर्ण नील वस्त्र तथा नील अलंकारवाले थे तथा दूसरे दूसरे वर्णवाले। अम्बपाली ने तरुण लिच्छवियों के धुरों से धुरा चक्कों से चक्का तथा जुओं से जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियों ने उससे इसका कारण पूछा। उसने कहा—"आर्यपुत्रो क्योंकि मैंने भिक्षु-संघ के साथ कल के भोजन के लिए भगवान् को निमंत्रित किया है।" लिच्छवियों ने कहा—"अस्सी हजार कार्षापण लेकर यह भोजन हमें कराने दे।" इसका उत्तर अम्बपाली ने दिया—"आर्यपुत्रो, यदि वैशाली जनपद भी दे दो तब भी इस महान् भोजन को मैं न दूँगी।" लिच्छवियों ने चुटकी बजाते कहा—"अरे, हमें अम्बिका ने जीत लिया अरे, हमें अम्बिका ने वंचित कर दिया।"

वे लिच्छवी भगवान् के दर्शनार्थ अम्बपाली-वन को गये। भगवान् ने दूर से ही उन्हें आते देखकर कहा—"अवलोकन करो भिक्षुओं लिच्छवियों की परिषद् को अवलोकन करो भिक्षुओं लिच्छवियों की परिषद् को। भिक्षुओं इस परिषद् को त्रायस्त्रिंश देव-परिषद् समझो।"

लिच्छवियों ने दूसरे दिन के भोजन के लिए भगवान् को निमंत्रित किया जिसके सम्बन्ध में बुद्ध ने यह उत्तर दिया कि उसके लिए वे अम्बपाली को वचन दे चुके हैं।

अगले दिन भोजन कराकर अम्बपाली ने उस आराम को बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को दे दिया।

बेलुवग्राम

वर्षा आ गयी। जब बुद्ध बेलुवग्राम (वेणुग्राम) में पहुँचे तो उन्होंने भिक्षुओं को जगह-जगह वर्षावास करने के लिये कहा और स्वयं बेलुवग्राम

में ठहरे। वर्षावास के समय भगवान् को कड़ी बीमारी हो गयी, मरणान्तक पीड़ा होने लगी। भगवान् ने पूर्ण मनोबल से उसे सहा। बीमारी से उठने पर आनन्द ने प्रसन्नता प्रकट की—"भन्ते भगवान् को मैंने सुखी देखा, अच्छा देखा। भगवान् की बीमारी में मुझे दिशायें नहीं सूझ रही थीं।'

"आनन्द भिक्षु-संघ मुझसे क्या चाहता है? मैंने बिना अन्दर-बाहर किये (छिपाये) धर्म-उपदेश कर दिये हैं। आनन्द तथागत की कोई आचार्य-मुष्टि (रहस्य) नहीं है। जैसे पुराना छकड़ा बाँध-बूँधकर चलाये, वैसे ही तथागत का शरीर भी बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द आत्म-शरण (स्वावलंबी) अनन्यशरण धर्मशरण होकर विहरो।"

निर्वाण की तैयारी

भगवान् चापालचैत्य में आनन्द के साथ विहरने गये। वहाँ उन्होंने आयु-संस्कार (जीवनशक्ति) छोड़ दी। भूचाल हुआ। भगवान् ने अपने देखे स्थानों का स्मरण करते हुए कहा—"रमणीय है राजगृह का गौतम-न्यग्रोध, 'चोरप्रपात' वैभार-पर्वत की बगल में सप्तपर्णी गुहा, ऋषिगिरि की बगल में कालशिला, शीतवन के सर्प-शौण्डिक पहाड़, तपोदाराम, वेणुवन का कलन्दक-निवाप, जीवकाम्रवन, मद्दकुच्छि मृगदाव। इन इन स्थानों में भी आनन्द मैंने यह कहा था—आनन्द जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं, वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है या कल्प के बचे काल तक। मैंने भी चार ऋद्धिपाद साधे हैं, यदि मैं चाहूँ तो कल्प भर ठहर सकता हूँ या कल्प के बचे काल तक। यदि आनन्द तुमने याचना की होती तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बात को अस्वीकार करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिए, आनन्द यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

आनन्द क्या मैंने पहले ही नहीं कह दिया—'सभी प्रियों से जुदाई, वियोग तथा अन्यथाभाव होता है। आनन्द सो वह कहाँ मिल सकता है कि जो उत्पन्न, भूत, संस्कृत तथा नाशवान् है वह नष्ट न हो।'

संभव नहीं। आनन्द, जो यह तथागत ने जीवन-संस्कार छोड़ा त्यागा तथा प्रतिनिःसृष्ट किया तथागत ने बिल्कुल उसकी बात नहीं है। जल्दी ही आज से तीन मास बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा। जीवन के लिए तथागत क्या फिर वमन किये को निगलेंगे? यह संभव नहीं। चलो आनन्द जहाँ महावन कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

महावन कूटागारशाला में जाकर उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से कहा—वैशाली के सभी भिक्षुओं को उपस्थानशाला में एकत्रित करो। वहाँ जाकर बुद्ध ने भिक्षु संघ को उपदेश दिया—"मैंने जो धर्म का उपदेश किया है तुम लोग अच्छी तौर से सीखकर उसका सेवन करना भावना करना भावना बढ़ाना जिससे कि यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी बहुजनहितार्थ बहुजनसुखार्थ लोकानुकम्पार्थ तथा देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिए हो।" और इसी प्रसङ्ग में उन्होंने उस धर्म का व्याख्यान भी किया। उन्होंने कहा—"हन्त भिक्षुओ तुम्हें कहता हूँ—'संस्कार नाश होनेवाले हैं प्रमादरहित हो आदर्श का सम्पादन करो अचिरकाल में ही तथागत का परिनिर्वाण होगा आज से तीन मास पश्चात् तथागत को परिनिर्वाण की प्राप्ति होगी।'"

इसके बाद बुद्ध पूर्वाह्न के समय वैशाली में पिण्डचार करके भोजनो परान्त नागावलोकन (हाथी की तरह सारे शरीर को घुमाकर देखना) से वैशाली को देखकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"चलो भण्डग्राम आम्रग्राम जम्बुग्राम तथा भोगनगर चलें। भोगनगर जाकर वहाँ के आनन्द चैत्य में विहार करते हुए धर्म (बुद्धोपदेश) की चार कसौटियाँ (महाप्रदेश) उन्होंने बताई—

बुद्धोपदेश की चार कसौटियाँ

(१) "भिक्षुओ यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे—'मैंने इसे भगवान् के मुख से सुना मुख से ग्रहण किया है यह धर्म है यह विनय है यह शास्ता का उपदेश है' तो भिक्षुओ उस भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन करना

न निन्दा करना। ऐसा न करके उन पद-व्यञ्जनों का अच्छी तरह सीख-कर, सूत्र से तुलना करना विनय में देखना। यदि सूत्र से तुलना करने पर तथा विनय में देखने पर वह न सूत्र में उतरे, न विनय में दिखायी दे तो विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन नहीं है, इस भिक्षु का ही दुर्गृहीत है। ऐसा होने पर, भिक्षुओं उसको छोड़ देना। यदि उपर्युक्त तुलना में वह सूत्र तथा विनय दोनों में उपस्थित हो तो यह विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन है और उसे धारण करना।

(२) और, भिक्षुओं यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त भिक्षु-संघ विहार करता है और मैंने उसके मुख से सुना है कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है तो विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन है इसे संघ ने सुगृहीत किया।

(३) और, भिक्षुओं यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास में बहुत से बहुश्रुत आगतागम धर्मधर, विनयधर तथा मातृकाधर भिक्षु विहार करते हैं यह मैने उन स्थविरों के मुख से सुना और ग्रहण किया है तो विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन है इसे संघ ने सुगृहीत किया।

(४) और, भिक्षुओं यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास में एक बहुश्रुत आगतागम धर्मधर, विनयधर तथा मातृकाधर भिक्षु विहार करता है और यह मैंने उस स्थविर के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है तो विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन है इसे संघ ने सुगृहीत किया।"

बुद्धोपदेश की सत्यता को जाँच के लिए बुद्ध ने इन्हीं चार कसौटियों को बताया।

वहाँ से वे पावा गए और चुन्द कर्मारपुत्र (सोनार) के आम्रवन में ठहरे। चुन्द ने भोजन का निमंत्रण दिया। उत्तम खाद्य (भोज्य) बहुत सा सूकरमार्दव तैयार कराया।

चुन्द के भात को खाकर भगवान को खून गिरने की कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक पीड़ा होने लगी। भगवान् ने बिना दुःखित हुए सब सहन

किया। फिर 'कुशीनारा' (कसया) की ओर चले। भगवान् मार्ग में हुए एक वृक्ष के नीचे गये। आनन्द ने संघाटी बिछा दी।

"मेरे लिये पानी लाओ, प्यासा हूँ, पीऊँगा।"

आनन्द पानी लाए।

रास्ते में 'आलारकालाम' के शिष्य 'पुक्कुस मल्लपुत्र' ने प्रसन्न हो ईंगुर वर्ण का एक थान भगवान् को और एक आनन्द को भेंट किया।

उसके जाने के पश्चात् आनन्द ने उस थान से भगवान् के शरीर को ढाँक दिया। उस समय बुद्ध का शरीर देदीप्यमान था। इसे देखकर आनन्द ने कहा—"कितना परिशुद्ध तथागत का वर्ण है?" बुद्ध ने उत्तर दिया—"ऐसा ही है आनन्द, ऐसा ही है आनन्द। दो समयों में आनन्द तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध ज्ञात होता है। किन दो समयों में? जिस समय तथागत ने अनुपम सम्यक् सम्बोधि का साक्षात्कार किया और जिस रात तथागत उपाधि रहित निर्वाण को प्राप्त होते हैं। आनन्द आज रात के पिछले पहर 'कुशीनारा' के उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में जोड़ शाल वृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ आनन्द जहाँ 'ककुत्था' नदी है वहाँ चलें।" 'अच्छा' कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान को उत्तर दिया। वहाँ जाकर तथा स्नान करके बुद्ध थक गये थे वे आयुष्मान् चुन्दक से बोले—"चुन्दक मेरे लिए चौपेती संघाटी बिछा दो। थक गया हूँ लेटूँगा।" इसके पश्चात् उन्होंने आनन्द से कहा—"कोई यदि चुन्द को पछतावा कराये तो कहना—आवुस लाभ है तुम्हें, तुमने सुलाभ कमाया जो कि तथागत तेरे पिंडपात को भोजन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। यह दो पिंडपात समान-फलवाले हैं। कौन से दो? जिस पिंडपात को भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करते हैं और जिस पिंडपात को भोजन कर तथागत अनुपादिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त करते हैं।"

हिरण्यवती नदी को पार करके बुद्ध 'कुशीनारा' के मल्लों के शालवन [illegible] आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—

"आनन्द यमक (जुड़वें) शाला के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना करके मचक (चारपाई) बिछा दो थका हूँ लेटूँगा।"

तब भगवान् दाहिनी ओर करवट करके सिंह-शय्या में लेटे। उस समय अकाल ही में वे जोड़ शाल फूल खिले हुए थे। तथागत की पूजा के लिए उनके पुष्प भगवान् के शरीर पर बिखरते थे।

भगवान् ने कहा—"श्रद्धालु कुलपुत्रों के लिए ये चार स्थान दर्शनीय हैं, वैराग्य-दायक हैं—(१) जहाँ तथागत पैदा हुए (लुम्बिनी) (२) जहाँ तथागत बुद्धत्व को प्राप्त हुए (बोधगया) (३) जहाँ तथागत ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया (सारनाथ) और (४) जहाँ तथागत निर्वाण को प्राप्त हुए (कुसीनारा)। श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक-उपासिकायें यहाँ आयेंगी।

आनन्द से खबर सुन कुसीनारा' के मल्ल स्त्री-पुरुष तथागत की वन्दना करने आये। परिव्राजक सुभद्र ने दर्शन करना चाहा। आनन्द ने कहा—'नहीं आवुस सुभद्र तथागत को तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए हैं।

आनन्द के मना करने को तथागत ने सुन लिया। उन्होंने उसे बुलाया और बिना चार मास का परिवास कराये सुभद्र को उपसम्पदा (भिक्षु दीक्षा) दी। वे भगवान् के अन्तिम शिष्य हुए। अन्त में बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ अब तुम्हें कहता हूँ सारे संस्कार (कृतवस्तु) नाशवान् हैं आलस न कर जीवन-लक्ष्य का संपादन करो। यही तथागत का अन्तिम वचन है।"

भगवान् निर्वाण को प्राप्त हुए। अविरागी भिक्षु बाँहें पकड़ कर रोने लगे। आनन्द ने 'कुसीनारा' के मल्लों को सूचना दी। वे बड़ी धूमधाम से नृत्य-वाद्य द्वारा भगवान् के शरीर का सत्कार करते नगर के बाहर-बाहर दक्षिण से जाकर, उत्तर द्वार से प्रवेश कर, पूर्वद्वार से निकल नगर के पूर्व ओर, जहाँ मुकुट-बन्धन नामक मल्लों का चैत्य था वहाँ ले गये। चिता जलाने के लिए महाकाश्यप के पावा से आने की प्रतीक्षा की गयी। महाकाश्यप ने एक कंधे पर चीवर कर अंजली जोड़ तीन बार चिता की परिक्रमा की तथा उनके द्वारा भगवान् के चरणों में सिर से वन्दना करने पर चिता जल उठी। अजातशत्रु ने, वैशाली के लिच्छवियों ने कपिलवस्तु के शाक्यों ने, 'अल्लकप्प'

के 'बुलियों' ने, वेठद्वीप (बेतिया) के ब्राह्मणों ने 'कुसीनारा' के मल्लों के पास दूत भेजकर स्तूप बनाने के लिए बुद्ध-धातु को माँगा। कुसीनारा के मल्लों ने भी उन संघों और गणों से कहा—"भगवान् हमारे ग्रामक्षेत्र में परिनिर्वृत हुए, हम भगवान् के शरीरों का भाग नहीं देंगे।" वहाँ पर झगड़ा होने की सम्भावना हो गयी पर द्रोण ब्राह्मण ने समझा-बुझाकर उन्हें उनमें बाँट दिया। सबने उन पर अपने-अपने यहाँ स्तूप बनवाये। बाँटनेवाले कुम्भ पर द्रोण ने स्वयं स्तूप बनवाया। 'पिप्पलीवन' के मौर्य देर से आये थे। वे चिता के कोयलों को ही स्तूप बनाने के लिए ले गये।

(१७) महासुदस्सनसुत्त—इसमें चक्रवर्ती राजा के वैभव का वर्णन है।

(१८) जनवसभसुत्त—इस सूत्र में मृतकों की गति पर प्रकाश डाला गया है।

(१९) महागोविन्दसुत्त—पंचशिख द्वारा बुद्ध-धर्म की प्रशंसा की गयी है, साथ ही बुद्ध के आठ गुण तथा उनके धर्म की महिमा का व्याख्यान है।

(२०) महासमयसुत्त—इसमें उस समय के प्रसिद्ध देवताओं के नाम-ग्राम आदि दिये हैं।

(२१) सक्कपञ्हसुत्त—इसमें इन्द्र द्वारा बुद्ध से किये गये प्रश्न दिये गये हैं और गन्धर्व पञ्चशिख का तिम्बरु गन्धर्वराज की कन्या से प्रेम का वर्णन है।

(२२) सतिपट्ठानसुत्त—यहाँ पर कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना तथा धर्मानुपस्सना आदि चार स्मृति-प्रस्थानों का व्याख्यान है।

(२३) पायासिराजञ्ञसुत्त—कोसलराज प्रसेनजित् के धर्मगुरु भिक्षु कुमार काश्यप सेतव्या के अधीश्वर क्षत्रिय 'पायासी' के घोर नास्तिक (भौतिकवादी) विचारों का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं। सेतव्या के नास्तिक राजन्य के उस कथानक की बात जैनागम के 'रायपसेणइय' में भी है। 'पएसी' 'पायासी' का ही नाम है। दोनों में 'सेतव्या' का

राजन्य को घोर नास्तिक (भौतिकवादी) बतलाया गया है। जैन सूत्र ने उसे अपना मत छोड़ जैन धर्म स्वीकार करने की बात लिखी है।

एक बार भिक्षु कुमार काश्यप कोसल देश में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विचरते श्वेत देश 'सेतव्या' (श्वेताम्बी) नगर में पहुँचे और शिंशपावन में ठहरे। उस समय पायासी राजन्य (मांडलिक राजा) कोसल राजा प्रसेनजित् द्वारा दत्त सेतव्या का स्वामी होकर रहता था। ब्राह्मण गृहस्थों को जाते देख कारण जान वह भी कुमार काश्यप के पास गया और बोला—हे काश्यप मैं इसी सिद्धान्त को मानता हूँ कि यह लोक भी नहीं है परलोक भी नहीं है क्योंकि मरे नहीं लौटते धर्म में आस्तिकों को भी मरने की इच्छा नहीं होती मृत शरीर में यह चिह्न नहीं मिलता कि जीव यहाँ से निकला है।

"मेरे नौकर लोग चोर को पकड़कर मेरे पास लाते हैं। उनको मैं यह आदेश देता हूँ कि इस पुरुष को जीते जी एक बड़े हंड में डाल मुँह बन्दकर, गीले चमड़े से बाँध गीली मिट्टी लेपकर चूल्हे पर रख आँच लगाओ। वे वैसा ही करते हैं। जब मैं जान लेता हूँ कि वह पुरुष मर गया होगा तब मैं उस हंड को उतार धीरे से मुँह खोलकर (इस आशा से) देखता हूँ कि जीव को बाहर निकलते देखूँ। किन्तु मैं यह नहीं देखता। इस कारण से यह लोक भी नहीं है परलोक भी नहीं है जीव मरकर पैदा नहीं होते तथा अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता।"

"राजन्य मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि दिन में सोते समय कभी स्वप्न में तुमने रमणीय आराम रमणीय वन रमणीय भूमि रमणीय पुष्करिणी नहीं देखी है?"

"हाँ देखी है।"

"उस समय क्या तुम्हारे यहाँ कुबड़े बौने स्त्रियाँ तथा कुमारियाँ पहरे पर नहीं होतीं।"

"वे पहरे पर उस समय होती हैं।"

"वे सब क्या तुम्हारे जीव को उपाय के लिए निकलते और भीतर आते देखते हैं?"

"नहीं हे काश्यप।"

ऋद्धिबल दिखलाना चाहिए। श्रमण गौतम आधा मार्ग आवें मैं भी आधा मार्ग जाऊँ। हम दोनों मिलकर ऋद्धिबल दिखावें। यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धिबल दिखायेंगे तो मैं दो दिखाऊँगा। यह सुन कर एक दिन मैं अचेल पाथिकपुत्र के आराम को गया। और वैशाली के लोगों का एक भारी जमघट वहाँ पर एकत्रित हो गया। यह सब देख सुन कर अचेल पाथिकपुत्र खिन्न होकर वहाँ से चला गया। लोग उसे बुलाने गये पर वह नहीं आया।"

ईश्वर निर्माणवाद का खंडन

इसी सूत्र में आगे कहा है—"जो श्रमण-ब्राह्मण ईश्वर या ब्रह्मा के सृष्टि-कर्तापन के मत को श्रेष्ठ बतलाते हैं उनके पास जाकर मैं कहता हूँ—क्या सचमुच आप लोग ईश्वर के कर्तापन को श्रेष्ठ बतलाते हैं? मेरे ऐसा पूछने पर उत्तर न देकर मुझी से पूछने लगते हैं। मैं कहता हूँ—आवुसो बहुत दिनों के बाद कोई समय आयेगा जब इस लोक का प्रलय होगा जब इस लोक की उत्पत्ति होती है। उसके (ब्रह्मा) मन में होता है—मैं ब्रह्मा महाब्रह्मा विजेता अविजित सर्वज्ञ वशवर्ती ईश्वर, कर्त्ता निर्माता स्वामी भूत तथा भविष्य के प्राणियों का पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियों को उत्पन्न किया। सो क्यों मेरे ही मन से उत्पन्न होकर ये प्राणी यहाँ आये हैं[1]। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न होते हैं, उनके मन में भी होता है—यह ब्रह्मा महाब्रह्मा ईश्वर कर्त्ता, पिता है। इसने हम लोगों को उत्पन्न किया है इस प्रकार आप लोग ईश्वर का कर्तापन बतलाते हैं।

इस प्रकार से ब्रह्मा के सृष्टिकर्ता होने की कल्पना का यहाँ खंडन किया गया है।

(२५) उदुम्बरिकसीहनादसुत्त—इसमें वास्तविक तपस्याओं का वर्णन है।

---

१ मिलाओ उपनिषद्—एकोऽहं बहु स्याम्।

(२६) चक्कवत्तिसीहनादसुत्त—इस सुत्त में स्वावलम्बन चक्रवर्तिव्रत 'निर्धनता सभी पापों की जननी' 'पापों से आयु तथा वर्ण का ह्रास' 'पुण्य से आयु तथा वर्ण की वृद्धि' और भिक्षुओं के कर्तव्य का व्याख्यान है।

(२७) अग्गञ्ञसुत्त—इस सुत्त में वर्णित विषय हैं—प्रलय के बाद सृष्टि, प्राणियों का प्रथम आहार, स्त्री-पुरुष का भेद वैयक्तिक सम्पत्ति का आरम्भ चारों वर्णो का निर्माण राजा की उत्पत्ति ब्राह्मण वैश्य शूद्र की उत्पत्ति श्रमण की उत्पत्ति जन्म नहीं कर्म की प्रधानता।

(वैयक्तिक सम्पत्ति)—प्रारंभिकाल में खाने-पीने की चीजें स्वयं होती थीं। तब किसी आलसी के मन में यह आया—शाम-सुबह दोनों समय शाम शाम के लिए खाने का काम क्यों करूँ? क्यों न एक ही बार शालि (धान) लाऊँ। वह प्राणी एक ही बार लाया तब कोई दूसरा प्राणी उस प्राणी के पास गया जाकर बोला—'आओ शालि लाने चलें।" "हम तो एक ही बार लाये।" देखा-देखी वह भी एक ही बार चार दिनों के लिए लाया। फिर शालि बाँटने लगे दो खेत में मेंड़ बाँधने लगे। लालची आदमी ने अपने भाग की रक्षा करते हुए दूसरे के भाग को चुराकर खा लिया। दूसरी बार भी उसने दूसरे के भाग को चुराकर खा लिया। लोगों ने उसे पकड़ लिया। कोई हाथ से मारने लगा कोई डंडे से कोई लाठी से। इसके बाद चोरी निन्दा मिथ्या-भाषण और दंडकर्म होने लगे। तब प्राणी इकट्ठा हो कहने लगे—"प्राणियों में पाप प्रकट हुए, जो कि चोरी है। आओ हम लोग एक ऐसे आदमी को निर्वाचित करें, जो हम लोगों को ठीक से चलाये। हम उसे शालि का भाग देंगे। महाजनों द्वारा सम्मत (निर्वाचित) होने से उसका नाम 'महासम्मत' पड़ा—'क्षत्रिय' दूसरा नाम पड़ा। वह धर्म से दूसरों का रंजन करता था अतः 'राजा' यह उसका तीसरा नाम पड़ा।

(२८) सम्पसादनीयसुत्त—में यह वर्णित है कि परम ज्ञान में बुद्ध तीनों कालों में अनुपम हैं और सर्वदा ही उनमें अभिमानशून्यता रहती है साथ ही यहाँ बुद्ध के उपदेशों की विशेषताओं का भी उल्लेख है।

(२९) पासादिकसुत्त—इसे बुद्ध ने शाक्य देश में 'वेधञ्ञा' नामक स्थान में कहा था। 'निगण्ठनाटपुत्त' (जैन तीर्थंकर) की उसी समय 'पावा' में मृत्यु हुई थी। और इसके पश्चात् उनके अनुयायियों में फूट हो गयी थी। उनके दो पक्ष हो गये थे और वे आपस में खूब लड़ रहे थे। चुन्द ने यह खबर आनन्द को दी। वे इसे लेकर बुद्ध के पास गये। तथागत ने विचार के लक्षण योग्य गुरु तथा धर्म आदि का व्याख्यान करते हुए बुद्ध के उपदिष्ट धर्मों तथा बुद्धवचन की कसौटी को बताया। उन्होंने यह भी कहा कि बुद्ध कालवादी तथा यथार्थवादी हैं और इसी प्रसंग में अव्याकृत तथा व्याकृत एवं पूर्वान्त और अपरान्त दर्शनों को बताते हुए स्मृति-प्रस्थानों का उन्होंने उपदेश किया।

(३०) लक्खणसुत्त—में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण वर्णित हैं। साथ ही यह भी बताया गया है कि किस कर्म-विपाक से इन लक्षणों में से कौन-सा लक्षण उत्पन्न होता है।

(३१) सिगालोवादसुत्त—राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में भाषित यह सुत्त है। इसमें गृहस्थों का कर्तव्य बतलाया गया है, इसीलिए इसे गृहस्थों का विनय भी कहते हैं।

'सिगाल' राजगृह का गृहपति-पुत्र था। वह सांझ-सवेरे उठकर सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता था। भगवान् के पूछने पर उसने कहा—"मरते समय पिता ने कहा था—तात दिशाओं को नमस्कार करना। पिता के वचन को मानकर मैं नमस्कार करता हूँ।" भगवान् ने कहा—"ऐसे नहीं। चार कर्मक्लेशों के नाश से इस लोक तथा परलोक की विजय होती है। (१) प्राणी न मारना (२) चोरी न करना (३) व्यभिचार न करना (४) झूठ न बोलना।

सम्पत्ति नाश के कारण हैं—(१) शराब आदि का सेवन (२) चौरस्ते की सैर, (३) समाज-नाच-तमाशा (४) जुआ, (५) बुरे मित्र की मित्रता (६) आलस्य में फँसना। इनमें से हरेक से अनिष्ट होता है।" इसमें आगे बतलाया है—

"चार मित्र-रूप में शत्रु हैं—(१) परधनहारक (२) बातूनी (३) सदा मीठा बोलनेवाला (४) अपाय (हानिकर) बात में सहायक।

सच्चे मित्र में चार बातें होती हैं—(१) उपकारी होना (२) सुख-दुःख में समान रहनेवाला (३) अर्थ प्राप्त करानेवाला (४) अनुकम्पक।

दिशाओं का नमस्कार है—(१) माता-पिता पूर्व दिशा (२) आचार्य दक्षिण दिशा (३) पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा (४) मित्र-अमात्य उत्तर दिशा (५) दास-कर्मकर नीचे की दिशा (६) श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। इनकी सेवा दिशा-नमस्कार है।"

(३२) आटानाटियसुत्त—भूत-प्रेतों को संतुष्ट करने के लिये यह सुत्त राजगृह में गृध्रकूट पर भाषित किया गया। इसमें बहुत से भूतों तथा यक्षों के नाम आये हैं।

(३३) संगीतिपरियाय[1]—'पावा' में चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन में विहार करते समय वहाँ के नवीन संस्थागार में यह सुत्त भाषित किया गया। 'निगण्ठनातपुत्त' के मरने पर जैनों के आपसी विवाद की खबर सुनकर यहाँ बुद्ध के मन्तव्यों की सूची एक-दो-आदि संख्याक्रम से 'सारिपुत्त' के मुख से दी गयी है।

(३४) दसुत्तरसुत्त—एक समय भगवान् बुद्ध चम्पा में 'गग्गरा' पुष्करणी के तीर पर विहार कर रहे थे। वहाँ पर 'सारिपुत्त' ने बौद्ध-मन्तव्यों की सूची प्रस्तुत करते हुए उपकारक भावनीय परिज्ञेय प्रहातव्य, हानिभागीय विशेषभागीय दुष्प्रतिवेध्य उत्पादनीय अभिज्ञेय तथा साक्षात्करणीय आदि दशोत्तर धर्मों का व्याख्यान किया।

— • —

१ अङ्गुत्तरनिकाय के प्रारम्भिक छोटे रूप को यह सुत्त व्यक्त करता है।

दूसरा अध्याय

२ मज्झिमनिकाय

मज्झिमनिकाय सुत्तपिटक का दूसरा निकाय है। इसमें १५२ सुत्त हैं और नालन्दा देवनागरी संस्करण के ११, ११४ पृष्ठों को एक भाणवार मानकर यदि हम गणना करें तो इस निकाय में ११६ भाणवार होते हैं। इस निकाय में भाणवारों की संख्या उल्लिखित नहीं है। ११६ भाणवार का अर्थ हुआ कि ३२ अक्षरों के श्लोकों में गिनने पर अनुष्टुप् संख्या होगी २९७२०। इसका हिन्दी अनुवाद मैंने किया था जो कि महाबोधि सभा सारनाथ से १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें वर्णित विषय क्या है, यह भी उसी संस्करण से मैं उद्धृत करता हूँ। इस सम्बन्ध में इस निकाय का विभाजन बतलाना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें तीन पण्णासक हैं— (१) मूलपण्णासक (२) मज्झिमपण्णासक तथा (३) उपरिपण्णासक। प्रथम दो पण्णासकों में ५०—५० सुत्त हैं और अन्तिम में ५२। ये पण्णासक भी विभिन्न वर्गों में विभक्त हैं। नीचे यह सम्पूर्ण विभाजन सुत्त स्थान तथा विषय के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

§ २ मूलपण्णासक

१ (१) मूलपरियायवग्ग

सुत्त	स्थान	विषय
१ (१) मूलपरियायसुत्त	उक्कट्ठा (कोसल)	अज्ञानियों की दृष्टि
२. (२) सब्बासव०	जेतवन (श्रावस्ती)	चित्तमल का दमन, अनात्मवाद
३ (३) धम्मदायाद०	"	भौतिक वारिस नहीं, चित्त के नहीं धम्मय मार्ग

४ (४) भयभेरव०	„	भय-भूत सम्मोहन विचारें
५. (५) अनङ्गण०	„	चित्त-मलवाले चार व्यक्ति भिक्षुपन का ध्येय
६ (६) आकङ्खेय्य०	„	भिक्षु-नियमों का ग्रहण ध्यान प्रज्ञा भवसागर के बन्धन
७ (७) वत्थ०	„	चित्त-मलों का दुष्परिणाम उपक्लेश मैत्री आदि भावनायें तीर्थ-स्नान व्यर्थ
८. (८) सल्लेख०	„	यथार्थ तप
९. (९) सम्मादिट्ठि०	„	पुण्य पाप अष्टाङ्गिक मार्ग प्रतीत्य समुत्पाद
१० (१०) सतिपट्ठान०	कम्मासदम्म (कुरु)	काय मन आदि की भावनायें बोधि लाभ के अंग आर्य सत्य

२ (२) सीहनादवग्ग

११ (१) चूळसीहनाद०	जेतवन	उपादान या आसक्ति का त्याग निर्वाण या प्रतीत्य समुत्पाद

१२	(२) महासीहनाद०	महावनकूटागारशाला (वैशाली)	बुद्ध-जीवनी तपस्यायें अचेलक व्रत, आहार-शुद्धि
१३	(३) महादुक्खक्खन्ध०	जेतवन	भोगों के दुष्परिणाम राजदण्ड
१४	(४) चूळदुक्खक्खन्ध०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	भोगों के दुष्परिणाम, भोगों के कारण दुःखमें सुख ही सुख अप्राप्य मतवाद
१५	(५) अनुमान०	संसुमारगिरि, भेसकळावन मिगदाव (भग्ग)	दुर्वचन के कारण और उनके हटाने के उपाय
१६	(६) चेतोखिल०	जेतवन	चित्त के काँटे, बेड़ियाँ
१७	(७) वनपत्थ०	„	कैसा अरण्य-वास करना चाहिए
१८	(८) मधुपिण्डक०	„	विषयों के सर्व उत्पत्ति और परित्याग
१९	(९) द्वेधावितक्क०	„	चित्तमलों का शमन ध्यान, आध्यात्मिक मार्ग
२०	(१०) वितक्कसण्ठान०	„	राग-द्वेष-मोह के हटाने का उपाय

३ (३) ओपम्मवग्ग

२१	(१) ककचूपम०	„	आरे से चीरे जाने पर भी शान्त रहना वांछित है।
२२	(२) अलगद्दूपम०	„	साँप पकड़ने की सावधानी उपदेश ग्रहण में भी अपेक्षित अनात्मवाद
२३	(३) वम्मिक०	„	पुरुष की निर्वाण-प्राप्ति में बाधाएँ,

२४	(४) रथविनीत०	〃	ब्रह्मचर्य के गौण और मुख्य उद्देश्य विशुद्धियाँ
२५	(५) निवाप०	〃	संसार के शिकार होने से बचने का उपाय
२६	(६) पासरासि०	〃	बुद्धजीवनी (गृहत्याग से धर्म-चक्रप्रवर्तन तक)
२७	(७) चूळहत्थिपदोपम०	〃	यथार्थ गुरु और उसकी मोक्षो-पयोगी शिक्षायें
२८	(८) महाहत्थिपदोपम०	〃	उपादान स्कन्धों से मुक्ति प्रतीत्य-समुत्पाद
२९	(९) महासारोपम०	गृध्रकूट (राजगृह)	भिक्षु-जीवन का वास्तविक उद्देश्य
३०	(१०) चूळसारोपम०	जेतवन	〃 〃 〃

४ (४) महायमकवग्ग

३१	(१) चूळगोसिङ्ग०	गिञ्जकावसथ (नादिका)	मनुष्य आदि की सिधाई
३२	(२) महागोसिङ्ग०	गोसिङ्गसालवन	कैसे पुरुष से तपोभूमि शोभित
३३	(३) महागोपालक०	जेतवन	बुद्धधर्म में सफलताओं की ग्यारह बातें
३४	(४) चूळगोपालक०	उक्काचेल०	मुमुक्षुओं की श्रेणियाँ
३५	(५) चूळसच्चक०	कूटागार (वैशाली)	आत्मवाद-खंडन, अनात्म-वाद-मंडन
३६	(६) महासच्चक०	महावन (वैशाली)	काया की नहीं मन की साधना
३७	(७) चूळतण्हासङ्खय०	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	तृष्णा के क्षय का उपाय

३८.	(८) महातण्हासङ्खय॰	जेतवन "	(अनात्मवाद, धर्म बेड़े की भाँति पार होने के लिए पकड़ रखने के लिए नहीं प्रतीत्यसमुत्पाद, जीवनप्रवाह, गर्भ बाल्य यौवन संन्यास शील-समाधि)
३९.	(९) महाअस्सपुर॰	अस्सपुर (अंग)	श्रमण-ब्राह्मण बनने का ढंग
४०	(१०) चूळअस्सपुर॰	"	" "
	५ (५) चूळयमकवग्ग		
४१	(१) सालेय्य॰	साला (कोसल)	काय-वचन-मन के सदाचार और दुराचार से सुगति दुर्गति
४२	(२) वेरञ्जक॰	जेतवन	" "
४३	(३) महावेदल्ल॰	"	प्रज्ञाहीन प्रज्ञावान् प्रज्ञा विज्ञान वेदना संज्ञा शील समाधि प्रज्ञा आयु, ऊष्मा और विज्ञान
४४	(४) चूळवेदल्ल॰	वेणुवन (राजगृह)	आत्मवाद-त्याज्य उपादान-स्कन्ध अष्टांगिक मार्ग आदि
४५.	(५) चूळधम्मसमादान	जेतवन	चार प्रकार के धर्मानुयायी
४६	(६) महाधम्मसमादान॰	"	धर्मानुयायियों के भेद
४७	(७) वीमंसक॰	"	बुद्ध की परीक्षा
४८.	(८) कोसम्बिय॰	कौशाम्बी	मेलजोल के लिए उपयोगी छह बातें
४९	(९) ब्रह्मनिमन्तनिक॰	"	बुद्ध द्वारा सृष्टिकर्ता ईश्वर तथा ब्रह्मा का खंडन
५०	(१०) मारतज्जनीय॰	सुंसुमारगिरि	मानापमान का त्याग मार को फटकारना

§ २ मज्झिमपण्णासक

६. (१) गहपतिवग्ग

५१ (१) कन्दरक०	चम्पा (चंपा)	स्मृति-प्रस्थान भावना आत्मतप आदि चार पुरुष
५२ (२) अट्ठकनागर०	बेलुवग्राम (वैशाली)	ग्यारह अमृतद्वार (ध्यान)
५३ (३) सेख०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	सदाचार, इन्द्रिय-संयम परिमितभोजन जागरण सद्धर्म ध्यान
५४ (४) पोतलिय०	आपण (अंगुत्तराप)	संसार के जाल तोड़ने के उपाय
५५ (५) जीवक०	जीवकाम्रवन (राजगृह)	मांस-भोजन में नियम
५६ (६) उपालि०	प्रावारिकाम्रवन (नालन्दा)	मन ही प्रधान काया-वचन गौण
५७ (७) कुक्कुरवतिक०	हलिद्दवसन (कोलिय)	निरर्थक व्रत चार प्रकार के कर्म
५८ (८) अभयराजकुमार०	वेणुवन (राजगृह)	हित-प्रिय बात कहनी चाहिये
५९ (९) बहुवेदनीय०	जेतवन	नीरक्षीर सा मेलजोल, संज्ञा-वेदयित निरोध
६० (१०) अपण्णक०	साला (कोसल)	विवादरहित धर्म अक्रियावाद आदि मतवाद आत्मतप आदि चार पुरुष

७ (२) भिक्खुवग्ग

६१ (१) अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद०	वेणुवन (राजगृह)	मिथ्या-भाषण की निन्दा

६२ (२) महाराहुलोवाद०	जेतवन	प्राणायाम कायिकभावना मैत्री आदि भावनाएँ
६३ (३) चूलमालुंक्य०	„	व्याकृत अव्याकृत करने का कारण
६४ (४) महामालुंक्य०	„	संसार के बन्धन और उनसे मुक्ति
६५ (५) भद्दालि०	„	नियमित भोजन अथवा शिक्षा
६६ (६) लकुटिकोपम०	आपण (अंगुत्तराप)	छोटी बात भी भारी हानि पहुँचा सकती है
६७ (७) चातुम०	आमलकीवन (चातुमा)	भिक्षुओं के चार विघ्न
६८ (८) नळकपान०	नळकपान (कोसल)	मुमुक्षु के कर्तव्य
६९ (९) गुलिस्सानि०	वेणुवन (राजगृह)	संयम नहीं तो आरण्यवास व्यर्थ
७० (१०) कीटागिरि०	कीटागिरि (काशी देश)	संयम चार प्रकार के पुरुष लोभी गुरु

८. (३) परिब्राजकवग्ग

७१ (१) तेविज्जवच्छ-गोत्त	महावनकूटागार शाला (वैशाली)	बुद्ध अपने को सर्वज्ञ नहीं मानते तीन विद्याएँ, सुगति के उपाय
७२ (२) अग्गिवच्छगोत्त०	जेतवन	मतवादों का बंधन अव्याकृत आग के बुझने जैसा निर्वाण
७३ (३) महावच्छगोत्त०	वेणुवन (राजगृह)	निर्वाण का मार्ग निर्वाण प्राप्ति का उपाय
७४ (४) दीघनख०	गृध्रकूट (राजगृह)	मतवादों का आग्रह, नाना

		अपनी नहीं सभी अनुभव अनित्य
७५. (५) मागन्दिय०	कम्मासदम्म (कुरु)	इन्द्रिय-संयम ऊपर जाने पर नीचे का सुख फीका
७६ (६) सन्दक०	घोसिताराम (कौशाम्बी)	व्यर्थ और असंतोषकर प्रव्रज्या अक्रियावाद आदि मत विचारे, अर्हत् का ज्ञान
७७ (७) महासकुलुदायी०	कम्मासदम्म (कुरु)	बुद्ध में वास्तविक श्रद्धा कैसे बुद्धत्व के उपयोगी धर्म
७८ (८) समणमंडिक०	जेतवन	सुकर्मी पुरुष
७९. (९) चूलसकुलुदायि०	वेणुवन (राजगृह)	जैनों का सिद्धान्त परिव्राजकों का सिद्धान्त सुखमय लोक का मार्ग
८० (१०) वेखनस०	जेतवन	परिव्राजकों का सिद्धान्त पूर्वान्त अपरान्त के सिद्धान्त

९. (४) राजवग्ग

८१ (१) घटिकार०	(कोसल)	त्यागमय गृहस्थ-जीवन
८२ (२) रट्ठपाल०	थुल्लकोट्ठित (कुरु)	त्यागमय भिक्षु-जीवन भोगों की असारता
८३ (३) मखादेव०	मिथिला (विदेह)	कल्याणमार्ग
८४ (४) माधुरिय०	गुन्दवन (मथुरा)	वर्ण-व्यवस्था का खंडन
८५. (५) बोधिराजकुमार०	भेसकळावन (सुंसुमारगिरि)	बुद्धजीवनी (गृहत्याग से बोधि-प्राप्ति तक)
८६ (६) अंगुलिमाल०	जेतवन	अंगुलिमाल डाकू का जीवन-परिवर्तन
८७. (७) पियजातिक०	,,	प्रियों से शोक और दुःख की उत्पत्ति

८८. (८) बाहीतिय०	,,	बुद्ध निन्दनीय कर्म नहीं कर सकते
८९. (९) धम्मचेतिय०	मेदलुम्प (शाक्य)	भोगों के दुष्परिणाम बुद्ध-प्रशंसा
९० (१०) कण्णत्थलक०	कण्णत्थल मिगदाय (उजुञ्ञा)	सर्वज्ञता असंभव वर्ण-व्यवस्था-खंडन, देव ब्रह्मा

१० (५) ब्राह्मणवग्ग

९१ (१) ब्रह्मायु०	मिथिला (विदेह)	महापुरुषलक्षण बुद्ध का गमन घर में प्रवेश आदि
९२ (२) सेल०	आपण (अंगुत्तराप)	भोजन का ढंग ब्राह्मण वेदगू आदि की व्याख्या बुद्ध के गुण सेल ब्राह्मण की प्रव्रज्या
९३ (३) अस्सलायण०	जेतवन	वर्ण-व्यवस्था-खंडन
९४ (४) घोटमुख-सुत्त०	इसिपतनमिगदाय (वाराणसी)	आत्मतप आदि चार पुरुष
९५. (५) चंकि०	ओपसाद देववन (कोसल)	बुद्ध के गुण ब्राह्मणों के वेद और ऋषि सत्य की रक्षा और प्राप्ति
९६ (६) एसुकारि०	जेतवन	वर्ण-व्यवस्था-खंडन
९७. (७) धान ञ्जानि०	वेणुवन (राजगृह)	अपना किया अपने साथ
९८. (८) वासेट्ठ०	इच्छानंगल	वर्ण-व्यवस्था-खंडन
९९. (९) सुभ	जेतवन	गृहस्थ और संन्यास की तुलना ब्रह्मलोक का मार्ग
१०० (१) संगारव०–	मंडलकप्प (कोसल)	बुद्ध की तपश्चर्या

§ ३ उपरिपण्णासक

११ (१) देवदहवग्ग

१०१ (१) देवदह॰	देवदह (शाक्य)	कायिक तपस्या निस्सार, मानस तप ही लाभप्रद भिक्षुपन का सुख
१०२ (२) पञ्चत्तय॰	जेतवन	आत्मवाद आदि नाना मतवाद
१०३ (३) किन्ति॰	बलिहरणवनखण्ड (कुसिनारा)	मेलजोल का ढंग
१०४ (४) सामगाम॰	सामगाम (शाक्य)	बुद्ध के मूल उपदेश संघ में विवाद होने का कारण सात प्रकार के फैसले मेलजोल का ढंग
१०५ (५) सुनक्खत्त॰	महावनकूटागार शाला (वैशाली)	ध्यान चित्त-संयम
१०६ (६) आनञ्ज सप्पाय॰	कम्मासदम्म (कुरु)	भोग निस्सार है
१०७ (७) गणकमोग्गल्लान॰	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	क्रमशः धर्म में प्रगति
१०८ (८) गोपकमोग्गल्लान॰	वेणुवन (राजगृह)	बुद्ध के बाद भिक्षुओं का मार्ग दर्शयिता
१०९ (९) महापुण्णम॰	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	स्कन्ध आत्मवाद-खंडन
११० (१०) चूळपुण्णम॰	„	सत्पुरुष और असत्पुरुष

१२ (२) अनुपदवग्ग

१११ (१) अनुपद॰	जेतवन	सारिपुत्त के गुण—प्रज्ञा समाधि आदि

११२ (२) छब्बिसोधन॰	,,	अर्हत् की पहचान
११३ (३) सप्पुरिसधम्म	,,	सत्पुरुष और असत्पुरुष
११४ (४) सेवितब्ब असेवितब्ब॰	,,	सेवनीय; असेवनीय
११५ (५) बहुधातुक॰	,,	धातुएँ, दृष्टि-प्राप्त पुरुष, स्थान-अस्थान-ज्ञानकार
११६ (६) इसिगिलि॰	ऋषिगिरि (राजगृह)	ऋषिगिरि के प्रत्येक बुद्ध
११७ (७) महाचत्तारीसक॰	जेतवन	ठीक समाधि
११८ (८) आनापान सति॰	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	प्राणायाम ध्यान
११९ (९) कायगता-सति॰	जेतवन	कायायोग
१२० (१०) सङ्खारुप्पत्ति॰	,,	पुण्य-संस्कारों का विपाक

१३ (३) सुञ्ञतवग्ग

१२१ (१) चूळसुञ्ञता॰	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	चित्त की शून्यता का योग
१२२ (२) महासुञ्ञता॰	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	,,
१२३ (३) अच्छरियब्भुतधम्म॰	जेतवन	बुद्ध कहाँ और कैसे उत्पन्न होते हैं
१२४ (४) बक्कुल॰	वेणुवन (राजगृह)	बक्कुल का त्यागमय भिक्षु जीवन
१२५ (५) दन्तभूमि॰	,,	चित्त की एकाग्रता, संयम की शिक्षा

१२६ (६)	भूमिज०	"	उचित रीति से पालन किया गया ब्रह्मचर्य सफल होता है
१२७. (७)	अनुरुद्ध०	जेतवन	भावना-योग (अप्रमाण चित्त विमुक्ति)
१२८ (८)	उपक्किलेस०	घोषिताराम (कौशाम्बी)	कलह का कारण और चिकित्सा योग-युक्तियाँ
१२९. (९)	बाल पंडित०	जेतवन	नरक पापी मूर्ख के कर्म स्वभाव चक्रवर्ती राजा
१३० (१०)	देवदूत०	"	नरक-वर्णन

१४ (४) विभङ्गवग्ग

१३१ (१)	भद्देकरत्त०	जेतवन	भूत-भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान में लगो
१३२ (२)	आनन्दभद्देकरत्त०	"	"
१३३ (३)	महाकच्चायन भद्देकरत्त०	तपोदाराम (राजगृह)	" (सविस्तार)
१३४ (४)	लोमसकङ्गिय भद्देकरत्त०	जेतवन	"
१३५ (५)	चूलकम्मविभङ्ग०	"	कर्मों का फल
१३६ (६)	महाकम्मविभङ्ग०	वेणुवन (राजगृह)	"
१३७ (७)	सळायतनविभङ्ग०	जेतवन	छह आयतन कामना और निष्कामता स्मृति-प्रस्थान
१३८. (८)	उद्देसविभङ्ग०	"	इन्द्रिय-संयम ध्यान अपरिग्रह
१३९. (९)	अरणविभङ्ग०	"	मुमुक्षु की चर्या
१४० (१०)	धातुविभङ्ग०	राजगृह	धातुओं का विभाग मन की साधना

१४१	(११) सच्चविभङ्ग०	ऋषिपतन मृगदाव (वाराणसी)	चार आर्यसत्य
१४२	(१२) दक्खिणाविभङ्ग०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	संघ व्यक्ति से ऊपर है
	१५. (५) सळायतनवग्ग		
१४३	(१) अनाथपिण्डिकोवाद०	जेतवन	अनाथपिण्डिक की मृत्यु अनासक्ति योग
१४४	(२) छन्नोवाद०	वेणुवन (राजगृह)	अनात्मवाद छन्न की आत्महत्या
१४५	(३) पुण्णोवाद०	जेतवन	धर्म प्रचारक की सहिष्णुता और त्याग
१४६	(४) नन्दकोवाद०	„	अनात्मवाद गौतमी
१४७	(५) चूळराहुलोवाद०	„	अनात्मवाद
१४८	(६) छछक्क०	„	इन्द्रिय विषय, विज्ञान और और तीनों का समागम अनात्मवाद (सविस्तार)
१४९	(७) महासळायतन०	„	तृष्णा और दुःख
१५०	(८) नगरविन्देय्य०	नगरविन्देय्य (कोसल)	सत्कार के पात्र
१५१	(९) पिण्डपातपारिसुद्धि०	वेणुवन (राजगृह)	विषयों का त्याग स्मृति-प्रस्थान आदि भावनायें
१५२	(१०) इन्द्रियभावना०	मुखेलुवन (कजंगला)	इन्द्रिय-संयम

मज्झिमनिकाय के १५० सुत्त संक्षिप्त तथा गम्भीर हैं। ये राजमहल (बिहार) के कजंगल (कंकजोल) से लेकर कुरु देश के 'कम्मासदम्म'

मगर तक कहे गये हैं। इन सूत्रों से स्पष्टतया यह ज्ञात होता है कि बुद्ध के मूल उपदेशों तथा उनके कार्य का लक्ष्य क्या था? दो सूत्रों में बुद्ध ने वत्सराज उदयन के पुत्र बोधिराजकुमार से सुसुमारगिरि (चुनार) में अपने जीवनी से सम्बन्धित कुछ बातें भी बतलायी हैं। सूत्रों की विषय-सूची पहले ही दे दी गयी है। यहाँ पर कुछ विशेष सूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है—

१ मूलपरियायसुत्त (१)—इस निकाय का यह प्रथम सुत्त है। ज्ञान के अभिमान में चूर ब्राह्मण भिक्षुओं को यह उपदेश दिया गया था। यह तत्त्व-ज्ञान से परिपूर्ण सुत्त है। अतः इसे समझने में उन्हें कठिनाई हुई तथा इसे वे न समझ सके, और उपदेश के समाप्त होने पर चुप रहते हुए बुद्ध के कथन का उन्होंने अभिनन्दन नहीं किया। इस सुत्त में दर्शन का व्याख्यान इस प्रकार से किया गया है—संसार में मिट्टी, पानी, आग, हवा, प्राणी, देवता, प्रजापति, ब्रह्मा, आभास्वर देवता, शुभकृत्स्न देवता, अभिभू देवता, आकाशानन्त्यायतन देवता, विज्ञानानन्त्यायतन देवता, आकिञ्चन्यायतन देवता, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन देवता, एकत्व, नानात्व तथा निर्वाण आदि संज्ञाएँ सभी व्यवहार के लिए हैं। एक अत्यन्त सामान्य व्यक्ति से लेकर अर्हत् तक सभी व्यवहार में इन सबका प्रयोग नित्य करते हैं। पर इन दो प्रकार के पुरुषों के इस व्यवहार में अन्तर केवल इतना है कि मूर्ख अथवा सामान्य जन उन्हें परमार्थतः वैसा ही ग्रहण करके उनमें लिप्त होते हैं, पर अर्हत् को परमार्थतः उनके मूल्य स्वभाव का ज्ञान होता है, उनमें लिप्त नहीं होता। जिस व्यक्ति ने अपने ज्ञान के विकास में जिस स्तर की प्राप्ति की है वह उसी के अनुसार व्यवहार की सम्पूर्ण वस्तुओं को परमार्थ रूप में देखता है, और अपने स्तर के अनुसार ही उतनी ही दूर तक वह उनसे अलिप्त हो पाता है।

इस प्रकार इस सुत्त में उस समय की व्यवस्था भी व्यक्त है। यह दार्शनिक तत्त्वों के गम्भीर विवेचन से परिपूर्ण सुत्त है, अतएव कठिन है।

२ अनङ्गणसुत्त (५)—इस सुत्त में यह कहा गया है कि संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—(१) वे जो बुरे होते हुए भी यह नहीं जानते कि उनमें बुराई है, (२) वे जो बुरे होते हुए यह जानते हैं कि उनमें बुराई है (३) वे जो अच्छे होते हुए भी यह नहीं जानते कि उनमें अच्छाई है और (४) वे जो अच्छे होते हुए यह जानते हैं कि उनमें अच्छाई है। इनमें पहले प्रकार के मनुष्य सबसे हीन हैं और चौथे प्रकार के सबसे उत्तम। इस प्रकार से इस सुत्त में बुद्ध के महाश्रावकों (सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान) के वार्तालाप का उल्लेख है। अन्त में आयुष्मान् 'महामोग्गल्लान' ने आयुष्मान् 'सारिपुत्त' के इस धर्मोपदेश का बड़ा अभिनन्दन किया।

३ चूळदुक्खक्खन्धसुत्त (१४)—एक समय भगवान् शाक्य देश में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार करते थे। शाक्यों का प्रधान नेता महानाम शाक्य एक दिन बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने बताया कि रूप शब्द, गन्ध रस और स्पर्श ये पाँच कामगुण हैं। सारा संसार इन्हीं के आस्वाद के पीछे पड़ा है। यही अशान्ति तथा दुःख के घर हैं। इस सम्बन्ध में बात करते-करते बुद्ध ने निर्ग्रन्थ (जैन साधुओं) की बात कही—

"महानाम मैं राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर रहता था। उस समय बहुत से निर्ग्रन्थ साधु ऋषिगिरि की कालशिला पर खड़े रहने का व्रत ले, आसन छोड़ उपक्रम करते दुःख कटु, तीव्र वेदना सह रहे थे। शाम को उनके पास जाकर मैंने पूछा—'आवुसो, तुम क्यों दुःख कटु, तीव्र वेदना सह रहे हो?' उन्होंने कहा—'आवुस 'निगण्ठनातपुत्त' (महावीर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी एवं अपरिशेष दर्शन के जाननेवाले हैं और चलते खड़े सोते तथा जागते सदा ही उनको ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है।

वे ऐसा कहते हैं—

निगण्ठो तुम्हारा पहले का किया जो कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर तपस्या से नष्ट करो और जो इस समय यहाँ काय-वचन-मन से संवृत हो यह भविष्य के लिए पाप का न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मों का

तपस्या से नष्ट होने से और नये कर्मों के न करने से भविष्य में चित्त अनास्रव (निर्मल) होगा। भविष्य में आस्रव न होने से कर्म का क्षय होगा। कर्मक्षय से दुःखक्षय, दुःखक्षय से वेदना (अनुभव) का क्षय, वेदनाक्षय से सभी दुःख नष्ट होंगे। हमें यह विचार पसन्द है। हम इससे सन्तुष्ट हैं।

'ऐसा कहने पर, महानाम, मैंने उन निगण्ठों से कहा—

'क्या तुम आवुसो जानते हो—हम पहले थे ही, हम नहीं न थे?

'नहीं आवुस।

'क्या तुम आवुसो यह जानते हो—हमने पूर्व में पाप कर्म किये ही हैं, नहीं नहीं किये?

'नहीं आवुस।

'क्या तुम आवुसो, यह जानते हो—अमुक अमुक पाप कर्म किये हैं?

'नहीं आवुस।

'क्या तुम आवुसो यह जानते हो—इतना दुःख नाश को प्राप्त हो गया, इतना दुःख नष्ट करना है तथा इतने दुःख के नष्ट होने से सब दुःख का नाश हो जायेगा।'

'नहीं आवुस।

'क्या तुम आवुसो जानते हो—इसी जन्म में अकुशल धर्मों का प्रहाण और कुशल धर्मों का लाभ होता है?

'नहीं आवुस।

'इस प्रकार, निगण्ठो तुम इन सबको नहीं जानते। ऐसा होने से तो इस पक्ष की प्राप्ति होने लगती कि जो लोक में रुद्रकर्मा हैं वे ही निगण्ठ साधु बनते हैं।

इस पर निगण्ठों ने फिर कहा—

'आवुस गौतम, सुख से सुख प्राप्य नहीं है, दुःख से सुख प्राप्य है। यदि सुख से सुख प्राप्य होता तो राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार सुख प्राप्त

करता और आप से अधिक सुखविहारी होता। चूंकि मुझ से सुख प्राप्य नहीं है, अतएव यह स्थिति नहीं है। और यदि इसका उत्तर हम आप ही से जानना चाहें, तो क्या होगा?

'तो आवुसो निगण्ठो, हम तुम्हीं से पूछते हैं, जैसा तुम्हें जँचे वैसा उत्तर दो। तुम लोग क्या मानते हो—राजा बिम्बिसार काया से बिना हिले वचन से बिना बोले सात रात-दिन एकान्त सुख अनुभव करते क्या विहार कर सकता है अथवा यह छह, पाँच चार, तीन दो तथा केवल एक रात-दिन एकान्त सुख का अनुभव करते विहार कर सकता है?

'नहीं आवुस।

'आवुसो निगण्ठो मैं काया से बिना हिले वचन से बिना बोले एक, दो तीन चार, पाँच छह तथा सात रात-दिन एकान्त सुख का अनुभव करता विहार कर सकता हूँ। निगण्ठो ऐसा होने पर कौन अधिक सुखविहारी है—राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार अथवा मैं?

'ऐसा होने पर तो राजा बिम्बिसार से आयुष्मान् गौतम ही अधिक-सुखविहारी हैं।'"

बुद्ध ने महानाम को यह प्रदर्शित किया कि राजा यथार्थ में सुखी नहीं है। उसके जो सुख दिखलायी पड़ते हैं, वे बाह्य साधनों पर अवलम्बित हैं और वे साधन परम रूप से अस्थायी हैं। राजा को यदि एकान्त स्थान में रहना पड़े तो वह व्याकुल हो जायेगा। पर इसके विपरीत ध्यानी भिक्षु अनेक दिनों तक एक बन्द स्थान में पड़े-पड़े अपने स्वयं के अन्दर प्रस्फुटित होनेवाले सुख-स्रोत में आनन्द लेता रहेगा। इससे यही सिद्ध होता है कि वास्तविक सुख एक ध्यानी प्रव्रजित को ही प्राप्त होता है राजा को नहीं।

महानाम ने सन्तुष्ट हो भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया।

४ अलगद्दूपमसुत्त (२२)—बुद्ध अपने उपदेशों में बड़ी सुन्दर उपमाएँ देते थे। इस सुत्त में उपदेशों के ग्रहण करने की उपमा सर्प (अलगद्द) पकड़ने से दी गयी है।

एक बार अरिष्ट भिक्षु को ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई थी—"मैं भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो निर्वाण आदि के अन्तरायक (विघ्नकारक) धर्म भगवान् ने कहे हैं, सेवन करने पर भी वे अन्तराय नहीं कर सकते।"

यह बात बुद्ध तक पहुँची। बुद्ध ने उसे बुला कर कहा—"मोघ पुरुष किसको मैंने ऐसा धर्मोपदेश किया है, जिसे तू ऐसा जानता है? मैंने तो अनेक प्रकार से अन्तरायिक धर्मों को अन्तरायिक कहा है और उनके बहुत से दुष्परिणाम बतलाये हैं, पर तू अपनी उल्टी धारणा से हमें झूठ लगा रहा है और अपनी भी हानि कर रहा है तथा बहुत अपुण्य कमा रहा है। यह चिरकाल तक तेरे लिए अहितकारक तथा दुःखकारक होगा।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ अरिष्ट इस धर्म में छू तक नहीं गया है क्या तुम भी मेरे ऐसे उपदेश किये धर्म को ऐसा ही जानते हो जैसा कि यह अरिष्ट भिक्षु अपनी उल्टी धारणा के कारण बतला रहा है?

भिक्षुओ, कोई-कोई मोघपुरुष गद्य व्याकरण गाथा उदान इति-वृत्तक जातक अद्भुतधर्म तथा वैदल्य – इन नौ प्रकार के धर्मों को धारण करते हैं। वह उन्हें धारण करते हुए भी उनके अर्थ को प्रज्ञा से नहीं परखते और इससे धर्मों का आशय नहीं समझते। वे या तो उपारम्भ के लाभ के लिए अथवा वाद में प्रमुख बनने के लिए ही धर्मों को धारण करते हैं। उनके लिए ये धर्म अहित और दुःखप्रद होते हैं, क्योंकि ये उन्हें उलट रूप में ही धारण करते हैं।" इस सम्बन्ध में बुद्ध ने 'अलगर्द' (साँप) की उपमा दी—"जैसे भिक्षुओ 'अलगर्द' को पकड़नेवाला उसकी खोज में घूमता हुआ कोई पुरुष आवे और एक महान् साँप उसे दिखायी दे उसे वह देह से या पूँछ से पकड़े और वह उलट कर उसे काट ले तब वह उस दंश के कारण मरण अथवा उसके समान दुःख को प्राप्त होवे क्योंकि साँप को

दुर्गृहीत था। ऐसी ही गति धर्म के प्रति उल्टी दृष्टि रखनेवाले की होती है।

इसलिए, भिक्षुओ! मेरे जिस भाषण का अर्थ तुम समझ लो, उसे वैसे धारण करना और जिसका अर्थ तुम नहीं समझे हो उसे मुझसे पूछना अथवा किसी अन्य जानकार भिक्षु से।

भिक्षुओ, मैं तुम्हें धर्म का उपदेश बेड़े की भाँति पार जाने के लिए करता हूँ, उसे पकड़ रखने के लिए नहीं।

भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष अध्वान मार्ग पर जाते हुए एक महान् जलार्णव को प्राप्त हो। उस जलार्णव का दूसरा किनारा क्षेमयुक्त और भयरहित हो तथा उरला किनारा खतरा और भय से पूर्ण हो। वहाँ न पार लेजानेवाली नाव हो, न इधर से उधर आने-जाने के लिए पुल हो। तब उस पुरुष के मन में यह हो—'क्यों न मैं तृण-काष्ठ-पत्र जमा करके बेड़ा बाँधूँ और उस बेड़े के सहारे हाथ और पैर से मेहनत करते स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाऊँ'। तब भिक्षुओ! वह पुरुष बेड़ा बनाकर पार उतर जाय। उत्तीर्ण हो जाने पर, पार चले जाने पर, उसके मन में ऐसा हो—'यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे मैं पार उतरा हूँ, क्यों न मैं इस बेड़े को सिर पर रखकर या कन्धे पर उठाकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ।' तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या वह ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़े में कर्तव्य पालनेवाला होगा?"

"नहीं भन्ते।"

"ऐसे ही भिक्षुओ! मैं बेड़े की भाँति निस्तरण के लिए तुम्हें धर्मों का उपदेश करता हूँ, पकड़ रखने के लिए नहीं। धर्म को बेड़े के समान उपदिष्ट जानकर तुम धर्म को भी छोड़ दो, अधर्म की तो बात ही क्या?"

बुद्ध की ऐसी उदारता विरले ही किसी धर्म-संस्थापक में होगी।

१ अरियपरियेसनसुत्त (२६)—मज्झिमनिकाय के कई सुत्तों में बुद्ध की जीवनी के कुछ अंश आये हैं। जेतवन में भाषित यह सूत्र भी ऐसा ही है। बुद्ध कहते हैं—

"भिक्षुओ, मैं सम्बोधि से पूर्व असम्बुद्ध रहते हुए स्वयं जातिधर्मा होते हुए जातिधर्मों (पदार्थों) की ही पर्येषणा करता था। तब मुझे ऐसा हुआ—'क्यों न मैं योगक्षेम अनुत्तर निर्वाण की पर्येषणा करूँ?'

तब मैं भिक्षुओ दूसरे समय तरुण अत्यन्त काले केशोंवाला भद्र यौवन से युक्त पहले वयस् में अनिच्छुक माता-पिता को अश्रुमुख रोते छोड़ केश-श्मश्रु मुंडा काषाय वस्त्र पहन घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ। और इस प्रकार 'क्या उत्तम है' इसकी गवेषणा करते उत्तम शान्ति पद को खोजते मैं 'आलार कालाम' के यहाँ गया और पूछने पर उन्होंने 'आकिञ्चञ्ञायतन' (आकिञ्चन्यायतन) बतलाया और उसके पश्चात् उद्दक रामपुत्र ने 'नेवसञ्ञानासञ्ञायतन' (नैवसंज्ञानासंज्ञायतन) बतलाया। पर इनसे मेरी सन्तुष्टि नहीं हुई और उस धर्म को अपर्याप्त समझकर, उससे विरक्त हो मैं वहाँ से चल दिया।

क्रमशः मगध में चलते हुए उरुवेला सेनानीनिगम में मैं पहुँचा। वहाँ एक रमणीय वनखंड में एक नदी को बहते देखा जिसका घाट मनोहर तथा श्वेत था। चारों ओर भिक्षाचार के लिए गाँव थे। मुझे हुआ—'यह भूमि भाग रमणीय है यही (यह वनखंड) ध्यान योग्य स्थान है' यह सोच वहीं बैठ गया।

तो भिक्षुओ स्वयं जन्मने के स्वभाववाले जन्म लेने के दुष्परिणाम को जानकर, जन्मरहित अनुपम योगक्षेम निर्वाण को खोजते हुए मैंने उसे पा लिया। वह अजर, व्याधि-धर्म रहित अमर, शोकरहित संक्लेश रहित था। मुझे दर्शन (ज्ञान) का साक्षात्कार हो गया मेरे चित्त की मुक्ति अचल बन गयी—'यह अन्तिम जन्म है, फिर अब दूसरा जन्म नहीं होगा।

तब भिक्षुओ, मुझे ऐसा हुआ—

मैंने गम्भीर, दुर्दर्श दुर्ज्ञेय शान्त उत्तम तर्क से अप्राप्य निपुण पंडितों द्वारा जानने योग्य इस धर्म को पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा में रमण करनेवाली, कामरत तथा काम में प्रसन्न है। इस जनता

के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद (सापेक्षतावाद) को जानना दुर्दर्शनीय है और सभी संस्कारों का शमनस्वरूप तृष्णा-क्षय विराग निरोध और निर्वाण भी दुर्दर्शनीय है। मैं यदि धर्मोपदेश करूँ और दूसरा उसको समझ न पावे तो मेरे लिए यह तरद्दुद और पीड़ा की वस्तु होगी। मेरे ऐसा समझने के कारण मेरा चित्त धर्म-प्रचार की ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

तब ब्रह्मा सहम्पति न मेरे चित्त की बात को जानकर ख्याल किया—'लोक नाश को प्राप्त होगा जब तथागत का चित्त धर्म-प्रचार की ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक रहा है। और ऐसा सोचकर उन्होंने मुझसे निवेदन किया—'भन्ते भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत धर्मोपदेश करें, क्योंकि अल्प मलवाले प्राणी भी संसार में विद्यमान हैं और धर्म के न सुनने से वे नष्ट हो जावेंगे'।

मैंने भिक्षुओ ब्रह्मा के अभिप्राय को जानकर बुद्ध-नेत्र से लोक का अवलोकन किया और उस समय लोक के जीवों में कितने ही अल्पमल तीक्ष्ण-बुद्धि सुन्दर-स्वभाव तथा समझाने में सुगम प्राणी मुझे दृष्टिगोचर हुए। उनमें कोई-कोई परलोक और दोष से भय करते हुए विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी पद्मिनी या पुण्डरीकिनी में से कितने ही उत्पल पद्म या पुण्डरीक उदक में पैदा हुए, उदक में बंधे उदक से बाहर न निकल उदक के भीतर ही डूबकर पोषित होते हैं। उनमें से कोई नीलकमल रक्तकमल अथवा श्वेतकमल होते हैं। इसी भाँति मैंने संसार के जीवों को विहार करते देखा और तब ब्रह्मा से सहम्पति से यह गाथा कही—

'उनके लिए अमृत का द्वार बन्द हो गया है जो कानवाले होने पर भी श्रद्धा को छोड़ देते हैं। हे ब्रह्मा यह व्यर्थ न हो ऐसा समझकर मैं मनुष्यों को निपुण तथा उत्तम धर्म की देशना नहीं कर रहा था'।

ब्रह्मा सहम्पति यह जानकर वहाँ से चले गये कि भगवान् ने धर्मोपदेश करनेवाले मेरे प्रस्ताव को मान लिया है।

उस समय मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि किसे मैं सर्वप्रथम इस धर्मोपदेश को करूँ जो शीघ्र ही इस धर्म को जान सके। और इस सम्बन्ध में मैंने सर्वप्रथम 'आलार कालाम' तथा उद्दक रामपुत्र आदि के विषय में सोचा। पर उसी समय एक गुप्त देवता ने आकर यह निवेदन किया कि इन दोनों का देहावसान हो गया है। सोचते-सोचते मेरी दृष्टि पञ्चवर्गीय भिक्षुओं पर गयी—'पञ्चवर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे। जब मैं साधना में लगा था तो उन लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की थी। क्यों न मैं प्रथमतः उन्हें ही उपदेश दूँ' और तब दिव्य चक्षुओं से यह जान पाया कि वे वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में विहार कर रहे हैं।"

पञ्चवर्गीय भिक्षुओं से मिलने के लिए बुद्ध सारनाथ आये। बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ, इधर सुनो,—मैंने जिस अमृत को पाया है उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करने पर जिस उद्देश्य के लिए कुलपुत्र घर छोड़कर प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में शीघ्र ही स्वयं जानकर विचरोगे।"

पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"आवुस गौतम उस साधना में उस धारणा में उस दुष्कर तपस्या में भी तुम आर्यों के ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा की विशेषता तथा उत्तर-मनुष्य-धर्म को नहीं पा सके फिर अब बाहुलिक साधना-भ्रष्ट, बाहुल्य-परायण होते हुए तुम आर्य ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा उत्तर-मनुष्य-धर्म को क्या पाओगे?"

बुद्ध ने उन्हें विश्वास दिलाया और अपना उपदेश देते हुए पाँच काम-गुणों का व्याख्यान किया और उन्हें उनसे विरत रहते हुए सर्वप्रथम चार ध्यानों तथा क्रमशः आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, तथा संज्ञा-वेदयित-निरोध आदि को प्राप्त करते हुए प्रज्ञा द्वारा निर्वाण को प्राप्त करने के लिए कहा। इस प्रकार यहाँ पर बुद्ध का यह प्रथम उपदेश (धर्म-चक्र-प्रवर्तन) हुआ।

६ महासच्चकसुत्त (३६)—वैशाली के महावन की कूटागारशाला में भी बुद्ध ने अचेल 'सच्चक' को अपने जीवनी से सम्बन्धित बातों को बताया और कायभावना तथा चित्तभावना के अभ्यास के विषय में उपदेश करते हुए अपनी बोधिसत्व-चर्या का वर्णन किया।

७ उपालिसुत्त (५६)—'निगण्ठनातपुत्त' (निर्ग्रन्थ-ज्ञातपुत्र जैन तीर्थङ्कर महावीर) और बुद्ध का साक्षात्कार नहीं हुआ था। पर वे समकालीन थे और कभी एक समय एक स्थान में विहार करते थे। बुद्ध नालन्दा में 'पावारिक' नामक आम्रवन में ठहरे थे। संभवतः दीर्घ काल तक तपस्या करने से तीर्थङ्कर के प्रधान शिष्य गौतम इन्द्रभूति का ही दूसरा नाम दीर्घ तपस्वी था। उस समय 'निगण्ठों' की बड़ी परिषद् के साथ 'निगण्ठनातपुत्त' नालन्दा में विहार करते थे। एक बार दीर्घतपस्वी बुद्ध के पास जाकर संमोदन कर खड़ा हो गया। बुद्ध ने कहा—"तपस्वी, आसन मौजूद है। इच्छा हो तो बैठ जाओ।"

यह कहने पर दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ निम्न आसन पर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने ही बात आरम्भ की—

"दीर्घतपस्वी, पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र कितने कर्मों का विधान करते हैं?"

"आवुस गौतम, कर्म-कर्म विधान करना निर्ग्रन्थ-ज्ञातपुत्र का नियम नहीं है, दण्ड-दण्ड विधान करना उनका नियम है।"

"तो तपस्वी, पाप कर्म करने के लिए, पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए कितने दण्ड वा वे विधान करते हैं?"

"आवुस गौतम, पाप कर्म के हटाने के लिए तीन दण्ड—कायदण्ड, वचनदण्ड तथा मनोदण्ड का विधान उनके द्वारा किया गया है।"

"क्या कायदण्ड दूसरा है, वचनदण्ड दूसरा और मनोदण्ड दूसरा है?"

इसका दीर्घतपस्वी ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"इनमें कौन महादोष-युक्त है" पूछने पर कायदण्ड का समर्थन किया।

बुद्ध ने कहा—"कायदण्ड कहते हो ?"

"आवुस गौतम, कायदण्ड कहता हूँ।"

इस प्रकार तीन बार दीर्घतपस्वी से कहलाकर पूछने पर स्वयं मनोकर्म को महादोषी बतलाया। और इसे भी दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ से तीन बार कहलाया। वह आसन से उठकर निर्ग्रन्थ-ज्ञातपुत्र के पास चला गया।

निर्ग्रन्थ-ज्ञातपुत्र ने पूछा—

'क्या तेरा श्रमण गौतम के साथ कुछ कथा-संलाप भी हुआ ?

दीर्घतपस्वी ने सब कह दिया।

वहाँ नालन्दा का प्रसिद्ध सेठ जैन-श्रावक उपालि भी बैठा था। उसने ज्ञातपुत्र से कहा—"भन्ते मैं जाऊँ और इसी विषय (कथावस्तु) में श्रमण गौतम के साथ विवाद करूँ। यदि वह विचले नहीं तो मैं उसी तरह उसे लपेट लूँगा जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बालवाली भेड़ को बालों से पकड़ कर निकालता घुमाता डुलाता है अथवा जैसे साठ वर्ष का पट्ठा हाथी पुष्करणी में प्रवेश करके 'सन-धोवन' नामक खेल को खेलता है, उसी तरह मैं श्रमण गौतम से भी इसी विषय पर वाद करूँगा।"

उपालि गृहपति बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने सर्वप्रथम उससे यह कहा—"गृहपति यदि तू सत्य में स्थित होकर मन्त्रणा करे तभी हम दोनों का संलाप सम्भव है।" उपालि ने इसे स्वीकार किया। बुद्ध ने कहा—

"गृहपति यहाँ एक चातुर्याम-संवर से संवृत सब वारि से निवारित सब वारि को निवारण करने में तत्पर, सब वारि से धुला हुआ सब वारि से छुटा हुआ निर्ग्रन्थ है। वह आते-जाते बहुत से छोटे-छोटे प्राणि-समुदाय को मारता है। गृहपति निर्ग्रन्थ-ज्ञातपुत्र इसका क्या विपाक बतलाते हैं ?"

"भन्ते अनजान को निग्रन्थ-ज्ञातपुत्र महादोष नहीं मानते।"

"यदि जानता हो ?"

"तब महादोष होता।"

"जानने को किस दण्ड में गणना करते हैं ?"

"भन्ते मनोदण्ड में।"

उपालि ने बुद्ध के मन्तव्य (मन की प्रधानता) को मान लिया। वहाँ और भी बातें हुईं। अन्त में उपालि गृहपति बुद्ध का श्रावक (शिष्य) बन गया।

बुद्ध ने कहा—"उपालि निर्ग्रन्थों के लिए तुम्हारा घर प्याऊ की तरह रहा है। उनके वहाँ जाने पर अब भोजन नहीं देना चाहिए, यह न समझना।"

उपालि इससे और प्रसन्न हुआ।

८. कुक्कुरवतिकसुत्त (५७)—भगवान् कोलिय देश के 'हलिद्दवसन' नामक निगम में विहार करते थे। गोव्रती कोलिय-पुत्र पूर्ण और कुक्कुरव्रती 'अचेल सेनिय' वहाँ गये। कुक्कुरव्रती बुद्ध का संमोदन करके कुत्ते की भाँति गेंडुरी मारकर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने समझाया कि अखंड कुक्कुरव्रत रखकर उसे मरकर कुक्कुर योनि में ही जाना होगा। यह बात सुनते ही अचेल सेनिय रो पड़ा। उपदेश का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने व्रत छोड़ दिया।

९. अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त (६१)—इसमें बुद्ध ने राहुल को उपदेश दिया है, जिसे देखने से मालूम होता है कि अभी राहुल बहुत सयान नहीं थे और उनकी अवस्था कम ही थी।

भगवान् ने थोड़े से बचे जल को दिखाकर पूछा—

"इस थोड़े से बचे पानी को देखता है?"

"हाँ भन्ते।"

"राहुल ऐसा ही थोड़ा (थोथा) उनका श्रमणपन है, जिनको जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती।"

तब भगवान् ने थोड़े जल को फेंककर राहुल को सम्बोधित किया—

"राहुल देखा मैंने उस थोड़े से बचे जल को फेंक दिया।"

"हाँ भन्ते।"

"ऐसा ही फेंका हुआ उनका श्रमणपन है, जिनको जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती।"

तब भगवान् ने उसे लोटे को औंधाकर कहा—

"राहुल तू इस लोटे को औंधा हुआ देखता है ?"

"हाँ भन्ते।"

"ऐसा ही औंधा उनका श्रमणपन है, जिनको०।"

तब भगवान् ने उस लोटे को सीधाकर कहा—

"राहुल तू इस लोटे को सीधा हुआ देख रहा है, खाली देख रहा है ?"

"हाँ भन्ते।"

ऐसा ही खाली-तुच्छ उनका श्रमणपन है, जिनको०।

"राहुल जैसे हरिस-समान लम्बे दाँतोंवाला महाकाय सुन्दर जाति का संग्राम में जानेवाला राजा का हाथी संग्राम में जाने पर अगले पैरों से भी लड़ाई का काम करता है पिछले पैरों से भी शरीर के अगले भाग से भी०, शरीर के पिछले भाग से भी०, सिर से भी० कान से भी दन्त से भी० लेकिन सूँड़ को बेकाम रखता है। तो हाथीवान् को ऐसा विचार होता है—'यह राजा का हाथी सूँड़ को बेकाम रखता है। राजा के ऐसे नाग का जीवन अविश्वसनीय है।

लेकिन यदि राहुल हरिस-समान लम्बे दाँतोंवाला राजा का हाथी सूँड़ से काम लेता हो, तो राजहाथी का जीवन विश्वसनीय है अब राजा के हाथी को और कुछ काम करना नहीं बाकी है। ऐसे ही राहुल जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं है उसके लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नहीं है—ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए, राहुल 'हँसी में भी झूठ नहीं बोलूँगा, यह सीख लेनी चाहिए।

"तो क्या मानते हो राहुल दर्पण किस काम के लिए है ?"

"भन्ते देखने के लिए।"

"ऐसे ही राहुल देख-देख कर काया से काम करना चाहिए, देख-देखकर वचन से काम करना चाहिए, देख-देखकर मन से काम करना चाहिए। जब राहुल तू काया से काम करना चाहे तो तुझे विचार करना चाहिए क्या यह मेरा कार्य अपने लिए पीड़ादायक तो नहीं हो सकता, दूसरों के लिए पीड़ादायक तो नहीं हो सकता दोनों के लिए तो पीड़ादायक नहीं हो सकता। यदि प्रत्यवेक्षण करने के पश्चात्, राहुल तू यह समझे कि यह बुरा कर्म है तो इस प्रकार के कार्य को छोड़ देना चाहिए।

'राहुल जिन किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणों ने अतीतकाल में काय-कर्म वचन-कर्म मन-कर्म आदि परिशोधित किये उन सबने इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण करके इन्हें परिशुद्ध किया। राहुल इसी प्रकार का प्रत्यवेक्षण तुम्हें भी सीखना चाहिए।"

९. कीटागिरिसुत्त (७०)—बुद्ध बड़ भारी भिक्षु-संघ के साथ काशी देश में चारिका कर रहे थे। उन्होंने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ मैं रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करता हूँ, उससे आरोग्य उत्साह, बल सुखपूर्वक, विहार अनुभव करता हूँ। आओ, भिक्षुओ, तुम भी रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करो।"

"अच्छा भन्ते" भिक्षुओं ने कहा।

तब काशी देश में क्रमशः चारिका करते हुए बुद्ध जहाँ काशीवालों का निगम 'कीटागिरि'[1] था वहाँ पहुँचे। भिक्षुओं ने रात के भोजन के त्याग के बारे में 'कीटागिरि' में भी कहा। वहाँ अश्वजित् और पुनर्वसु नामक दो भिक्षुओं ने कहा—"हम प्रातः तथा मध्याह्न में विकाल भोजन को करते हैं, और नीरोग रहते हैं सो हम क्यों प्रत्यक्ष को छोड़कर कालान्तर के लिए दौड़ें। हम सायं भी खायेंगे प्रातः भी दिन में भी विकाल में भी ।"

१० रट्ठपालसुत्त (८२)—'रट्ठपाल' की कथा अश्वघोष को इतनी पसन्द आयी कि उन्होंने 'राष्ट्रपाल-नाटक' लिखा जो संस्कृत में था, पर

१ केराकत जिला जौनपुर।

नष्ट हो गया। उसका अनुवाद भी तिब्बती तथा चीनी में नहीं है। केवल धर्मकीर्ति के 'वादन्याय' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख अश्वघोष की कृति के तौर पर है। राष्ट्रपाल कुरु देश के 'थुल्लकोट्ठित' निगम (कस्बे) के रहने वाले श्रेष्ठिपुत्र थे। भिक्षु बनने के लिए माता-पिता की आज्ञा होनी आवश्यक है। किसी तरह सत्याग्रह करके उन्होंने आज्ञा से भिक्षु-दीक्षा ली। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने फिर अपनी जन्मनगरी देखनी चाही। वे 'थुल्ल कोट्ठित' गये। जब भिक्षा का समय हुआ तो वे अपने घर की ओर गये। उनके पिता बिचली द्वारशाला में हजामत बनवा रहे थे। दूर से उन्हें आते देखकर पीत-वस्त्रधारियों की निन्दा करते हुए बुदबुदाने लगे—इन मुंडियों ने मेरे प्रियमनाप एकमात्र पुत्र को साधु बना लिया। इस प्रकार राष्ट्रपाल ने अपने घर से भिक्षा नहीं पायी बल्कि फटकार ही पायी।

उस समय घर की दासी बासी दाल फेंक रही थी। राष्ट्रपाल ने कहा—'भगिनी यदि इसे फेंकना चाहती हो तो मेरे पात्र में डाल दो।"

तब उसे उनके पात्र में डालते समय उनकी आवाज और पैरों को दासी ने पहचान लिया और जाकर उनकी माँ से कहा—"आर्ये जानती हो आर्य पुत्र राष्ट्रपाल आये हैं?" "यदि तू सच बोलती है तो तू अदासी होगी।" दासिता युग के दास मनुष्य-पशु थे अदास होना बड़ी बात थी। माँ ने इस बात को अपने पति से जाकर कहा। सेठ बाहर गया और देखा कि दीवाल के पास बैठे राष्ट्रपाल बासी दाल खा रहे हैं।

पिता ने कहा—

"आओ तात राष्ट्रपाल घर चलें।"

"बस गृहपति आज मैं भोजन कर चुका।"

"तो तात राष्ट्रपाल कल का भोजन हमारे यहाँ स्वीकार करो।"

राष्ट्रपाल ने उसे स्वीकार कर लिया।

सेठ ने घर में जा हिरण्य-सुवर्ण की बड़ी राशि करवा चटाई से ढँकवा कर राष्ट्रपाल की स्त्रियों से कहा—

"आओ बहुओ जिन अलंकारों से अलंकृत हो तुम लोग राष्ट्रपाल को बहुत प्रिय लगती थी उन अलंकारों से अलंकृत हो आओ।"

दूसरे दिन सूचना देने पर राष्ट्रपाल पिता के घर पहुँचे। जाकर बिछे आसन पर बैठे। पिता ने राशि को खोलकर कहा—"तात राष्ट्रपाल यह तुम्हारी माता का धन है पिता का तथा पितामह का अलग है। आओ तात राष्ट्रपाल भोग भी भोग सकते हो पुण्य भी कर सकते हो। आओ तात भिक्षु-दीक्षा छोड़ गृहस्थ बन भोगों को भोगो और पुण्यों को करो।"

राष्ट्रपाल ने कहा—"यदि गृहपति तू मेरी बात माने तो इस सुवर्ण-पुंज को गाड़ियों पर रखवाकर गङ्गा नदी की बीच धार में डाल दे। सो किसलिए? इसके कारण तुझे शोक परिदेव तथा दुःखादि नहीं होंगे।"

राष्ट्रपाल की अनेक भार्याएँ उनका पैर पकड़कर कहने लगीं—"आर्यपुत्र कैसी हैं वे अप्सराएँ, जिनके लिए तुम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हो?"

राष्ट्रपाल ने कहा—"भगिनि हम अप्सराओं के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं करते।

भगिनि शब्द को सुनकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

राष्ट्रपाल ने खीझकर पिता से कहा—"गृहपति यदि भोजन देना हो तो दो हमें कष्ट मत दो?"

इसके पश्चात् राष्ट्रपाल के पिता ने आयुष्मान् राष्ट्रपाल को उत्तम भोजन कराया और भोजन करने के बाद राष्ट्रपाल ने तत्सम्बन्धी गाथाओं को कहा।

राजा कौरव्य अपने उद्यान में घूमने जानेवाले थे और इसके लिए उन्होंने अपने माली को उद्यान भूमि साफ करने को कहा। माली अपने कार्य में रत हो गया और उसी समय एक वृक्ष के नीचे दिवाविहार-निमित्त बैठे हुए राष्ट्रपाल को उसने देखा और जाकर राजा से निवेदन किया—"देव तुम्हा

कोट्ठित' के मयकुलिक का पुत्र राष्ट्रपाल जिसकी प्रशंसा आप सर्वदा करते हैं आज उसी उद्यान में बैठा है।"

राजा उससे मिलने के लिए गया और वहाँ जाकर राष्ट्रपाल से बोला—"हे राष्ट्रपाल चार हानियों के कारण ही लोग प्रव्रजित होते हैं—(१) बुढ़ापे में अप्राप्त भोगों का प्राप्त करना या प्राप्त भोगों को भोगना सुकर नहीं है इससे भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं और इसको जरा-हानि कहते हैं पर आपके तो केश काले हैं, अतएव यह आप में विद्यमान नहीं है (२) व्याधि हानि के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं पर आपमें तो यह विद्यमान नहीं है (३) भोगों के क्षय हो जाने के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं पर आपके साथ तो यह भी नहीं है (४) ज्ञातृ-हानि के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं, पर आपके सम्बन्ध में तो यह नहीं है और इस 'थुल्लकोट्ठित' में बहुत से मित्र-अमात्य आपके हैं। अतएव आप क्या जानकर देखकर या सुनकर प्रव्रजित हुए हैं ?

राष्ट्रपाल ने उत्तर दिया—"महाराज उन भगवान् बुद्ध ने चार धर्मोद्देश कहे हैं जिनको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ हूँ—(१) यह लोक अध्रुव है, उपनीत हो रहा है (२) लोक त्राण-रहित तथा आश्वासन-रहित है (३) लोक अपना नहीं है और सब छोड़कर जाना है तथा (४) लोक निम्न तृष्णा का दास है।"

विभिन्न उपमाओं से इन सबका व्याख्यान राष्ट्रपाल ने राजा से किया और अन्त में यह व्यक्त किया—"वृक्ष के फल की भाँति तरुण और वृद्ध मनुष्य शरीर छोड़कर गिरते हैं इसे भी देखकर मैं प्रव्रजित हुआ क्योंकि यह चिरस्थायी भिक्षुपन (श्रामण्य) ही श्रेष्ठ है।"

११ मधुरसुत्त (८४)—बुद्ध के प्रधान शिष्य थे—सारिपुत्र मौद्गल्यायन महाकाश्यप महाकात्यायन। महाकात्यायन अवन्ती (मालवा) के राजा चण्डप्रद्योत के पुरोहित और बड़े पंडित थे। अवन्ति राज की एक कन्या मथुरा के राजा को ब्याही थी और दूसरी वासवदत्ता वत्सराज उदयन

को। अवन्ति-राज की कन्या का मधुरावासी नाती पीछे 'माधुरिय' (माथुर) अवन्तीपुत्र कहा जाता था।

एक समय महाकात्यायन मधुरा के 'गुन्दवन' में विहार करते थे। राजा अवन्तिपुत्र ने उनका वहाँ आना सुना। वह रथ पर चढ़ 'गुन्दवन' गया। उसने ब्राह्मणों के मत—"ब्राह्मण ही श्रेष्ठवर्ण है तथा और वर्ण नीच हैं"—के बारे में उनसे पूछा।

महाकात्यायन ने बताया कि धनवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी के नौकर ये चारों वर्ण हो सकते हैं, अतएव इस कारण से चारों वर्ण सम हैं। दुनियाँ में यह केवल हल्ला भर है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, और वर्ण नीच हैं तथा वे ब्रह्मा के दायाद हैं।

दुराचार और सदाचार की बातों की दृष्टि देकर महाकात्यायन ने समझाया—"ब्राह्मणों का दावा गलत है। सभी वर्ण समान हैं।"

अन्त में संतुष्ट हो राजा ने कहा—"आज से मुझे आप अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

महाकात्यायन ने कहा—

'महाराज तुम मेरी शरण में मत आओ। उसी भगवान् की तुम भी शरण आओ जिसकी शरण में गया हूँ।"

"हे कात्यायन इस समय वे भगवान् अर्हत् कहाँ वास कर रहे हैं?"

"महाराज वे भगवान् निर्वाण प्राप्त हो चुके।"

इसके पश्चात् राजा निर्वाण-प्राप्त उन बुद्ध, धर्म और भिक्षु-संघ की शरण गया।

इससे यह ज्ञात होता है कि बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों द्वारा भाषित सूत्रों का संग्रह भी बुद्धवचनों में हो गया और उन्हें भी बुद्धोपदेश की तरह ही मान्यता प्राप्त हुई। आचार्य बुद्धघोष ने तो इस प्रकार के सूत्रों को बुद्धभाषित सिद्ध करने के लिए अपनी 'अट्ठकथाओं' में जमीन-आसमान एक कर दिया है।

१२ बोधिराजकुमारसुत्त (८५)—वासवदत्ता तथा वत्सराज उदयन का यह पुत्र था। इसे माता के गर्भ से ही बुद्ध भक्त माना गया है। बुद्ध एक बार 'सुंसुमारगिरि' (चुनार) के मृगदाव में विहार करते थे और वहीं पर उन्होंने बोधिराजकुमार से अपनी जीवनी से सम्बन्धित कुछ बातें बतलायीं। बोधिराजकुमार ने तथागत के स्वागत के लिए अपने कोकनद प्रासाद में पाँवड़े बिछाये। बुद्ध ने आनन्द की ओर देखा। आनन्द ने कहा—"राजकुमार, भगवान् पाँवड़े पर नहीं चलेंगे आनेवाली जनता का भी ख्याल कर रहे हैं।

राजकुमार ने पाँवड़ हटा लिये। भगवान् ने उस दिन अपनी जीवनी के बारे में कहा—

"राजकुमार, उस समय मैं दहर (नवयस्क) बहुत काल केशवाला सुन्दर यौवन से युक्त प्रथम वयस् में था माता-पिता को अश्रुमुख होते छोड़ घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जहाँ 'आलार कालाम' था वहाँ गया। जाकर कहा—'आवुस कालाम मैं इस धर्म में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।

'आलार कालाम' ने आकिञ्चन्यायतन' ध्यान तक बतलाया। मैंने फिर स्वयं इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया और शीघ्र ही उसे स्वयं प्राप्त करके विहरने लगा। जब अपनी प्राप्ति को मैंने 'आलार कालाम' से प्रकट किया तो उसने मुझे अपने संघ का उपनेता बनाना चाहा। पर इससे तो मेरे उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती थी अतः उसके प्रस्ताव को ठुकरा कर मैं आगे बढ़ा और शान्ति-पद की गवेषणा करते हुए उद्दक रामपुत्र के पास गया।

उद्दक रामपुत्र ने मुझे 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' को बतलाया। उसकी भी प्राप्ति मुझे हो गयी और उसने भी इसके बाद मुझे अपने संघ का उपनेता बनाना चाहा पर उसके प्रस्ताव को भी मुझे ठुकराना पड़ा।

मैंने फिर स्वयं ही ध्यान भावनाओं का अभ्यास बड़ी दृढ़ता के साथ किया। इसके पश्चात् मैं निराहार तपस्या करने लगा। मुझे हुआ—'अतीत काल

"हाँ महाराज।"

"आर्य के माता-पिता का गोत्र क्या है?"

"महाराज! पिता गार्ग्य तथा माता मैत्रायणी है।"

"आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्र अभिरमण करें। मैं चीवर, पिण्डपात शयनासन, ग्लान-प्रत्यय तथा भैषज्य परिष्कारों से आर्य की सेवा करूँगा।"

बाहर आश्चर्य प्रकट करते हुए राजा ने भगवान् से कहा—"भन्ते जिसका दमन हम दंड तथा शस्त्र से न कर सके उसे भगवान् ने बिना दंड तथा शस्त्र के दमन कर दिया। ऐसा कहकर राजा चला गया।

इसके बाद बुद्ध ने अंगुलिमाल को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए उन पूर्व कर्मों के फल को नष्ट करने के लिए उपदेश दिया। अंगुलिमाल ने विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए अपने दिन व्यतीत किये।

१४ पियजातिकसुत्त (८७)—इस सुत्त में एक दूसरा ही दृश्य सामने आता है। श्रावस्ती में एक गृहपति (वैश्य) का एकलौता पुत्र मर गया। उसे अपना कर्मान्त (पेशा) अच्छा न लगता था न भोजन। वह लोगों के पास जा क्रन्दन करता था—"कहाँ हो मेरे एकलौते पुत्र! भगवान् के पास भी जाकर उसने वही बात दुहरायी।

भगवान् ने कहा—"यह ऐसा ही है गृहपति शोक क्रन्दन दुःख दौर्मनस्य परेशानी आदि प्रिय-जातिक हैं प्रियों से उत्पन्न हैं।" उसे यह बात जँची नहीं। वह चला गया। जुआ भर में भी इसकी चर्चा चली। उन्होंने भी कहा—

"यह ऐसा ही है गृहपति आनन्द प्रियजातिक ही है।"

बात बढ़ते-बढ़ते राजा के अन्तःपुर में चली गयी। रानी मल्लिका बुद्ध की बहुत भक्त थी। प्रसेनजित् ने उससे ताना देते कहा—"तेरे श्रमण ने यह कहा है—दुःख प्रियजातिक है।"

"महाराज यदि भगवान् ने ऐसा कहा तो वह होता ही है।"

"ऐसा नहीं मल्लिका जो-जो श्रमण गौतम कहता है, उसका ही तू अनुमोदन करती है, क्योंकि गुरु जो-जो कहे, वैसा उसी को दुहराता है—यह 'ऐसा ही है' । चल हट यहाँ से मल्लिका ।"

मल्लिका देवी ने 'नालीजंघ' ब्राह्मण को भगवान् के पास पूछने के लिए भेजा । जाकर उसने कहा—"गौतम मल्लिका देवी आप के चरणों में वन्दना करती है, और पूछती है क्या भगवान् ने कहा—दुःख प्रियजातिक है ?"

भगवान् ने 'हाँ' कहा ।

९१. ब्रह्मायुसुत्त (९१)—बुद्ध की चारिका विदेह में हो रही थी । उस समय १२० वर्ष की आयुवाला एक वृद्ध महल्लक ब्रह्मायु ब्राह्मण मिथिला में रहता था । उसने भी बुद्ध के विषय में यह मंगल शब्द सुना कि वे अर्हत् हैं सम्यक् सम्बुद्ध हैं आदि । उसने इसकी सत्यता की जाँच करने तथा बुद्ध को देखकर अपने विचार को उसके पास तक पहुँचाने के लिए उत्तर नामक अपने माणवक को भेजा । उस शिष्य से उन्होंने जाँचने के मापदण्ड-स्वरूप महापुरुषों के बत्तीस लक्षण आदि को भी बतला दिया ।

जाकर उसने पहले उनके शरीर में बत्तीस महापुरुष लक्षणों की विद्यमानता को परखा और तत्पश्चात् उनके ईर्यापथ का भी अवलोकन किया और मिथिला में आकर इस सम्पूर्ण वृत्तान्त से ब्रह्मायु को परिचित कराया—

"वे चलते समय पहले दाहिना ही पैर उठाते हैं न बहुत दूर पैर उठाते हैं न बहुत समीप न अति शीघ्र चलते हैं न अति देर से । बिना अवलोकन करते गौतम सारी काया से अवलोकन जैसे करते हैं । गृहस्थों के घर के भीतर काया को न उठाते हैं न झुकाते हैं न हाथ का अवलम्ब लेकर आसन पर बैठते हैं । पात्र में जल लेते समय पात्र को न ऊपर उठाते हैं न पात्र को नचाते हैं । न भोजन (भात) न बहुत अधिक न बहुत कम ग्रहण करते हैं । दो-तीन बार करके मुख में ग्रास को चबाकर खाते हैं । जूठा उनके शरीर पर नहीं गिरता ।

हमने उन गौतम को गमन करते देखा, खड़े हुए देखा, भीतर प्रवेश करते देखा, घर में चुपचाप बैठे देखा, भोजनोपरान्त भोजन का अनुमोदन करते देखा, आराम में जाते देखा, आराम के भीतर चुपचाप बैठे देखा, आराम के भीतर परिषद् को धर्मोपदेश करते देखा।"

पीछे ब्रह्मायु ब्राह्मण स्वयं मिथिला में बुद्ध के दर्शन के लिए गया और उपदेश सुनकर उनका उपासक बना।

११. घोटमुखसुत्त (९४)—घोटमुख (घोड़े जैसे मुँहवाला) ब्राह्मण किसी काम से वाराणसी आया था। एक दिन घूमते हुए वह खेमिय आम्रवन में जा निकला। वहाँ आयुष्मान् उदयन टहल रहे थे। घोटमुख से बात शुरू होते ही वे टहलने के चबूतरे (चङ्कमण) से उतरकर, विहार में प्रविष्ट हो आसन पर बैठ गये और ब्राह्मण से बोले—

"ब्राह्मण, आसन मौजूद है, इच्छा हो, तो बैठो।"

"आप उदयन की इस आज्ञा की प्रतीक्षा में ही मैं था। मेरे जैसे पुरुष बिना निमंत्रण के कैसे आसन पर बैठ जायेगा।"

एक नीचा आसन ले बैठकर उस ब्राह्मण ने कहा—"जो धर्म यहाँ है, वही हमारे लिए प्रमाण है।"

"ब्राह्मण, यदि मेरी किसी बात को स्वीकरणीय समझना तो स्वीकार करना, खंडनीय समझना तो खंडन करना, और मेरे जिस वचन का अर्थ न समझना, उसे मुझसे ही पूछना।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने उसे उपदेश दिया। उपदेश सुनने पर घोटमुख ने उनसे अंजलिबद्ध उपासकत्व का प्रस्ताव किया। इस पर उदयन ने कहा—

"ब्राह्मण, तू मेरी शरण मत जा, उसी भगवान् की तू भी शरण जा, जिसकी शरण मैं गया हूँ।"

घोटमुख ने पूछा—"वे भगवान् कहाँ हैं?"

इस पर उदयन ने बताया कि उनका तो निर्वाण हो गया।

घोटकमुख ने कहा—"निर्वाण-प्राप्त उन भगवान् की, उनके धर्म की तथा उनके संघ की हम शरण जाते हैं और अङ्गराज जो दैनिक मुझे भिक्षा देता है उन पाँच सौ कार्षापणों की भिक्षा को मैं आपको समर्पित करता हूँ।

उदयन ने कहा—"ब्राह्मण, हमारे लिए सोना-चाँदी ग्रहण करना कल्प्य नहीं है।"

"यदि यह विहित नहीं है तो मैं आपके लिए विहार बनवाऊँगा।"

"यदि मेरे लिए विहार बनाना चाहते हो, तो पाटलिपुत्र में संघ की उपस्थानशाला बनवा दें।"

घोटकमुख ने उनके आज्ञानुसार पाटलिपुत्र में उपस्थानशाला बनवायी, जो आज भी 'घोटकमुखी' कही जाती है।

१७. वासेट्ठसुत्त (९८)—इस सुत्त में बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था का खंडन प्रस्तुत किया है। एक समय भगवान् 'इच्छानङ्गल' में विहार करते थे। उस समय बहुत से अभिज्ञात ब्राह्मण, यथा—चङ्कि, तारुक्ख, जानुश्रोणि 'तोदेय्य' तथा दूसरे 'इच्छानङ्गल' में ही निवास करते थे।

बुद्ध के वहीं आने पर वासिष्ठ तथा भारद्वाज माणवों में इस सम्बन्ध में बहस छिड़ गयी। दोनों ने अन्त में यह निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में बुद्ध से पूछकर वे अपना निर्णय करेंगे। आकर बुद्ध से उन्होंने अपने-अपने पक्ष को बतलाया कि एक जाति से तथा दूसरा कर्म से ब्राह्मण होने को मानता है। बुद्ध ने कहा—

'प्राणियों की जातियों में एक दूसरे से जाति का भेद है, जैसे तृण और वृक्ष में, कीट, पतंग और चींटी, छोटे बड़े चौपाये, जलचर, आकाशचारी पक्षियों आदि में जाति का लिङ्ग विद्यमान है, पर इस प्रकार का जाति-लिङ्ग मनुष्यों में अलग-अलग नहीं है। मनुष्य के किसी अङ्ग को लेकर भी यह जातिमय लिङ्ग नहीं प्राप्त होता। मनुष्यों में भेद सिर्फ संज्ञा में है।

अतः कर्म के अनुसार जो गोरक्षा से जीविका करता है वह कृषक है, जो शिल्प से जीविका करता है वह शिल्पी है, जो व्यापार से जीविका अर्जित करता है वह वैश्य है आदि ।

माता तथा योनि से उत्पन्न होने के कारण कोई ब्राह्मण नहीं होता प्रत्युत ब्राह्मण वह है, जो अपरिग्रही हो ।

कमल के पत्र पर जल तथा आरे की नोक पर स्थित सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं है, वही मेरे अनुसार ब्राह्मण है ।"

इस प्रकार विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था का खंडन किया । वे सब उनके उपासक हुए ।

१८. सामगामसुत्त (१०४)—इस सुत्त में 'निगण्ठनातपुत्त' (जैन तीर्थंकर महावीर) के पावा में मरने और उनके श्रावकों में झगड़ा होने की बात का उल्लेख है । यह कथा 'दीघनिकाय' में भी आती है । उधर सालेवास चुन्द श्रमणोद्देश थे । इस सुत्त में बौद्ध सिद्धान्तों का विवरण तथा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है ।

१९. गोपकमोग्गल्लानसुत्त (१०८)—इस सुत्त में बुद्ध-निर्वाण के थोड़े समय बाद की घटनाओं का उल्लेख है । उस समय आयुष्मान् आनन्द राजगृह में वेणुवन के 'कलन्दकनिवाप' में विहार कर रहे थे । मगधराज अजातशत्रु अवन्तिराज प्रद्योत के भय से नगर में रक्षा की तैयारियाँ करा रहा था । आयुष्मान् आनन्द अपने भिक्षाचार के लिए निकले । पर अभी बहुत सबेरा था अतः समय व्यतीत करने के लिए वे 'गोपक-मोग्गल्लान' के यहाँ गये । वहीं पर मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण तथा उपनन्द सेनापति भी आये । वहाँ पर 'गोपकमोग्गल्लान' ने आनन्द से कहा—

"भो आनन्द ! क्या आप सबमें कोई एक भिक्षु भी ऐसा है, जो कि सारे के सारे उन धर्मों से युक्त हो, जिनसे युक्त भगवान् बुद्ध थे ?"

आनन्द ने उसकी बात को छोड़कर वर्षकार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि ब्राह्मण हम धर्म-प्रतिशरण हैं । और इसके पश्चात् व्याख्-

भावना आदि का व्याख्यान किया। अन्त में गोपक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि हममें एक भिक्षु भी ऐसा नहीं है जैसा कि तुमने पूछा है आजकल के श्रावक मार्ग-अनुगामी हो विहर रहे हैं।

मगध और अवन्ती दोनों अपनी-अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। अन्त में मगध अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

२० भद्देकरत्तसुत्त (१३१)—इस सुत्त में यह शिक्षा दी गयी है कि मनुष्य को भूत तथा भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्तमान की ही चिन्ता करनी चाहिए। बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश दिया—

"अतीत का अनुगमन न करे और न भविष्य की चिन्ता में पड़े। जो अतीत है, वह नष्ट हो गया और भविष्य तो अभी आया ही नहीं। उस दिन निरालस्य तथा उद्योगी होकर विहरनेवाले को ही 'भद्दकरत्त' कहते हैं।"

२१ पुण्णोवादसुत्त (१४५)—आयुष्मान् पूर्ण ने भगवान् बुद्ध से अपने लिए संक्षिप्त धर्मोपदेश करने को कहा जिससे वे (पूर्ण) एकाकी एकान्तवासी संयमी अप्रमादी और उद्योगी होकर विहार कर सकें।

बुद्ध ने उन्हें संक्षिप्त धर्मोपदेश दिया और पूछा—"पूर्ण मेरे इस संक्षिप्त उपदेश से उपदिष्ट होकर तू कौन से जनपद में विहरेगा?"

पूर्ण ने उत्तर दिया—"भन्ते 'सुनापरान्त' नामक जनपद है मैं वहाँ विहार करूँगा।"

उनकी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए बुद्ध ने इस सम्बन्ध में उनसे और प्रश्न किये और बिना विचलित हुए पूर्ण ने उन सबका उत्तर दिया—

"पूर्ण सुनापरान्त के मनुष्य चण्ड तथा कठोर हैं यदि वे तुम दुर्वाच्य आदि कहकर तेरा आक्रोशन करेंगे तो तुम कैसा लगेगा?"

"भन्ते यदि ऐसा होगा तो मुझे तो यही अनुभूति प्राप्त होगी कि सुनापरान्त के मनुष्य भद्र हैं और वे मुझ पर हाथ से प्रहार नहीं करते।"

"यदि पूर्ण वहाँ के मनुष्य तुझ पर हाथ से प्रहार करें तब तुम्हें कैसा लगेगा?"

'भन्ते मुझे ऐसा होगा कि यहाँ के मनुष्य भद्र हैं, जो मुझे डंडे से नहीं मारते।

"यदि पूर्ण सुनापरान्त के मनुष्य तुझे तीक्ष्ण शस्त्र से मार डालें तब तुझे क्या होगा ?"

'भन्ते मुझे ऐसा होगा—उन भगवान् के कोई-कोई शिष्य अपनी जिन्दगी से तंग आकर और ऊबकर आत्महत्यार्थ शस्त्रहारक खोजते हैं सो मुझे यह शस्त्रहारक बिना खोजे ही मिल गया।"

इन सबको सुनकर बुद्ध ने कहा—"साधु साधु, पूर्ण ! साधु, पूर्ण !! तू इस प्रकार के शम-दम से युक्त हो सुनापरान्त जनपद में रह सकता है।"

भगवान् के वचनों का अनुमोदन कर पूर्ण सुनापरान्त के लिए वहाँ से चल दिये और वहाँ पहुँच कर उसी वर्ष के वर्षा-काल में पाँच सौ उपासक तथा पाँच सौ उपासिकाओं को ज्ञान की उपलब्धि उन्होंने करायी और स्वयं भी तीनों विद्याओं की प्राप्ति की और दूसरे समय परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

'मज्झिमनिकाय' का वर्णन यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इस निकाय में 'थेरवाद' सम्प्रदाय के आधारशिलाभूत सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है अतएव इसे 'बुद्धवचनामृत' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है।

इसमें अधिकतर सुत्त बुद्ध द्वारा ही उपदिष्ट हैं किन्तु कुछ ऐसे सुत्तों का भी संग्रह इसमें है जिन्हें 'सारिपुत्त' तथा 'महाकच्चायन' आदि बुद्ध के शिष्यों ने कहा था। ऊपर भी इनके सम्बन्ध में कह दिया गया है। इन सुत्तों के अतिरिक्त 'माधुरिय' तथा 'घोटकमुख' आदि कुछ ऐसे भी सुत्त हैं, जो बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों द्वारा कहे गए हैं। 'बुद्धवचन' का संग्रह किस प्रकार से कालान्तर में सम्पन्न किया गया इस पर इन सबसे वास्तविक प्रकाश प्राप्त होता है।

तीसरा अध्याय

३ संयुत्तनिकाय

सुत्तपिटक का तीसरा निकाय 'संयुत्तनिकाय' है। यह पाँच वर्गों तथा छप्पन संयुत्तों में विभक्त है। 'नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित इस निकाय की पृष्ठ-संख्या निम्नप्रकार है—

प्रथम भाग (सगाथवग्ग)	२७१
द्वितीय भाग (निदानवग्ग तथा खन्धवग्ग)	४८९
तृतीय भाग (सळायतनवग्ग)	३१५
चतुर्थ भाग (महावग्ग)	४०७
योग	१४८२

यदि पृष्ठों के आधार पर 'दीघनिकाय' के अनुसार इसके भाणवारों का हम विभाजन करें, तो यह संख्या लगभग ११४ होती है तथा ग्रन्थप्रमाण ४८० होता है। भिक्षु जगदीश काश्यप के उपर्युक्त नागरी संस्करण में 'संयुत्तनिकाय' में सूत्रों की संख्या २६४१ मानी है यद्यपि परम्परानुसार यह संख्या भिन्न ही है। इसी संस्करण के आधार पर 'संयुत्तनिकाय' का पूर्ण विभाजन नीचे प्रस्तुत किया जायेगा।

यह निकाय पाँच 'वग्गों' (वर्गों) में विभक्त है और प्रत्येक वर्ग में विभिन्न 'संयुत्तों' (संयुक्तों) का संग्रह किया गया है। वर्ग हैं—(१) सगाथवग्ग (२) निदानवग्ग (३) खन्धवग्ग (४) सळायतनवग्ग तथा (५) महावग्ग। इन वर्गों में दैवतासंयुत्तादि विभिन्न ५६ 'संयुत्त' संगृहीत हैं। इनका पूर्ण विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है —

१ सगाथवग्ग (=२७१ सुत्त)

संयुत्त	सुत्त-संख्या
१ (१) देवतासंयुत्त	८१
२ (२) देवपुत्त०	३०
३ (३) कोसल०	२५
४ (४) मार०	२५
५ (५) भिक्खुनी०	१
६ (६) ब्रह्म	१५
७ (७) ब्राह्मण०	२२
८ (८) वङ्गीस०	१२
९ (९) वन०	१४
१० (१०) यक्ख०	१२
११ (११) सक्क०	२५

२ निदानवग्ग (=२८६)

१२ (१) निदान०	९३
१३ (२) अभिसमय०	११
१४ (३) धातु०	३९
१५ (४) अनमतग्ग०	२०
१६ (५) कस्सप०	१३
१७ (६) लाभसक्कार	४३
१८ (७) राहुल०	२२
१९ (८) लक्खण	२१
२० (९) ओपम्म	१२
२१ (१) भिक्खु०	१२

३ खन्धवग्ग (=७१६)

२२ (१) खन्ध	१५९

४ सळायतनवग्ग (=४३४)

५ महावग्ग (=१२२४)

४७.	(३) सतिपट्ठान०	११०
४८.	(४) इन्द्रिय०	१८०
४९.	(५) सम्मप्पधान०	५४
५०	(६) बल०	११०
५१	(७) इद्धिपाद०	८६
५२	(८) अनुरुद्ध०	२४
५३	(९) झान०	५४
५४	(१०) आनापान०	२०
५५.	(११) सोतापत्ति०	७४
५६	(१२) सच्च०	११७

वर्गों तथा संयुत्तों के नामों से ही उनमें वर्णित विषय के बारे में ज्ञान होता है। 'सगाथवग्ग' के नाम से ही प्रकट है कि इसमें 'आये हुए सुत्त गाथाओं से युक्त हैं। 'निदानवग्ग' में प्रतीत्यसमुत्पादवाद के नाम से संसार चक्र की व्याख्या की गयी है। 'खन्धवग्ग' में पञ्च-स्कन्ध का विवेचन है पर इस सम्बन्ध में स्कन्धों की दार्शनिक व्याख्या न प्रस्तुत करके केवल यही बारबार कहा गया है कि रूप अनित्य है, अनात्म है, दुःख है आदि। 'सळायतनवग्ग' में पञ्च-स्कन्धवाद तथा षडायतनवाद दोनों के सिद्धान्त प्रतिपादित हैं तथा 'महावग्ग' में बौद्ध धर्म, दर्शन और साधना के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर व्याख्यान विद्यमान है।

यहाँ पर स्थालीपुलाक न्याय से 'संयुत्तनिकाय' के कुछ सुत्तों का भाव दिया जा रहा है। कुरु देश (मेरठ कमिश्नरी) की लोककथाओं में प्रश्नोत्तर करने की रीति है और यही 'सगाथवग्ग' में भी प्राप्य है—

१ कतिछिन्दसुत्त (१.१.५)—

"कितने को काट, कितने को छोड़
कितने और अधिक का अभ्यास करे?
कितने संगों को पारकर कोई भिक्षु,
'बाढ़ पार कर गया' कहा जाता है?

"पाँच को काटे, पाँच को छोड़ दे
पाँच और अधिक का अभ्यास करे।
पाँच संगों को पारकर भिक्षु,
'बाढ़ पार कर गया' कहा जाता है।"

२ जागरसुत्त (११६)—

"जागे हुओं में कितने सोये हैं,
सोये हुओं में कितने जागे हैं?
कितने से मैल लग जाता है,
कितने से परिशुद्ध हो जाता है?"

"जागे हुओं में पाँच सोये हैं
सोये हुओं में पाँच जागे हैं।
पाँच से मैल लग जाता है
पाँच से परिशुद्ध हो जाता है।

३ नत्थिपुत्तसमसुत्त (१११३)—

"पुत्र के समान कुछ प्यारा नहीं
गौओं के समान कोई धन नहीं।
सूर्य के समान कोई प्रकाश नहीं
समुद्र सबसे महान् जलराशि है"

"अपने के समान कोई प्यारा नहीं
धान्य के समान कोई धन नहीं।
प्रज्ञा के समान कोई प्रकाश नहीं
वृष्टि सबसे महान् जलराशि है।"

४ जटासुत्त (११२३)—

इस सुत्त में वे ही प्रसिद्ध गाथाएँ हैं जिन्हें सिंहल के स्थविरों ने आचार्य बुद्धघोष की परीक्षा लेने के लिए उन्हें दिया था। उनके व्याख्यान में आचार्य

ने 'विसुद्धिमग्ग' जैसे गम्भीर ग्रन्थ को प्रस्तुत करके अपनी योग्यता प्रमाणित की थी—

"भीतर में जटा (लगी है) बाहर भी जटा ही जटा है[1]
सभी जीव जटा में बेतरह उलझे पड़े हैं,
इसलिए, हे गौतम आपसे पूछता हूँ,
कौन इस जटा को सुलझा सकता है ?"

'शील पर प्रतिष्ठित हो प्रज्ञावान् मनुष्य
चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुए[2]
तपस्वी और विवेकशील भिक्षु ही
इस जटा को सुलझा सकता है।

जिनके राग द्वेष और अविद्या
बिल्कुल हट चुकी हैं
जो क्षीणास्रव अर्हत् हैं
उनकी जटा सुलझ चुकी है।
जहाँ नाम और रूप
बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं
(जहाँ) प्रतिघ और रूप-संज्ञा भी (निरुद्ध हो जाते हैं)
वहीं यह जटा कट जाती है।"

---

१ 'विसुद्धिमग्ग' में इसका व्याख्यान इस प्रकार से है—"जाल फैलानेवाली तृष्णा ही जटा कही गयी है। वह रूपादि आलम्बनों में ऊपर नीचे बारम्बार उत्पन्न होने और गुथ जाने के कारण बाँस इत्यादि के झाड़ की भाँति मानों जटा जैसी हो। इसी से तृष्णा ही यहाँ जटा कही गयी है। यही स्वकीय-परिष्कार, पर-परिष्कार, स्वात्मभाव परात्मभाव आध्यात्मायतन तथा बाह्यायतन इत्यादि में उत्पन्न होने से 'भीतर की जटा' और 'बाहर की जटा' कही गयी है।

२ 'चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुए' का तात्पर्य समाधि तथा 'विपस्सना' (विदर्शना) भावना से है।

५ पाथेय्यसुत्त (११७९)—

"क्या राह-खर्च बाँधता है
भोगों का वास किसमें है ?
मनुष्य को क्या घसीट ले जाता है
संसार में क्या छोड़ना बड़ा कठिन है ?
इतने जीव किसमें बँधे हैं,
जैसे जाल में कोई पक्षी ?"

"श्रद्धा राह-खर्च बाँधती है
ऐश्वर्य में सभी भोग बसते हैं।
इच्छा मनुष्य को घसीट ले जाती है,
संसार में इच्छा को छोड़ना बड़ा कठिन है।
इतने जीव इच्छा में बँधे हैं
जैसे जाल में कोई पक्षी।"

६ पज्जोतसुत्त (११८०) —

"लोक में प्रद्योत क्या है,
लोक में कौन जागनेवाला है।
प्राणियों में कौन काम में सहायक है
और उसके चलने का रास्ता क्या है ?
कौन आलसी और उद्यमी दोनों की
रक्षा करता है, जैसे माता पुत्र की ?
किसके होने से सभी जीवन धारण करते हैं,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते हैं ?"

"प्रज्ञा लोक में प्रद्योत है,
स्मृति लोक में जागती रहती है।
प्राणियों में बैल काम में साथ देता है
और जोत उसके चलने का रास्ता है।

वृष्टि आलसी और उद्योगी दोनों की
रक्षा करती है जैसे माता पुत्र की
वृष्टि के होने से सभी जीवन धारण करते हैं,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते हैं।"

इसके द्वितीय 'संयुत्त' 'देवपुत्तसंयुत्त' में देवपुत्रों ने बुद्ध से जो प्रश्न किये हैं और उनका जो उत्तर उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह सभी संगृहीत है—

७. अनाथपिण्डिकसुत्त (१२२०)—

इसमें अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवनाराम का वर्णन है। १९११ में मेरे गुरु श्री धर्मानन्द महास्थविर (लंका) जेतवन में गन्धकुटी के सामने खड़े होकर जिस समय इन गाथाओं को पढ़ रहे थे उस समय उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। (वह खंडहर क्या जेतवन जैसा ही था) गाथाएँ—

"यही वह जेतवन है,
ऋषियों से सेवित
धर्मराज (बुद्ध) जहाँ बसते हैं
(वह) मुझमें बड़ी श्रद्धा उत्पन्न करता है।

इस निकाय का द्वितीय 'संयुत्त' 'कोसलसंयुत्त' है जिसके प्रायः सारे सुत्त राजा प्रसनजित् (कोसल के राजा) से सम्बन्ध रखते हैं।

८. दहरसुत्त (१११)—

भगवान् जेतवन में विहार कर रहे थे। उस समय कोसलराज प्रसेनजित् भगवान् के पास आया और शिष्टाचार आदि दिखलाकर एक ओर बैठ गया और भगवान् से बोला— आप गौतम क्या अनुत्तर पूर्ण बुद्धत्व पा लेने का दावा नहीं करते?"

"महाराज यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् सम्बुद्ध कहे तो वह मुझ को ही कह सकता है महाराज मैंने ही उस अनुत्तर बुद्धत्व का साक्षात्कार किया है।"

"हे गौतम जो दूसरे श्रमण और ब्राह्मण हैं—संघवाले गणी, गणाचार्य विख्यात यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित जैसे—पूर्णकाश्यप, मक्खलीगोशाल निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र 'सञ्जय बेलट्ठिपुत्त' प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बली—वे भी मुझसे पूछे जाने पर अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं करते हैं। आप गौतम तो आयु में भी छोटे हैं और नये-नये प्रव्रजित भी हुए हैं।"

"महाराज चार ऐसे हैं जिनको 'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं। कौन से चार? (१) क्षत्रिय को, (२) साँप को, (३) आग को और (४) भिक्षु को।"

बुद्ध ने फिर कहा—
"ऊँचे कुल में उत्पन्न बड़े यशस्वी क्षत्रिय को
'छोटा है' जान कम न समझ उसका कोई अपमान न करे।

गाँव में या जंगल में कहीं भी जो साँप देखे
'छोटा है' जान कम न समझे उसका कोई अनादर न करे।

लपटों में सब कुछ जलानेवाली काले मार्ग पर चलनेवाली आग को,
'छोटा है' जान कम न समझ कोई उसका अनादर न करे।

... ...

किन्तु जिसे शील-सम्पन्न भिक्षु अपने तेज से जला देता है,
वह पुत्र पशु दायाद या धन कुछ भी नहीं पाता
निःसन्तान निर्धन फिर कटे ताल वृक्ष-सा हो जाता है।
इसलिए, पण्डित पुरुष अपनी भलाई का ख्याल कर
और आग यशस्वी क्षत्रिय
और शील-सम्पन्न भिक्षु के साथ ठीक से पेश आवे।"

इस उद्धरण से यह भी पता चलता है कि बुद्ध अपने समय के सभी तीर्थंकरों से आयु में छोटे थे।

९ मल्लिकासुत्त (१ १.८)—

मल्लिका साधारण कुल की कन्या थी पर अपने गुणों से कोसलराज प्रसेनजित् की बड़ी प्रिय रानी हो गयी। एक बार राजा ऊपर महल पर था उसने देवी से कहा—"मल्लिके तुझे क्या कोई अपने से भी अधिक प्रिय है?" "मुझे अपने से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है।" राजा ने बुद्ध के पास जाकर यही बात कही। उन्होंने गाथा कही—

"सभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ा
कहीं भी अपने से प्यारा कोई दूसरा नहीं मिला
वैसे ही दूसरों को भी अपना बड़ा प्यारा है
इसलिए, अपनी भलाई चाहनेवाला दूसरे को मत सताये।"

१०. पठमसङ्गामसुत्त (१ ३ १४)—

मगधराज अजातशत्रु ने चतुरङ्गिनी सेना ले काशी (देश) में प्रसेनजित् पर आक्रमण किया। राजा प्रसेनजित् ने सुना। प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिनी सेना तैयार कर काशी गया। उस संग्राम में अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को जीत लिया। पराजित होकर वह अपनी राजधानी श्रावस्ती लौटा। यह खबर भिक्षुओं से बुद्ध को मिली।

बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ मगधराज अजातशत्रु वैरिहृदय बुरे लोगों से मिलने-जुलनेवाला और बुराइयों को ग्रहण करनेवाला है और कोसलराज प्रसेनजित् भले लोगों से मिलने-जुलनेवाला और भलाइयों को ग्रहण करनेवाला है। किन्तु हार खाये हुए कोसलराज की यह रात भारी मन में बीतेगी—

"जय वैर को पैदा करती है,
हारा हुआ दुख से सोता है
शान्त जन हार-जीत की बातों को छोड़
सुख से सोता है।"

११ दुतियसङ्गामसुत्त (१ ३ १५)—

राजा अजातशत्रु सेना ले काशी में चढ़ आया। सुनकर प्रसेनजित् भी गया। दोनों लड़े। प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को जीत लिया उसे

जिन्दा ही गिरफ्तार कर लिया। प्रसेनजित् ने सोचा—"राजा अजातशत्रु यद्यपि मेरे साथ द्रोह करता है तो भी तो मेरा भांजा ही है। क्यों न मैं अजातशत्रु के सारे हस्तिसमूह, सारे अश्वसमूह, सारे रथकाय सारे पदाति (पैदल) समूह को लेकर उसे जीता ही छोड़ दूँ।" उसने वैसा ही किया।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही।
भगवान् ने कहा—
"अपनी मर्जी भर कोई लूटता है
किन्तु जब दूसरे लूटने लगते हैं,
तो वह लूटनेवाला लूटा जाता है।

इस तरह अपने किये कर्म के फेर में पड़
लूटनेवाला लूटा जाता है।"

१२ धीतुसुत्त (१ ३ १६)—

उस समय राजा प्रसेनजित् भगवान् के पास था। उसी समय एक आदमी ने आकर प्रसेनजित् के कान में कहा—"देव! मल्लिका देवी को पुत्री हुई।" राजा यह सुनकर उदास हो गया। इसे जानकर भगवान् ने कहा—

"राजन्! कोई-कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से बढ़ी-चढ़ी
बुद्धिमती, शीलवती, सास की सेवा करनेवाली और पतिव्रता होती हैं,
अतः पालन-पोषण करें।
उससे दिशाओं को जीतनेवाला महाशूरवीर पुत्र उत्पन्न होता है।
वैसी अच्छी स्त्री का पुत्र राज्य का अनुशासन करता है।"

आठवें संयुत्त 'वङ्गीससंयुत्त' में अधिकतर 'वङ्गीस' द्वारा रचित गाथाएँ हैं। वे एक स्वाभाविक कवि थे। अपने पूर्व जीवन के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है—

१३ सुभासितसुत्त (१.८.५)—

भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम में थे। वहाँ पर उन्होंने सुभाषित की प्रशंसा की। उसी समय आयुष्मान् 'वङ्गीस' ने बुद्ध से कुछ कहने का अवकाश चाहा। भगवान् ने उसकी आज्ञा दी। 'वङ्गीस' बोले—

'उसी वचन को बोले जिससे अपने को अनुताप न हो,
और, दूसरों को भी कष्ट न हो, वही वचन सुभाषित है।
प्रिय वचन ही बोले जो सभी को सुहाय
जो दूसरों के दोष नहीं निकालता वही प्रिय बोलता है।
सत्य ही सर्वोत्तम वचन है, यह सनातन धर्म है,
सत्य अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सज्जनों ने कहा है।
बुद्ध जो वचन कहते हैं, क्षेम और निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
दुःखों का अन्त करने के लिए, वही उत्तम वचन है।"

१४ वङ्गीससुत्त (१.८.१२)—

भगवान् श्रावस्ती में जेतवनाराम में विहार करते थे। उसी समय तुरन्त ही अर्हत् पद पाने विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए आयुष्मान् 'वङ्गीस' के मुँह से ये गाथाएँ निकलीं—

"पहले केवल कविता करते विचरता रहा, गाँव से गाँव और शहर से शहर,
तब सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन हुआ, मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई,
उन्होंने स्कन्ध आयतन तथा धातुओं के विषय में मुझे धर्मोपदेश दिया
उनके उपदेश को सुन मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया।
बहुतों की अर्थ-सिद्धि के लिए, मुनि ने बुद्धत्व का लाभ हुआ
भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए, जो नियाम को साक्षात्कार देख लिए हैं।
आपका मेरा स्वागत हो, बुद्ध के पास मुझे
तीन विद्याएँ प्राप्त हुई हैं बुद्ध का शासन सफल हुआ।
पूर्व जन्मों की बात जानता हूँ दिव्य चक्षु विशुद्ध हो गया है,
ऋद्धि और ज्ञानवान् हूँ दूसरों के चित्त को जानता हूँ।"

१२. तालपुटसुत्त (४४२२)—

राजगृह के वेणुवन की बात है। उस समय 'तालपुट' नामक नटों का ग्रामणी (मुखिया) भगवान् के पास आया और उसने भगवान् से पूछा—"भन्ते! मैंने पूर्व के आचार्यों-प्राचार्यों को कहते सुना है—'जो नट रंग के मध्य में तथा 'समज्या' के मध्य में अपने अभिनय से लोगों को हँसाता तथा रमण कराता है, वह काया छोड़ने पर मरने के बाद 'प्रहास' नामक देवताओं के साथ पैदा होता है।'"

'तालपुट' के इस प्रश्न का बुद्ध ने उत्तर देना स्वीकार नहीं किया और कहा—"रहने दो ग्रामणि! मुझसे मत पूछो। यह ठीक नहीं है।"

उसने दो बार पूछा पर बुद्ध ने नहीं उत्तर दिया। जब उसने तीसरी बार पूछा तो बुद्ध ने इसका व्याख्यान करते हुए कहा कि ऐसा कहना एक प्रकार की मिथ्यादृष्टि है। वे लोग मरने के बाद 'प्रहास' नामक नरक में जाते हैं।

'तालपुट' ने जब यह सुना तो उसकी आँखों में आँसू आ गए। बुद्ध ने समझाया कि इसी कारण से वे उसके प्रश्न का पहले व्याख्यान नहीं कर रहे थे।

'तालपुट' ने कहा—"मैं भगवान् का उत्तर सुनकर नहीं रो रहा हूँ प्रत्युत रो इसलिए रहा हूँ कि अतीत के नटाचार्यों ने दीर्घकाल तक लोगों को ठगा था वे ऐसा कहा करते थे।"

तत्पश्चात् वह बुद्ध के पास प्रव्रजित एवं उपसम्पन्न हुआ।

'संयुत्तनिकाय' का संक्षेप में कथन यही है। इसमें आये हुए विवेचन पर यदि हम विचार करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सम्पूर्ण 'सुत्तपिटक' में दार्शनिक दृष्टि से 'संयुत्तनिकाय' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

—•—

चौथा अध्याय

४ अङ्गुत्तरनिकाय

'अङ्गुत्तरनिकाय' में प्रायः २३०८ सुत्त तथा ११½ पृष्ठों का एक भाणवार मानने पर प्रायः १४५ भाणवार होते हैं। यह संख्या परम्परा द्वारा प्राप्त 'अट्ठकथा' की संख्या से मेल नहीं खाती। 'समन्तपासादिका' में इसके ९५५७ सुत्तों का उल्लेख तथा सम्पूर्ण भाणवारों की संख्या १२० बतायी गयी है। इसमें सुत्तों में वर्णित विषयों को एक, दो तथा तीन आदि के क्रम से रखा गया है जिसे 'अङ्गुत्तर' (अङ्गोत्तर) कहते हैं। सुत्तों की संख्या अधिक होने के कारण उनका छोटा होना आवश्यक है। इसका मूल चार भागों में भिक्षु जगदीश काश्यप के सम्पादकत्व में 'नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला' से प्रकाशित हुआ है तथा इसके प्रथम भाग का अनुवाद हिन्दी में भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है जिसे महाबोधि सभा सारनाथ ने प्रकाशित किया है।

'अङ्गुत्तरनिकाय' में ग्यारह 'निपात' हैं, जो अनेक 'वग्गों' (वर्गों) में विभक्त हैं तथा ये 'वग्ग' पुनः यथास्थान सुत्तों में विभक्त हैं। इन विभिन्न 'निपातों' में 'वग्गों' का निम्नलिखित क्रम से विभाजन है—

निपात	वग्ग-संख्या
१ एककनिपात	२०
२ दुकनिपात	१७
३ तिकनिपात	१६
४ चतुक्कनिपात	२७
५ पञ्चकनिपात	२६
६ छक्कनिपात	९
७ सत्तकनिपात	१०

८. अट्ठकनिपात	१०
९. नवकनिपात	९
१० दसकनिपात	२२
११ एकादसकनिपात	३

लिखित होने के पहले 'निकाय' कण्ठस्थ कर लिये गए थे। अतएव प्रथमतः इनकी रक्षा स्मृति द्वारा ही हुई। बाद में (वट्टगामणि समय ४४–१७ ई० पू०) ये लिपिबद्ध किये गये। श्रुतिपरम्परा के वेदपाठियों की भाँति दीघभाणक मज्झिमभाणक संयुत्तभाणक अङ्गुत्तरभाणक तथा खुद्दकभाणक—ये 'धम्मभाणिक' कहे जाते थे। उस समय रक्षा का साधन कितना भंगुर था। कल्पना कीजिए, यदि कालदोष से एक ही 'दीघभाणक' बचा और वह भी चल बसा तो उसके साथ 'दीघनिकाय' भी लुप्त। जैनपिटक में ऐसा ही हुआ है। अधिक समय तक कण्ठस्थ रखने पर जोर होने के कारण आज जैनपिटक का अवमान ही शेष रह पाया है।

क्रमशः एक दो अङ्कों के क्रम से सुत्तों का स्मरण रखना स्मृति के अनुसार सरल होता है। इसलिए इस शैली को अपनाया गया और 'अङ्गुत्तरनिकाय' इसका स्पष्ट उदाहरण है। यही शैली 'दीघनिकाय' के 'सङ्गीतिपरियायसुत्त' में भी विद्यमान है।

'अङ्गुत्तरनिकाय' का प्रारम्भ इस प्रकार से होता है—

एककनिपात

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। वहाँ पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओं।" "भदन्त" कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने यह कहा—

"भिक्षुओं मैं ऐसा एक भी अन्य रूप नहीं देखता हूँ जो पुरुष के चित्त को पकड़ कर रखता हो, जैसा कि स्त्री-रूप। भिक्षुओ, स्त्री-रूप पुरुष के चित्त को पकड़ कर रखता है" आदि।

यह एक संख्या के अनुसार रूप की बात हुई। आगे क्रमशः स्त्री-शब्द, स्त्री-गन्ध, स्त्री-रस तथा स्त्री-स्पर्श आदि का व्याख्यान है। फिर इसी प्रकार स्त्री को लेकर पुरुष के रूपादि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा गया है।

दुकनिपात

'दुकनिपात' दो वस्तुओं की गणना से आरम्भ होता है। इसमें दो प्रकार की त्याज्य वस्तुएँ, दो प्रकार के ज्ञानी पुरुष, दो प्रकार के बल, दो प्रकार की परिषदें, दो प्रकार की इच्छाओं आदि का विवेचन है। उदाहरणार्थ—

भिक्षुओ, ये दो प्रकार के वर्ज्य हैं—(१) प्रत्यक्ष वर्ज्य (२) साम्परायिक वर्ज्य।

प्रत्यक्ष वर्ज्य क्या है? जैसे भिक्षुओ, चोर को आग लगानेवाले को, राजा लोग पकड़कर नाना प्रकार की ताड़ना देते हैं—कोड़े से भी मारते हैं, बेंत से भी मारते हैं, हाथ, पैर, कान, नाक आदि भी कटवा देते हैं आदि। उन्हें कोई पुरुष देखकर यह सोचता है कि उपर्युक्त अवस्थाओं में यह व्यक्ति इस प्रकार के दण्डों को प्राप्त कर रहा है। यदि मैं भी ऐसा ही करूँगा तो इसका भागी हूँगा। इससे डरकर वह इन कार्यों को नहीं करता। यही प्रत्यक्ष वर्ज्य है।

साम्परायिक वर्ज्य क्या है? कोई पुरुष यह सोचता है कि काय, वाणी तथा मन आदि से होने वाले दुष्कर्मों का बुरा विपाक होता है। मैं ऐसा करूँ कि इन विपाकों को मुझे न भोगना पड़े। अतः साम्परायिक वर्ज्य से डरते हुए, वह इन सबसे विरत होकर, इनके विपरीत स्वभावों का सेवन करता है। साम्परायिक वर्ज्य यही है।

इस प्रकार से भिक्षुओ ये दो वर्ज्य हैं। इसलिए, भिक्षुओ इस प्रकार से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि हम प्रत्यक्ष वर्ज्य तथा साम्परायिक वर्ज्य इन दोनों से डरते हुए रहेंगे। ऐसा रहते हुए हम सभी वर्ज्यों से मुक्त हो जायेंगे।

दो की गणना की परिसमाप्ति के पश्चात् आगे के 'निपातों' में क्रमशः तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नव, दस तथा ग्यारह आदि की गणना

है। अब त्रिपिटक का कण्ठस्थ ही रखना था तो स्मरणशक्ति को सुगमता प्रदान करने के लिए अनेक उपाय किये गये। उन्हीं में से एक यह शैली भी थी।

तिकनिपात

इसमें तीन प्रकार के दुश्चरित (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) तथा तीन प्रकार की वेदनाओं आदि का विवेचन है। इसके सुत्त उदाहरणस्वरूप नीचे दिये जाते हैं —

१ हत्थकसुत्त (१४५)—एक समय भगवान् बुद्ध 'आळवी' में गायों के मार्ग में 'सिंसपावन' में पत्तों के बिछौने पर विहार करते थे। तब हत्थक आळवक ने भगवान् को वहाँ बैठे देखा। देखकर, भगवान् के पास जा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया और उनसे बोला—

"भन्ते भगवान् सुख से तो सोये?"

"हाँ कुमार, सुख से सोया। जो लोक में सुख से सोते हैं मैं उनमें से एक हूँ।"

"भन्ते, यह हेमन्त की शीतल रात, हिमपात का समय अन्तराष्टक (माघ के अन्त के चार दिन तथा फाल्गुन के आदि के चार दिन) है, गायों के खुर से कुचली हुई जमीन खुरदरी है, पत्तों का आसन पतला है, वृक्ष के पत्र विरल हैं, काषाय वस्त्र शीतल है, 'वेरम्भ' वायु शीतल है, तब भी भगवान् ऐसा कहते हैं—हाँ कुमार सुख से सोया ...।"

"तो कुमार, तुझे ही पूछता हूँ जैसा तुझे ठीक लगे वैसा मुझे उत्तर दे। तो क्या कुमार किसी गृहपति या गृहपति-पुत्र का लीपा-पोता, वायु रहित द्वारबन्द खिड़की-बन्द कूटागार (कोठा) हो, वहाँ चार अंगुल पोस्तीन का बिछा, पट्टी-बिछा, कालीन-बिछा, उत्तम कदली-मृगचर्म बिछा, दोनों ओर लाल तकियोंवाला, ऊपर वितानवाला पलंग हो, तेल प्रदीप भी जल रहा हो, चार सुन्दर भार्याएँ भी हाजिर हों तो भी वह सुख से सोयेगा कि नहीं?"

"भन्ते वह सुख से सोयेगा । जो लोक में सुख से सोते हैं, उनमें से वह एक होगा ।"

"तो क्या मानते हो कुमार, यदि उस गृहपति या गृहपति-पुत्र को राग से उत्पन्न होनेवाले कायिक या मानसिक परिदाह (=जलन) उत्पन्न हों, तो उन राग-परिदाहों से जलते हुए क्या वह दुःख से सोयेगा ?

"हाँ भन्ते ।"

"कुमार, वह गृहपति या गृहपति-पुत्र जिस राग-परिदाह से दुःख से सोते हैं, तथागत का वह नष्ट हो गया है । इसलिए मैं सुख से सोता हूँ ।

परिनिर्वृत (मुक्त) ब्राह्मण सर्वदा सुख से सोता है,
जो कि शीतल-स्वभाव उपाधि-रहित कामों में लिप्त नहीं है
सब आसक्तियों को छिन्नकर हृदय से भय को हटाकर,
मन में शान्ति प्राप्तकर उपशान्त हो (वह) सुख से सोता है ।"

२ केसपुत्तिसुत्त [कालामसुत्त] (३ ७ ५)—एक बार बुद्ध कोसल में चारिका करते हुए कालामों के निवास स्थान 'केसपुत्त' नामक निगम में पहुँचे । कालामों ने इसे सुना । वे बुद्ध के दर्शन के लिए गए और उनका अभिवादन आदि करके उन्होंने भगवान् से पूछा—

"भन्ते कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण 'केसपुत्त' में आते हैं । वे अपने मत की प्रशंसा करते हैं, दूसरे के मत की निन्दा करते हैं, उसे छुड़ाते हैं । भन्ते दूसरे भी श्रमण-ब्राह्मण यहाँ आते हैं और वे भी ऐसा ही करते हैं । तब हमें इस बारे में संशय अवश्य होता है—कौन आप इन श्रमण-ब्राह्मणों में सच कहता है और कौन झूठ ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"कालामो, तुम्हारा संशय ठीक है । संशय-योग्य स्थान में ही तुम्हें संशय उत्पन्न हुआ है । आओ कालामो, मत तुम अनुश्रव से विश्वास करो, मत परम्परा से विश्वास करो, 'यह ऐसा ही है' इसमें भी तुम मत विश्वास करो, कालामो, मात्र शास्त्र की अनुकूलता से भी (पिटक सम्प्रदाय से) तुम मत विश्वास करो, मत तर्क से, मत न्याय

हेतु से, मत वक्ता के आकार के विचार से, मत अपने चिर-धारित विचार के होने से, मत वक्ता के भव्य रूप होने से, मत 'श्रमण हमारा गुरु है' इस भावना से — कालामो, मत इन सब कारणों से तुम विश्वास करो।

बल्कि, कालामो, जब तुम अपने आप ही जानो कि ये धर्म अकुशल हैं, ये धर्म सदोष हैं, ये धर्म विज्ञ-निन्दित हैं, ये ग्रहण करने पर अहितकर तथा दुःखोत्पादक होंगे, तो उन्हें छोड़ देना ।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने उन्हें लोभ, द्वेष तथा मोह के स्वरूप को बताते हुए उन्हें त्यागने की देशना दी।

कितना बुद्धिवादी दृष्टिकोण इस सुत्त द्वारा व्यक्त किया गया है कि किसी वस्तु को बिना उसकी परीक्षा के न माना जाय। बुद्ध इस प्रकार का दृष्टिकोण अपने धर्म के सम्बन्ध में भी रखते थे। यह सुत्त स्पष्टरूप से विश्वजनीन महत्त्व को व्यक्त करता है। साथ ही इसे समझाकर 'सदाचार का जीवन किस प्रकार के किसी भी आश्वासन की अपेक्षा नहीं रखता' इसे बहुत अच्छी प्रकार से व्यक्त किया गया है।

३ पठमसिक्खापदसुत्त (३.९.५)—"भिक्षुओ, ढाई सौ शिक्षापद (प्रातिमोक्ष नियम) प्रत्येक पन्द्रहवें दिन बाँचे जाते हैं और इन्हीं की शिक्षा अपनी भलाई चाहनेवाले कुलपुत्र लेते हैं। पर ये सभी इन तीन शिक्षाओं में समाहित हो जाते हैं। कौन से तीन में? अधिशील-शिक्षा में, अधिचित्त-शिक्षा में और अधिप्रज्ञा-शिक्षा में।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने इन शिक्षाओं के द्वारा 'स्रोतापत्ति' आदि फलों की प्राप्ति कैसे होती है' इसका विवरण किया।

चतुक्कनिपात

इस निपात में चार संख्या को लेकर चार आर्यसत्य, चार ध्यान, चार श्रामण्य-फल, चार समाधि, चार योग तथा चार प्रकार के आहार आदि का उल्लेख है। उदाहरणस्वरूप इसके कुछ सुत्त नीचे दिये जा रहे हैं —

१ पठमसंवाससुत्त (४१३)—एक बार भगवान् मथुरा और वेरञ्जा के बीच के रास्ते में जा रहे थे। बहुत से गृहपति तथा गृहपत्नियाँ भी उसी रास्ते से जा रही थीं।

भगवान् मार्ग छोड़कर एक पेड़ के नीचे बैठे। उन गृहपतियों आदि ने उन्हें वहाँ बैठे देखा और जाकर अभिवादन करके उनके पास बैठ गये। भगवान् ने उनसे कहा—

"गृहपतियो ये चार प्रकार के संवास हैं। कौन से चार? शव शव के साथ संवास करता है (२) शव देवी के साथ संवास करता है, (३) देव शव के साथ संवास करता है तथा (४) देव देवी के साथ संवास करता है।

कैसे गृहपतियो शव शव के साथ संवास करता है? यहाँ गृहपतियों, पति हिंसक चोर, दुराचारी झूठा नशाबाज दुःशील पापकर्मी कंजूसी की जिन्दगी से लिप्त चित्तवाला श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहनेवाला हो इस प्रकार से वह गृह में वास करता हो और उसकी भार्या भी उसी के समान हिंसक चोर, दुराचारिणी श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहनेवाली हो तो ऐसी परिस्थिति में शव शव के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, पति हिंसक चोर, दुराचारी श्रमण-ब्राह्मणों को को दुर्वचन कहनेवाला हो किन्तु उसकी भार्या अहिंसा-रत चोरी-रहित सदाचारिणी सच्ची नशा-विरत सुशीला कल्याण-धर्म-युक्त मल मात्सर्य-रहित श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहनेवाली हो, तो ऐसी परिस्थिति में शव देवी के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, यदि पति अहिंसक आदि हो और उसकी भार्या हिंसा-रत आदि हो तो ऐसी परिस्थिति में देव शव के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, पति अहिंसा-रत चोरी-रहित सदाचारी आदि हो और उसकी भार्या भी ऐसी ही हो तो ऐसी परिस्थिति में देव देवी के साथ

२ मल्लिकासुत्त (४ २०७)—राजा प्रसेनजित् की प्रिय रानी 'मल्लिका' देवी बुद्ध में बड़ी श्रद्धा रखती थी जिसका राजा भी मजाक उड़ाता था।

भगवान् जेतवन में विहार करते थे। उनके पास मल्लिका देवी आयी तथा अभिवादन आदि करके भगवान् से उन्होंने पूछा—"भन्ते क्या बात है जो कोई-कोई स्त्री दुर्वर्ण कुरूप दर्शन में बड़ी दरिद्र अल्प-सामर्थ्य अल्प भोग तथा अल्प-सम्पत्ति वाली होती है तथा क्या कारण है जो कोई-कोई इनके विपरीत गुणवाली होती है ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"मल्लिका कोई-कोई स्त्री उपायासबहुल तथा क्रोधी होती है थोड़ा-सा भी कहने पर उस बात को मन में बांध लेती है कोप करती है द्वेष करती है तथा अविश्वास प्रकट करती है वह श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्न वस्त्र पान माला गन्ध आदि देनेवाली नहीं होती और दूसरे के लाभ-सत्कार मान तथा पूजा में ईर्ष्या करती है और मन को दूषित करती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर पुन स्त्रीत्व को प्राप्त करती है तो दुर्वर्ण कुरूप दर्शन में बड़ी दरिद्र अल्प-सामर्थ्य अल्प-भोग तथा अल्प सम्पत्ति वाली होती है।

मल्लिका कोई-कोई स्त्री क्रोधी होती है पर पर-लाभ-सत्कार आदि में ईर्ष्या नहीं करती तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों को अन्नपानादि का दान देने वाली होती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को प्राप्त करती है, तो दुर्वर्ण तथा कुरूपादि होती हुई, पर महायशवाली आदि होती है।

मल्लिका कोई-स्त्री कोप-रहित होती है तथा उपायासरहित होती है बहुत कहने पर भी किसी बात को मन में नहीं बाँधती न कोप करती है न द्वेष करती है न अविश्वास प्रकट करती है वह श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्नपानादि का दान देनेवाली नहीं होती और दूसरे के लाभ-सत्कार मान तथा पूजा आदि में ईर्ष्या करती है तथा मन को दूषित करती है एवं ईर्ष्या को मन में बाँधती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को पुन

१ पठमसंवाससुत्त (४६.३)—एक बार भगवान् मधुरा और 'वेरम्भा' के बीच के रास्ते में जा रहे थे। बहुत से गृहपति तथा गृहपत्नियाँ भी उसी रास्ते से जा रही थीं।

भगवान् मार्ग छोड़कर एक पेड़ के नीचे बैठे। उन गृहपतियों आदि ने उन्हें वहाँ बैठे देखा और जाकर अभिवादन करके उनके पास बैठ गए। भगवान् ने उनसे कहा—

"गृहपतियो, ये चार प्रकार के संवास हैं। कौन से चार? शव शव के साथ संवास करता है, (२) शव देवी के साथ संवास करता है, (३) देव शव के साथ संवास करता है तथा (४) देव देवी के साथ संवास करता है।

कैसे गृहपतियो शव शव के साथ संवास करता है? यहाँ गृहपतियो पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, नशाबाज, दुःशील, पापधर्मी, कंजूसी की गन्दगी से लिप्त चित्तवाला, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहनेवाला हो, इस प्रकार से वह गृह में वास करता हो और उसकी भार्या भी उसी के समान हिंसक, चोर, दुराचारिणी, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहनेवाली हो तो ऐसी परिस्थिति में शव शव के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, पति हिंसक, चोर, दुराचारी, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहनेवाला हो, किन्तु उसकी भार्या अहिंसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहनेवाली हो, तो ऐसी परिस्थिति में शव देवी के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, यदि पति अहिंसक आदि हो और उसकी भार्या हिंसा-रत आदि हो तो ऐसी परिस्थिति में देव शव के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, पति अहिंसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारी आदि हो और उसकी भार्या भी ऐसी ही हो, तो ऐसी परिस्थिति में देव देवी के साथ संवास करता है।"

२ मल्लिकासुत्त (४२०७)—राजा प्रसेनजित् की प्रिय रानी मल्लिका देवी बुद्ध में बड़ी श्रद्धा रखती थी जिसका राजा भी मजाक उड़ाता था।

भगवान् जतवन में विहार करते थे। उनके पास मल्लिका देवी आयी तथा अभिवादन आदि करके भगवान् से उन्होंने पूछा—"भन्ते क्या बात है जो कोई-कोई स्त्री दुर्वर्ण्य दुरूप दर्शन में बड़ी दरिद्र अल्प-सामर्थ्य अल्प भाग तथा अल्प-सम्पत्ति वाली होती है तथा क्या कारण है जो कोई-कोई इनके विपरीत गुणवाली होती है ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"मल्लिका कोई-कोई स्त्री उपायासबहुल तथा क्रोधी होती है थोड़ा-सा भी कहने पर उस बात को मन में बाँध लती है कोप करती है द्रुप करती है तथा अविश्वास प्रकट करती है वह श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्न पान माला गन्ध आदि देनवाली नहीं होती और दूसरे के लाभ-सत्कार मान तथा पूजा में ईर्ष्या करती है और मन को दूषित करती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर पुन स्त्रीत्व को प्राप्त करती है तो दुर्वर्ण्य दुरूप दर्शन में बड़ी दरिद्र अल्प-सामर्थ्य अल्प-भोग तथा अल्प सम्पत्ति वाली होती है।

मल्लिका कोई-कोई स्त्री क्रोधी होती है पर पर-लाभ-सत्कार आदि में ईर्ष्या नहीं करती तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों को अन्नपानादि का दान देन-वाली होती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को प्राप्त करती है, तो दुर्वर्ण तथा दुरूपादि होती हुई, पर महाधनवाली आदि होती है।

मल्लिका, कोई-स्त्री क्रोध-रहित होती है तथा उपायासरहित होती है बहुत कहने पर भी किसी बात को मन में नहीं बाँधती न कोप करती है न द्रुप करती है न अविश्वास प्रकट करती है वह श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्नपानादि का दान देनवाली नहीं होती और दूसर के लाभ-सत्कार, मान तथा पूजा आदि में ईर्ष्या करती है तथा मन को दूषित करती है एवं ईर्ष्या को मन में बाँधती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को पुन

प्राप्त करती है तो वहाँ जन्म लेती है दर्शनीय, प्रासादिक एवं परम-वर्ण-पौष्कर्य से युक्त होती है, पर वह दरिद्र, अल्प ऐश्वर्य-युक्त, अल्प भोग तथा अल्प धन वाली होती है।

मल्लिका कोई स्त्री क्रोध-रहित होती है तथा उपायास-बहुल नहीं होती, बहुत कहने पर भी किसी बात को मन में नहीं बाँधती, न कोप करती है, न द्वेष करती है, न अविश्वास करती है, वह श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्न पानादि का दान देनेवाली होती है तथा दूसरे के लाभ-सत्कार आदि में ईर्ष्या करने वाली नहीं होती, मन को दूषित नहीं करती है एवं ईर्ष्या को मन में नहीं बाँधती है। यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को पुनः प्राप्त करती है तो वहाँ जन्म लेती है दर्शनीय, प्रासादिक एवं परम-वर्ण-पौष्कर्य से युक्त होती है, और वह धनी, ऐश्वर्य-युक्त, महाभोग-युक्त तथा सम्पत्तिशालिनी होती है।

मल्लिका, इन्हीं कारणों से स्त्रियाँ उपर्युक्त अवस्थाओं को प्राप्त होती है"।

बुद्ध के ऐसा कहने पर मल्लिका ने अपने वर्तमान जीवन से उन्हें अवगत कराया—"इस जन्म में मैं दुर्वर्ण हूँ और इसका कारण भी उपर्युक्त ही रहा होगा, और जो मैंने श्रमण तथा ब्राह्मणों को अन्नपानादि का दान दिया होगा, उन्हीं कारणों से मैं सम्पत्तिशालिनी, धनी तथा महा ऐश्वर्य वाली हूँ। जो राजा के यहाँ क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य कन्याएँ हैं, उन पर मेरा आधिपत्य है। अब से भन्ते, मैं क्रोध नहीं करूँगी, न ईर्ष्या आदि करूँगी, बहुत कुछ कहने पर भी मन में नहीं बाँधूँगी तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों को अन्न पानादि का दान दूँगी, पर-लाभ-सत्कार तथा वन्दना आदि में ईर्ष्या नहीं करूँगी। आज से भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध उपासिका समझें"।

पञ्चकनिपात

इसमें पाँच की संख्या लेकर विवेचन प्रस्तुत है तथा पाँच अङ्गोंवाली समाधि, पाँच उपादान स्कन्ध, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच 'निस्सरणीय' धातु, पाँच धर्मस्कन्ध, पाँच विमुक्ति और पाँच आयतनों आदि का व्याख्यान है।

१ चुन्दीसुत्त (५२४)—बुद्ध राजगृह के वेणुवन के 'कलन्दक-निवाप' में विहार करते थे। उस समय 'चुन्दी' राजकुमारी पाँच सौ रथों में पाँच सौ कुमारियों के साथ भगवान् के पास गयी और उन्हें अभिवादनादि करके बोली—

"भन्ते, हमारे भ्राता 'चुन्द' राजकुमार यह कहते हैं कि जो स्त्री अथवा पुरुष बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण गया है, हिंसा, चोरी, काम में मिथ्याचार, झूठ बोलना, सुरा-मेरय आदि के पान आदि से विरत है, वह इस शरीर को छोड़ने के बाद सुगति को ही प्राप्त होता है, दुर्गति को नहीं।

बुद्ध ने कहा—"चुन्दी, जितने प्राणी बिना पैरवाले, दो पैरवाले, चार पैरवाले, बहुत-से पैरवाले, साकार, निराकार, संज्ञी, असंज्ञी आदि हैं उनमें तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अग्र कहे जाते हैं। जितने 'संस्कृत' अथवा 'असंस्कृत' धर्म हैं उनमें विराग अग्र है। जितने संघ अथवा गण हैं उनमें तथागत का श्रावक-संघ सब से अग्र है। जितने शील हैं उनमें आर्यों (श्रेष्ठों) द्वारा पालित शील ही श्रेष्ठ है। जो इन अग्रों (श्रेष्ठों) में प्रसन्न रहता है उसका अग्र विपाक होता है।"

छक्कनिपात

इस निपात में बुद्ध ने भिक्षु के उन छह गुणों का उल्लेख किया है जिनसे वह पूज्य तथा आदर प्राप्त करने योग्य हो जाता है। यहाँ पर छह अनुस्मृतियों, छह आध्यात्मिक आयतनों तथा छह अभिज्ञाओं आदि की चर्चा है। इसके उल्लेखनीय सुत्त 'पठमआहुनेय्यसुत्त' 'महानामसुत्त' 'मरण-स्सतिसुत्त' 'निब्बानसुत्त' 'भयसुत्त' तथा 'तण्हासुत्त' आदि हैं।

सत्तकनिपात

यहाँ पर सात बल, सात सम्बोध्यङ्ग, सात अनुशय, सात सद्धर्म, सात संज्ञाएँ तथा सात सत्पुरुष धर्म आदि विवेचित हैं। उदाहरणस्वरूप—

"भिक्षुओ, ये सात बल हैं। कौन-से सात? श्रद्धा-बल, ह्री-बल, 'ओत्तप्प' बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल" आदि।

अट्ठकनिपात

इसमें आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग आठ आरम्भ वस्तुओं आठ अभिभायतनों तथा आठ विमोक्षों आदि का वर्णन है। इसमें 'पजापतिपब्बज्जासुत्त' में महाप्रजापति गौतमी की प्रव्रज्या का बिलकुल उन्हीं शब्दों में वर्णन है, जैसा कि विनयपिटक के 'चुल्लवग्ग' में।

नवकनिपात

नव प्रकार के व्यक्तियों नव संज्ञाओं नव तृष्णा मूलक तथा नव सत्वावासों आदि का उल्लेख यहीं पर है। एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि 'राग' 'दोस' 'मोह' 'कोध' 'उपनाह' 'मक्ख' तथा 'पलास' का परित्याग करके व्यक्ति अर्हत्व को प्राप्त करता है।

दसकनिपात

इस निपात में तथागत के दस बलों दस आर्यवासों दस संयोजनो आदि का उल्लेख है। दस संज्ञाओं का भी व्याख्यान यहीं पर विद्यमान है और दस पारिशुद्धियों की भी गणना यहीं पर की गयी है। इन्हीं के प्रसङ्ग में साधु तथा असाधु दोनों का विवेचन भी हुआ है। इसके उल्लेखनीय सुत्तों में 'पठममहापञ्हासुत्त' तथा 'सीहनादसुत्त' आदि मुख्य हैं।

एकादसकनिपात

यहाँ पर निर्वाण प्राप्ति के साधनों आदि का उल्लेख है और इन सबमें ग्यारह की संख्या को लेकर यह सब कहा गया है। इसके उल्लेखनीय सुत्तों में पठमउपनिस्सासुत्त' 'सम्भासुत्त' 'मनसिकारसुत्त' 'पठममहानामसुत्त' तथा सुभूतिसुत्त' आदि मुख्य हैं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि संख्या से प्रश्नोत्तर की प्रणाली जिसका विवर्धन 'खुद्दकपाठ' के 'कुमारपञ्हा' में विद्यमान है तथा जो 'दीघनिकाय' के 'दसुत्तर' तथा 'सङ्गीति' सुत्तों में भी है, का आश्रय ग्रहण करके इस निकाय का संग्रह हुआ है और तथागत द्वारा व्यक्त धर्म के आन्तरिक रहस्यों के स्वरूप को समझाने में अत्यन्त सहायक होने से यह महत्त्वपूर्ण है। बुद्धकालीन

सोलह महाजनपदों का भी इस निकाय में विशेष वर्णन प्राप्त है जिनका नाम उन-उन प्रदेशों के निवासियों के आधार पर था। भौगोलिक वर्णनों के साथ ग्राम-निगमों आदि का वर्णन होने से यह बुद्धकालीन वातावरण को हृदयङ्गम करने में अत्यन्त सहायक है।



पाँचवाँ अध्याय

५ खुद्दकनिकाय

चार निकायों के अतिरिक्त बुद्धवचन का जिसमें संग्रह हुआ वह खुद्दक निकाय है। धम्मपद सुत्तनिपात-जैसे ग्रन्थों का संग्रह होने से सारे खुद्दक निकाय को बहुत पीछे की कृति नहीं माना जा सकता। पर इसमें शक नहीं कि कुछ पीछे की चीजें इसमें संगृहीत हैं। इस निकाय में निम्न ग्रन्थ हैं—

(१) खुद्दकपाठ
(२) धम्मपद
(३) उदान
(४) इतिवुत्तक
(५) सुत्तनिपात
(६) विमानवत्थु
(७) पेतवत्थु
(८) थेरगाथा
(९) थेरीगाथा
(१०) जातक
(११) निद्देस
(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(१३) अपदान (थेरापदान तथा थेरीपदान)
(१४) बुद्धवंस
(१५) चरियापिटक

सिंहल परम्परा इन पन्द्रह ग्रन्थ को खुद्दकनिकाय का अंग मानती है। 'निद्देस' को 'चूलनिद्देस' और 'महानिद्देस' दो मानने पर यह संख्या सोलह हो जायगी। 'अभिधम्म' जब तीसरा पिटक नहीं माना जाता था तो उसे भी इसी निकाय के अन्तर्गत मानते थे[1]। बर्मा में उपर्युक्त पन्द्रह ग्रन्थ के अतिरिक्त चार और ग्रन्थ खुद्दकनिकाय में माने जाते हैं, जो ये हैं— (१) मिलिन्दपञ्ह, (२) सुत्तसंगह, (३) पेटकोपदेस और (४) नेत्तिप्पकरण। इनमें 'मिलिन्दपञ्ह' बुद्धवचन कैसे हो सकता है, जो यवन राजा मिनान्दर के गुरु नागसेन की कृति है। स्यामी परम्परा (१) विमान-वत्थु (२) पेतवत्थु (३) थेरगाथा (४) थेरीगाथा (५) जातक

१ द्र० — अट्ठसालिनी निदानकथा।

(६) अपदान (७) बुद्धवंस और (८) चरियापिटक आदि ग्रन्थ को भी खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करती। इन ग्रन्थों में वस्तुतः धम्मपद सुत्तनिपात उदान इतिवुत्तक ही प्राचीन मालूम होते हैं। विस्तार में खुद्दकनिकाय बाकी चारों निकायों से बड़ा है।

इस निकाय के ग्रन्थों का सामान्य परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ खुद्दकपाठ

यह छोटा-सा ग्रन्थ भिक्षुओं के लिए प्रथम पुस्तक है जिसमें त्रिशरण दस शिक्षापद कुमारप्रश्न 'मङ्गलसुत्त' 'रतनसुत्त' आदि पाठ हैं।

कुमार प्रश्न बच्चों के सवाल-जवाब का संग्रह है—

"एक वस्तु क्या है? सारे प्राणी आहार पर स्थित हैं।
दो? दो हैं नाम और रूप।
तीन? तीन वेदनाएँ, (दुःख सुख न-दुःख न-सुख)।
पाँच? पाँच स्कन्ध।
छह? शरीर के भीतर के छह आयतन।
सात? सात बोध्यङ्ग।
आठ? आठ अष्टाङ्गिक मार्ग।"

इनके 'मङ्गलसुत्त' 'रतनसुत्त' 'मेत्तसुत्त'—जैसे सूत्रों में काव्य माधुर्य भी दिखता है। 'मेत्तसुत्त' सदा सिंहल के विहारों में स्वर के साथ पढ़ा जाता है—

"छोटी भी कोई ऐसी चीज नहीं करनी चाहिए, जिसकी विज्ञ निन्दा करें।
सारे प्राणी सुखी क्षेमवान् और सुखात्मा होवें।
माता जैसे अपने अकेले पुत्र की प्राणों के समान रक्षा करती है
वैसे ही सारे प्राणी अतिविशाल मन करें।
सारे लोक में ऊपर-नीचे तिरछे, अपरिमित अतिविशाल मन की भावना करें।"

२ धम्मपद

४२३ गाथाओं के इस छोटे-से ग्रन्थ में बुद्ध के उपदेशों का सार आ गया है। हिन्दी में इसके अनेक अनुवाद हैं। मैंने भी संस्कृत छाया के साथ एक अनुवाद किया था जो पहले १९३३ में प्रकाशित हुआ था। इसमें २६ वर्ग हैं जिनके नाम से भी विषय का कुछ-कुछ पता लग सकता है।

१ यमकवग्ग	१४ बुद्धवग्ग
२ अप्पमादवग्ग	१५ सुखवग्ग
३ चित्तवग्ग	१६ पियवग्ग
४ पुप्फवग्ग	१७ कोधवग्ग
५ बालवग्ग	१८ मलवग्ग
६ पण्डितवग्ग	१९ धम्मट्ठवग्ग
७ अरहन्तवग्ग	२० मग्गवग्ग
८ सहस्सवग्ग	२१ पकिण्णकवग्ग
९ पापवग्ग	२२ निरयवग्ग
१० दण्डवग्ग	२३ नागवग्ग
११ जरावग्ग	२४ तण्हावग्ग
१२ अत्तवग्ग	२५ भिक्खुवग्ग
१३ लोकवग्ग	२६ ब्राह्मणवग्ग

वैसे तो सारा ही धम्मपद बुद्ध का सुभाषित-रत्न है। यहाँ उसकी कुछ गाथाएँ दी जाती हैं—

१ पहली ही गाथा है—"सभी धर्मों में मन अग्रगामी है, मन उनका प्रधान है, वे मनोमय हैं। यदि कोई दुष्ट मन से बोलता है, या काम करता है, तो दुःख उसका वैसे ही पीछा करता है, जैसे वहन करनेवाले बैल के पैर का चक्का।

२ "यदि प्रसन्न मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख उसका पीछा कभी भी साथ न छोड़नेवाली छाया की भाँति करता है।

५. कभी भी वैर से वैर शान्त नहीं होता—अवैर से वैर शान्त होता है यह सनातन धर्म है।

१३ जैसे अच्छे प्रकार से छाये घर में वृष्टि नहीं प्रवेश कर सकती वैसे ही सुभावित चित्त को राग नहीं बेध सकता।

१५ यहाँ शोक करता है, मरने के बाद शोक करता है, पापकारी दोनों (लोकों) में शोक करता है। वह अपने मलिन कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

१६ यहाँ मोद करता है, मर कर मोद करता है, पुण्य करनेवाला दोनों ही जगह प्रमुदित होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धि को देखकर मुदित तथा प्रमुदित होता है।

१९. चाहे कितनी ही संहिताओं (वेद) को उचारें, किन्तु प्रमादी बन जो उसके अनुसार (आचरण) करनेवाला नहीं होता वह दूसरे की गायों को गिननेवाले की भाँति श्रामण्य का भागी नहीं होता।

३२ जो भिक्षु प्रमाद से विरत या प्रमाद में भय देखनेवाला होता है, उसका पतन होना संभव नहीं, वह निर्वाण के समीप है।

४१ अहा! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित हो निरर्थक काठ की भाँति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।

४९ जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये रस को लेकर चल देता है वैसे ही गाँव में मुनि विचरण करे।

५४ फूल की सुगन्ध हवा से उलटी ओर नहीं जाती, न चन्दन तगर या चमेली की ही, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध हवा से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाते हैं।

८१ जैसे ठोस पहाड़ हवा से कम्पायमान नहीं होता, ऐसे ही पंडित निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

९६ उपशान्त और यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त उस अर्हत् पुरुष का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

१२७ न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर—संसार में कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर पापकर्मों के फल से प्राणी बच सके।

१४९ शरत्काल की अपथ्य लौकी की भाँति (बाहर फेंक दी गयी) या कबूतरों की सी (सफ़ेद) हो गयी हड्डियों को देखकर क्या (इस शरीर में) प्रेम होगा।

१५० हड्डियों का (एक) नगर बनाया गया है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है, जिसमें जरा और मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं।

१६५ अपना किया पाप अपने को ही मलिन किया करता है, अपना पाप न करे तो अपने ही शुद्ध रहता है। शुद्धि-अशुद्धि प्रत्यात्म है। दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

१७२ जो पहले भूल करके पीछे भूल नहीं करता, वह मेघ से उन्मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है।

२०४ आरोग्य परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है और निर्वाण परम सुख है।

२१२ प्रेम से शोक होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से जो मुक्त है उसको शोक नहीं, फिर भय कहाँ से होगा ?

२१९ चिर प्रवासी सज्जन पुरुष को स्वस्ति के साथ दूर से आया देखकर कुटुम्ब के लोग, मित्र और सुहृद् अभिनन्दन करते हैं।

२९४ माता (=तृष्णा), पिता (=अहंकार), दो क्षत्रिय राजाओं [=(१) आत्मा आदि की नित्यता का सिद्धान्त, (२) मरणान्त जीवन मानने का सिद्धान्त] अनुचर (=राग) सहित राष्ट्र (=रूप विज्ञान आदि संसार के उपादान) को मारकर ब्राह्मण (=ज्ञानी) निष्पाप होता है।

३८४ जब ब्राह्मण (=ज्ञानी) दो धर्मों (चित्तसंयम और भावना) में पारङ्गत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी संयोजन (बन्धन) समाप्त हो जाते हैं।

३९३ न जटा से न गोत्र से न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि है और वही ब्राह्मण है।

४०७ आरे के ऊपर (रखे हुए) सरसों की भाँति जिसके राग, द्वेष, मान, डाह फेंक दिये गये हैं उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४२२ जो (श्रेष्ठ) प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकाम्य, स्नातक, बुद्ध है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

धम्मपद का संसार की सारी सभ्य भाषाओं में भाषान्तर है।

२ उदान

आठ वर्गों और ८० सुत्तों का यह लघु ग्रन्थ भी बड़ा सारगर्भित है। इसके पहले चार सुत्तों में उरुवेला में बोधि के समय बोधिवृक्ष के पास ध्यान-भावना में भगवान् के दिन कैसे व्यतीत हुए इसका उल्लेख है। पहला बोधिसुत्त में है—

१ पठमबोधिसुत्त (१ १)—भगवान् उस वेला में 'नेरञ्जरा' (निरंजना) नदी के तीर बोधिवृक्ष के नीचे बोधि प्राप्त करने के बाद ही विहरते थे। उस समय भगवान् मुक्तिसुख का अनुभव करते एक आसन से सप्ताह भर बैठे रहे। सप्ताह के बाद समाधि से उठकर रात्रि के प्रथम याम में प्रतीत्य-समुत्पाद का अनुलोम प्रतिलोम विधि से इन्होंने अच्छी तरह मनन किया—"ऐसा होने पर यह होता है जैसा कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन आदि षडायतन, षडायतन से स्पर्श (विषय-संयोग), स्पर्श से वेदना (अनुभव), वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान (विषय-ग्रहण), उपादान से भव (संसार), भव से जाति (जन्म), जाति से जरामरण-शोक-परिदेवन (क्रन्दन) दुःख-दौर्मनस्य-उपायास (हैरानी) आदि होते हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण दुःख-राशि की उत्पत्ति होती है।

२ सुन्दरीसुत्त (४ ८)—गौतम बुद्ध का जो सत्कार सम्मान उस समय हो रहा था उससे दूसरे मत के साधुओं को ईर्ष्या होने लगी। भगवान्

उस समय सत्कृत, गुरुकृत तथा मानित-पूजित थे। व चीवर, पिण्डपात (भोजन) शयनासन रोगिपथ्य भैषज्य आदि परिष्कारों के पानेवाले थे। दूसरे मत के साधु उसे पाने में असमर्थ थे। उसे सहन न कर परिव्राजक अत्यन्त सुन्दरी 'सुन्दरी' नामक परिव्राजिका से बोले—"भगिनी! तुम बन्धुओं की सहायता करने का काम कर सकती हो?

"क्या काम? मैं क्या कर सकती हूँ? बन्धुओं की भलाई के लिए मैं अपना प्राण भी दे सकती हूँ।"

"तो बहन शीघ्र ही जेतवन जाना।

'अच्छा आर्यो" कहकर सुन्दरी ने जेतवन के लिए प्रस्थान किया।

उन साधुओं ने रास्ते में योजना बनाकर उसे जान से मारकर जेतवन की परिखा के कुएँ में गाड़कर राजा प्रसेनजित् के पास जाकर 'सुन्दरी' के गायब होने की बात कही। और जेतवन के लोगों पर सन्देह प्रकट किया। राजा की आज्ञा से उसे ढूँढ़कर, लाकर श्रावस्ती के चौराहे पर कहने लगे—"देखो आर्यो शाक्यपुत्रीय श्रमणों का काम! कैसे आदमी पुरुष-कृत्य करने के बाद स्त्री को मार देता?"

उस समय लोग भिक्षुओं को देखकर धिक्कारते थे। उन्होंने इसे भगवान् से कहा। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ, इस प्रकार का शब्द देर तक नहीं रहेगा केवल सप्ताह भर रहकर उसके बाद बन्द हो जायेगा। जब लोग धिक्कारें, तो तुम उन्हें इस गाथा से उत्तर दो—

'मिथ्यावादी नरक में जाता है, और (वह भी) जो कि करके कहते हैं कि हमने नहीं किया। मृत्यु के बाद परलोक में जाकर दोनों नीच कर्म करनेवालों की गति समान होती है।

वह शब्द देर तक नहीं रहा। केवल सप्ताह भर ही रहा फिर बन्द हो गया।

१ सोणसुत्त (५.६)—बुद्ध के चतुर्थ प्रधान शिष्य महाकात्यायन 'अवन्ती' (मालव) देश के 'कुररघर' नामक पर्वत पर विहरते थे। 'सोण

कुटिकण्ण' नामक एक धनी सेठ का पुत्र उनकी सेवा करता था। उसके मन में आया—"इस धर्म को घर में रहते पूरा नहीं किया जा सकता"। तीन बार प्रार्थना करने पर महाकात्यायन ने उसे प्रव्रज्या-उपसम्पदा दी। कुछ समय बाद 'सोण' ने सोचा—"मैंने भगवान् को सुना भर है, देखा नहीं है" और उन्हें दर्शन की इच्छा अपने उपाध्याय से प्रकट की। महाकात्यायन ने कहा—"जाओ दर्शन कर भगवान् के चरणों की वन्दना करना और कुशल-क्षेम पूछकर कहना—'भन्ते, मेरे उपाध्याय महाकात्यायन भगवान् के चरणों को सिर से प्रणाम करते हैं।"

'सोण' श्रावस्ती पहुँचा और भगवान् के दर्शन कर उपाध्याय की ओर से उनका अभिवादन किया और स्वास्थ्य के विषय में पूछा। भगवान् ने भी 'सोण' से रास्ते के कष्ट आदि के बारे में पूछा। उसने कहा—"मैं ठीक से आया, रास्ते में भोजन आदि का कष्ट नहीं हुआ"।

भगवान् ने आनन्द से कहा—"इस भिक्षु के आसनादि का प्रबन्ध करो।" आनन्द ने सोचा—"जिसके लिए भगवान् ऐसा कहते हैं कि इसके ठहरने का प्रबन्ध करो, उसके बारे में वे यह चाहते हैं कि उसे उन्हीं के विहार में ठहराया जाय।" अतः उन्होंने वैसा ही प्रबन्ध किया।

अरुणोदय प्रातःकाल उठकर भगवान् ने पूछा—"भिक्षु, तूने धर्म को कैसे समझा है?" तब 'सोण' ने सारे 'अट्ठकवग्ग' (सुत्तनिपात) को स्वर के साथ सुना दिया। भगवान् ने शाबाशी देते हुए कहा—"साधु साधु भिक्षु, तुम्हारी आयु क्या है।

'एक वर्ष (भिक्षु) हुए हुआ।"

"भिक्षु, तुमने इतनी देर क्यों की?"

"भन्ते, बहुत देर के बाद मैं सांसारिक कामगुणों के दोष को समझ सका। गृहस्थ-जीवन झंझटों से भरा है, कामकाज से छुट्टी नहीं मिलती, यह तरह तरह की रुकावटों से भरा पड़ा है।"

इसे जानकर उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"संसार के दोषों को देख और परम निर्वाणपद को जान
आर्य जन पाप में नहीं रमते, शुद्ध जन पाप में नहीं रमते।

विनयपिटक द्वारा ज्ञात होता है कि 'सोण' को भिक्षु बनाने के लिए दस भिक्षुओं का गण देर से मिला। इसलिए महाकात्यायन ने मध्यदेश के बाहर चार भिक्षुओं के संघ को भिक्षु बनाने का अधिकार माँगा था और भगवान् ने उसे स्वीकार किया था।

४ इतिवुत्तक

इस ग्रन्थ के हरेक सुत्त में 'इतिवुत्त भगवता' (ऐसा भगवान् ने कहा) यह पद बारबार आता है। अतएव इसका नाम ही 'इतिवुत्तक' पड़ गया। इसमें चार निपात तथा एक सौ बारह सुत्त हैं। नीचे इसके कुछ मुख्य सुत्तों का परिचय दिया जा रहा है—

१ लोभसुत्त (१ १) — यह पहला सुत्त है। इसका वर्णन इस प्रकार से है—भगवान् ने यह कहा, अर्हत् ने यह कहा, यह मैंने सुना — "भिक्षुओ एक बात को छोड़ दो और तब मैं तुम्हारे 'अनागामी' होने की जिम्मेवारी लेता हूँ। कौन है एक बात? भिक्षुओ यह लोभ है।

भगवान् न ऐसा कहा। इसलिए यह कहा जाता है—

'जिस लोभ से लुब्ध होकर प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं
उस लोभ को विपश्यना करनेवाले सम्यक् रूप से जानकर छोड़ देते हैं
और उसे छोड़ कर फिर इस लोक में कभी नहीं आते।
इस अर्थ को भी भगवान् ने कहा ऐसा मैंने सुना है।

२ पुत्तसुत्त (३ २५)—भगवान् ने यह कहा, अर्हत् ने यह कहा ऐसा मैंने सुना—

'भिक्षुओ इस लोक में तीन प्रकार के पुत्र होते हैं—अतिजात, अनुजात और अवजात।

अतिजात पुत्र कौन है? जिस पुत्र के माता-पिता बुद्ध, धर्म तथा संघ के शरणागत नहीं होते, हिंसा, चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपानादि

से विरत नहीं होते, दुःशील तथा पाप धर्मवाले होते हैं, पर उनका पुत्र उनसे विपरीत स्वभाववाला होता है, वह पुत्र अतिजात होता है।

अनुजात पुत्र कौन है? माता-पिता बुद्ध, धम्म तथा संघ के शरणागत होते हैं, हिंसा, चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपानादि से विरत होते हैं, सुशील तथा कल्याण धर्म वाले होते हैं और उनका पुत्र भी वैसा ही होता है। इस पुत्र की अनुजात संज्ञा होती है।

अवजात कौन है? माता-पिता में तो उपर्युक्त गुण हों, पर उनका पुत्र दुःशील तथा पापधर्मवाला हो तो वह अवजात कहा जाता है।"

५ सुत्तनिपात

बुद्धवचनों में काल की दृष्टि से सुत्तनिपात का अत्यधिक महत्त्व है। बुद्ध के समय में ही इसके 'अट्ठकवग्ग' तथा 'पारायणवग्ग' प्रसिद्ध हो चुके थे और ऊपर 'उदान' के वर्णन में कहा जा चुका है कि 'सोण कुटिकण्ण' ने सम्पूर्ण 'अट्ठकवग्ग' का पाठ भगवान् बुद्ध के समक्ष किया था। इन सबसे इसकी प्राचीनता सिद्ध ही है। साथ ही अशोक के भाब्रू शिलालेख में जिन बुद्ध सुत्तों का हवाला दिया है, उसमें से तीन—'मुनिगाथा', उपतिस्सपसिन तथा मुनिसुत्त इसी ग्रन्थ में पाये जाते हैं। यह भी इसके विशेष महत्त्व का प्रतिपादित करता है।

इस ग्रन्थ की भाषा पर छान्दस (वैदिक) भाषा का प्रभाव है और और भाषा की दृष्टि से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है।

सुत्तनिपात पाँच 'वग्गों' और अनेक 'सुत्तों' में विभक्त है—

(१) उरगवग्ग

१ उरगसुत्त	७ वसल॰
२ धनिय॰	८ मेत्त॰
३ खग्गविसाण॰	९ हेमवत॰
४ कसिभारद्वाज॰	१० आळवक॰

५ चुन्द॰
६ पराभव
११ विजय॰
१२ मुनि॰

(२) चूळवग्ग

१ रतन॰
२ आमगन्ध॰
३ हिरि
४ मङ्गल॰
५ सूचिलोम॰
६ धम्मचरिय॰
७ ब्राह्मणधम्मिक॰
८ नावा॰
९ किंसील
१० उट्ठान॰
११ राहुल॰
१२ वङ्गीस॰
१३ सम्मापरिब्बाजनिय॰
१४ धम्मिक

(३) महावग्ग

१ पब्बज्जा॰
२ पधान॰
३ सुभासित॰
४ सुन्दरिकभारद्वाज॰
५ माघ॰
६ सभिय॰
७ सेल॰
८ सल्ल॰
९ वासेट्ठ
१० कोकालिक॰
११ नालक॰
१२ द्वयतानुपस्सना॰

(४) अट्ठकवग्ग

१ काम॰
२ गुहट्ठक॰
३ दुट्ठट्ठक
४ सुद्धट्ठक॰
५ परमट्ठक॰
६ जरा॰
७ तिस्समेत्तेय्य॰
८ पसूर॰
९ मागन्दिय॰
१० पुराभेद॰
११ कलहविवाद॰
१२ चूळवियूह॰
१३ महावियूह॰
१४ तुवटक
१५ अत्तदण्ड॰
१६ सारिपुत्त॰

(५) पारायणवग्ग

१	वत्थुगाथा	१०	तोदेय्यमाणव॰
२	अजितमाणवपुच्छा॰	११	कप्पमाणव॰
३	तिस्समेत्तेय्यमाणव॰	१२	जतुकण्णिमाणव॰
४	पुण्णकमाणव॰	१३	भद्रावुधमाणव॰
५	मेत्तगूमाणव॰	१४	उदयमाणव॰
६	धोतकमाणव॰	१५	पोसालमाणव॰
७	उपसीवमाणव॰	१६	मोघराजमाणव॰
८	नन्दमाणव॰	१७	पिङ्गियमाणव॰
९	हेमकमाणव॰	१८	पारायनत्थुतिगाथा
		१९	पारायनानुगीतिगाथा

इनका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

(१) धनियसुत्त—इस सुत्त में सुन्दर काव्य की झलक मिलती है। यहाँ गंडक के किनारे बिहार के छपरा या मुजफ्फरपुर जिले में अपनी गौओं को चराते धनिय गोप तथा बुद्ध का संवाद वर्णित है। समस्त उपकरणों से तथा सांसारिक सुखों से सन्तुष्ट होकर धनिय गोप प्रीति के शब्दों का कह रहा है और वहीं पर खुले आकाश में निवास करते बुद्ध भी निर्वाण की प्रीति से युक्त हो उदान वाक्य कह रहे हैं—

धनिय—भात मेरा पक चुका दूध दुह लिया 'मही' (गंडक) नदी के तीर पर स्वजनों के साथ वास करता हूँ कुटी छा ली है आग सुलगा ली है। अब हे देव! चाहो तो खूब बरसो।

बुद्ध—मैं क्रोध और राग से रहित हूँ एक रात के लिए 'मही' नदी के तीर पर ठहरा हूँ मेरी कुटी खुली है (आकाश के नीचे रहता हूँ) और (अन्तर की) आग बुझ चुकी है। अब॰।

धनिय—मक्खी और मच्छर यहाँ पर नहीं हैं कछार में उगी घास को गौएँ चरती हैं, पानी भी पड़े तो उसे वे सह लें। अब॰।

बुद्ध—मैंने एक अच्छी तरणी बना ली है। भवसागर को तैर कर पार चला आया। अब तरणी की आवश्यकता नहीं। अब०।

धनिय—मेरी स्वामिनि आज्ञाकारिणी और अलोला है, वह चिरकाल की प्रियसंगिनी है। उसके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब०।

बुद्ध—मेरा मन वशीभूत और विमुक्त है, चिरकाल से परिभावित और दान्त है। मुझ में कोई पाप नहीं। अब०।

धनिय—मैं अपनी मजदूरी आप ही करता हूँ। मेरी सन्तान अनुकूल और नीरोग है। उनके विषय में कोई पाप नहीं सुनता। अब०।

बुद्ध—मैं किसी का चाकर नहीं, स्वच्छन्द सारे संसार में विचरण करता हूँ। मुझे चाकरी से मतलब नहीं। अब०।

धनिय—मेरे तरुण बैल हैं और बछड़े हैं, गाभिन गायें हैं और कलोर भी हैं और सबके बीच वृषभराज भी है। अब०।

बुद्ध—मेरे न तरुण बैल हैं, न बछड़े, न गाभिन गायें हैं, न कलोर गायें और सबके बीच वृषभराज भी नहीं। अब०।

धनिय—खूँटे मजबूत गड़े हैं, मूँज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हैं, बैल भी उन्हें नहीं तोड़ सकते। अब०।

बुद्ध—वृषभ-जैसे बन्धनों को तोड़, हाथी-जैसे पूतिलता को छिन्न-भिन्न कर मैं फिर जन्म ग्रहण नहीं करूँगा। अब०।

उसी समय ऊँची-नीची भूमि को भरती हुई जोरों की बारिश हुई। बादलों के गर्जन को सुनकर धनिय ने कहा—"हमारा बड़ा लाभ हुआ कि हम भगवान् के दर्शन को पाये। हे चक्षुमान्, हम आपकी शरण आते हैं, महामुनि आप हमारे गुरु हैं।"

(२) भारतवर्ष—पंजाब में आर्यों का प्रसार ई० पू० बारहवीं सदी में हुआ और इसके छह सौ वर्षों के पश्चात् अर्थात् ६०० ई० पू० में आर्य द्रविड़ देश में बहुगामी गोदावरी नदी के किनारे तक फैल गये थे। अशोक के समय ई० पू० तीसरी सदी के पहले ही वे चोल देश

में पहुँचे थे। कोसल देश के निवासी 'बावरी' ब्राह्मण गोदावरी के किनारे बस ही नहीं गए थे बल्कि वह वहाँ के प्रतिष्ठित आचार्य थे। उनके पास अनेक माणवक (छात्र) पढ़ते थे। उन्होंने सुना कि उत्तर में शाक्यमुनि गौतम पैदा हुए हैं जो बुद्ध माने जाते हैं। बूढ़ेपन के कारण स्वयं न जा उसने अपने सोलह शिष्यों को कोसल देश भेजा पर बुद्ध वहाँ नहीं थे। वे मगध में 'पासाणक' के पास बुद्ध का दर्शन और संभाषण करने में सफल हुए। प्रत्येक माणवक ने प्रश्न पूछा, जिसका उत्तर बुद्ध ने दिया। इस 'वग्ग' में इसी का व्याख्यान है जो संक्षिप्त रूप से नीचे उपस्थित किया जा रहा है—

(क) अजित माणवक ने पूछा—"संसार किससे आच्छादित है? किससे वह अप्रकाशित है? इसका मल मुझे बतावें कि किससे वह मलयुक्त होता है) तथा इसका महाभय क्या है?"

बुद्ध ने कहा—"संसार अविद्या से आच्छादित है लोभ तथा प्रमाद के कारण वह अप्रकाशित है। तृष्णा को मैं मल बताता हूँ तथा दुःख इसका महाभय है।"

अजित—"सर्वत्र तृष्णा की धाराएँ बहती हैं इन धाराओं का क्या निवारण है? इन धाराओं के आवरण को बतावें तथा इनको कैसे बन्द किया जा सकता है?"

बुद्ध—"संसार में जितनी धाराएं हैं स्मृति उनका निवारण है (इस में) धाराओं का आवरण बताता हूँ। प्रज्ञा से ये बन्द की जाती हैं।

(ख) पुण्णक माणवक ने पूछा—"तृष्णारहित (पाप के) मूल को देखने वाले आपके पास प्रश्न करने आया हूँ। किस कारण ऋषियों मनुष्यों क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम इस संसार में बहुत यज्ञ किये थे? भगवान् आप से यह पूछता हूँ आप इसे बतावें।

बुद्ध ने कहा—"पुण्णक' जरा को प्राप्त होने पर जीवन की कामना करते हुए इस संसार में ऋषियों मनुष्यों क्षत्रियों ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत-से यज्ञ किये थे।

(ग) गोतक माणवक तथा कप्प माणवक ने बुद्ध से निर्वाण के बारे में प्रश्न किया और इसी प्रकार से और माणवकों ने भी बुद्ध से प्रश्न किये और उन्होंने उनका उत्तर दिया।

६. विमानवत्थु

प्रायः १२८९ गाथाओं में इस ग्रन्थ में देवताओं के विमान (चलते महलों) के वैभव का वर्णन प्रस्तुत है। इतना निश्चित-सा ही प्रतीत होता है कि यह बुद्ध भाषित नहीं है और सम्भवतः भारत में यह अशोक के समय के आसपास लिखा गया होगा। 'विमानवत्थु' में दो भाग हैं—'इत्थिविमान' तथा 'पुरिसविमान'। स्त्री की देवभूमियों का वर्णन इत्थि-विमान में और पुरुष की देवभूमियों का वर्णन पुरिसविमान में है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में शैली एक ही प्रकार की है। एक स्वर्गवासी भिक्षु अमुक देव या देवी से प्रश्न करता है कि तुम्हें यह सुख और गौरव कैसे प्राप्त हुआ। उत्तर में वह उल्लेख करता है कि उसने अमुक पुण्य कर्म किये थे जिनके फल-स्वरूप उसे वह प्राप्त हुआ। उदाहरणस्वरूप कुछ का उल्लेख इस प्रकार से है—

१ पठमपीठविमानवत्थु (१ १)—तेरा विमान पीठ सुवर्णमय है और मन की गति की तरह यह मनोवाञ्छित स्थान पर चला जाता है। तू अलंकृता मालाधारिणी एवं सुवसना है और मेघशिखर पर विद्युत की भाँति चमकती है।

किस कारण से तुम्हें ऐसा रूप प्राप्त हुआ है तथा ऐसे भोग तुम्हारे लिए उत्पन्न होते हैं जो मन को सुन्दर लगने वाले हैं?

हे महानुभावे तुमसे मैं यह पूछता हूँ कि तुमने मनुष्य होकर क्या पुण्य किया था? जिसके कारण इतना देदीप्यमान प्रभाववाला तेरा यह रूप है जो सभी दिशाओं में प्रकाशमान हो रहा है?

ऐसा 'मोग्गल्लान' द्वारा प्रश्न किये जाने पर वह देवी बोली—"मैंने मनुष्य योनि में जन्म लेकर मनुष्यों में अभ्यागतों को आसन दिया, अभिवादन किया, दान किया और उसी से मेरा ऐसा वर्ण है।"

२ दिसकारीविमानवत्थु (१ १७)—"यह विमान रुचिर और प्रभास्वर तथा हीरों के स्तम्भों के समान सुनिर्मित है चारों ओर सुवर्ण के वृक्ष उग हुए हैं। मेरा स्थान कर्मविपाक-सम्भव है।

वहाँ उत्पन्न सौ या सहस्र अप्सराओं में अग्रगण्य यह तुम सबको प्रकाशित करती हुई यशस्विनी होकर स्थित हो।

हे अनुपमदर्शन वहाँ से तू मेरे इस भवन में उत्पन्न हुई ?

'हे भन्ते, जो तुम मुझसे यह पूछते हो कि कहाँ से च्युत हो कर म यहाँ आयी हूँ तो पूर्व में काशी (जनपद) का वाराणसी नामक नगर है। वहाँ म कमकारिका थी।

म बुद्ध धर्म तथा संघ में प्रसन्न मनवाली मर्यादित शिक्षापद तथा सदाचारवाली फल प्राप्त तथा सम्बोधि-धर्म म नियत तथा अनामया थी।"

उसने यह सुनकर अभिनन्दन करते हुए उसका स्वागत किया।

७ पेतवत्थु

प्राय ८१४ गाथाओं की यह पुस्तिका नरक के दु खों का वर्णन प्रस्तुत करती है। इसमें ५१ वत्थु (कथा) हैं तथा यह चार वर्गों में विभक्त है। इस गरुडपुराण का प्रारम्भिक संस्करण समझिए। उदाहरणस्वरूप कुछ 'वत्थुएँ' नीचे दी जाती हैं।

१ सूकरमुखपेतवत्थु (२)—"तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर स्वर्ण वर्ण का है और सभी दिशाएँ उससे प्रकाशित हो रही हैं पर तुम्हारा मुख सूकर के समान है। तुमने क्या कर्म पहले किया था ?

"मैं शरीर से तो संयत थी पर वाणी से नहीं इसीलिए ऐसा हुआ है।"

२ सत्तपुत्तखादपेतिवत्थु (७)—

'नंगी दुर्वर्ण रूप की हो तथा अपवित्र दुर्गन्ध फैला रही हो।
"मक्खियाँ भिनभिना रही हैं तू कौन यहाँ खड़ी हो ?"
म भदन्ते यमलोकवासी दुर्गति प्राप्त प्रेती हूँ
पाप कर्म करके प्रेतलोक में यहाँ आयी हूँ

कालक्रम से पाँच पुत्र तथा और दूसरे पुत्रों को उत्पन्न करके
उन्हें मैंने खाया तो भी वे पर्याप्त नहीं हुए।
मेरा हृदय क्षुधा से जलता और धूमित होता है
मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती।"
"काया वाणी या मन से क्या दुष्कर्म किया
जिस कर्म-विपाक के कारण तुम पुत्र-मांस खाती हो?"
"मेरी सौत गर्भिणी थी उसका मैंने बुरा सोचा।
सो दुष्ट मन से मैंने उसका दो-तीन मास का गर्भपात कर दिया।
उससे सेवक बहुत उसकी माँ ने कुपित हो मेरी जातिवालों
को बुलाया।
मुझे शपथ कराया मझसे कहला दिया।
सो मैं घोर शपथ कर झूठ बोली
मैंने शपथ किया था अब पुत्र-मांस खाती हूँ।
उस कर्म-विपाक का झूठ बोलने का यह फल है
पुत्र-मांस खाती हूँ पीठ और मुख पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।
पाप कर्मों के दुष्परिणाम की बात 'पेतवत्थु' में इसी प्रकार की हुई है।

८ थेरगाथा

इस ग्रन्थ में ढाई सौ के करीब बुद्धकालीन स्थविरों की गाथाएँ सुरक्षित हैं। प्राचीनता ही नहीं प्रत्युत इनमें से कितनी ही कविता की दृष्टि से भी सुन्दर हैं। ई पू छठी सदी के आसपास इतने सुन्दर रूप में कविता करने का प्रयास हुआ था यह इन गाथाओं से ज्ञात होता है।

इस ग्रन्थ में गाथाओं की संख्या के अनुसार निपातों का विभाजन है। इसमें २१ निपात हैं—१ २ ३ ४ ५, ६ ७ ८ ९, १० ११ १२, १३ १४ १५, १६ २० ३० ४० ५० तथा ६० के क्रम से। बीस गाथा वाली रचनाएँ 'वीसतिक' निपात में संकलित हैं। इसमें २४५ भिक्षुओं के उद्गारों का संग्रह है। संक्षिप्त रूप से नमूने के तौर पर, कुछ नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

थेरगाथा' के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

"गिरिगह्वर में रहनेवाले सिंह की भाँति नादवाले स्थविरों की गाथाओं को सुनो" आदि।

१ वनवच्छत्थेरगाथा (१.१३)—नील आभा के रंगवाले शीतल शुचि जल धारण करनेवाले वीरबहूटियों से ढँके पर्वत मुझे रमाते हैं।

२ सप्पकत्थेरगाथा (४.११)—"जब शुचि श्वेत पंखवाली बका काले मेघ के भय से डरी शरणस्थान ढूँढ़ती भागती है तब मुझे अजकरणी नदी रमण कराती है। जब सब ओर से आलोक दबाती वर्षा छूटती है तब अजकरणी० नदी गुहा के पीछे नदी के तट पर खड़े और सब जामुन वृक्ष शोभायमान होते किसको नहीं पसन्द आते।

मन्द-मन्द बहती नदी नाद कर रही। आज इसी गिरि-नदी छोड़ प्रवास करने का समय नहीं। अजकरणी क्षेमवन शिव सुरम्य है।"

३ महाकच्चायनत्थेरगाथा (८.१)—बहुत कर्म न कराये उद्यम में किसी को न रोके जो सुख लानेवाले परमार्थ को छोड़ देता है वह उत्सुक तथा रस-लोभी है।

न कोई दूसरे के कहने से चोर और न दूसरे के कहने से मुनि होता है। आदमी स्वयं अपने को जैसा जानता है वैसा देवता भी उसे जान सकते।

दूसरे यह नहीं समझते कि हम यहाँ से जानेवाले हैं। जो इसे जानते हैं उनके विवाद शान्त हो जाते हैं।

प्रज्ञावान् वित्त के नष्ट हो जाने पर भी जीता ही है। प्रज्ञा के मिलने से वित्तवान् भी (ठीक से) नहीं जी सकता।

कान से सब सुनता है और आँख से सब देखता है। पर धीर सभी देखे-सुने को छोड़ सकता है।"

४ काळुदायित्थेरगाथा (१०.१)—वसन्त के आने पर बुद्ध को जन्मभूमि (कपिलवस्तु) में आने की प्रेरणा देते पुरोहित-पुत्र कालुदायी ने कहा—

"बसंत में इस समय द्रुम फूलों से लाल हैं। फल के इच्छुक, पत्ते छोड़ कर शोभा से प्रभासित हैं। हे महावीर, आङ्गीरसों के प्रस्थान का यही समय है।

द्रुम फूलों से मनोरम हैं। चारों ओर सारी दिशाएं प्रवाहित हो रही हैं। पत्र को छोड़ वृक्ष फल चाहते हैं। यह यहाँ से प्रस्थान करने का समय है।

(समय) न अति शीतल है न अति उष्ण, ऋतु सुखमय है, (समय) यात्रा योग्य है। आपका भला हो। आपको पश्चिम मुख रोहिणी पार करते हुए, शाक्यगण और कोलियगण देखें।

५. तालपुटत्थेरगाथा (१९.१)—राजगृह के भूतपूर्व नटाचार्य कहते हैं—

कब मैं पर्वत-कन्दराओं में अकेला अद्वितीय सारे संसार को अनित्य देखता विहरूँगा। वह समय मेरे लिए कब होगा।

कब मैं फटे वस्त्रधारी काषायधारी ममता-तृष्णारहित इच्छारहित मुनि हो जाऊँगा? राग-द्वेष मोह को मारकर वन में जा सुखी होऊँगा। वह०।

कब अनित्य वधरोग के नीड़ मृत्यु-जरा-पीड़ित इस काया को देखते निर्भय हो अकेला वन में विचरूँगा। वह०।

कब मैं भयजननी दुःखावहा बहुत प्रकार से पीछा करनेवाली तृष्णा-लता को प्रज्ञामय तीक्ष्ण खड्ग से काट कर बसूँगा। वह०।

कब वर्षा के मेघ ऋषि द्वारा प्रयात मार्ग पर वन में जाते नवीन जल चीवर पहन मुझ पर बरसायेंगे। वह कब०।

कब गिरिगह्वर में शिखाधारी मोर पक्षी के स्वर को सुनकर अमृत की प्राप्ति के लिए चिन्तन करूँगा। वह कब०।"

६. थेरीगाथा

इसमें ५२२ गाथाएँ हैं, जो १६ निपातों में विभक्त हैं। निपात 'थेरगाथा' के समान आधारों पर ही है। इसमें भिक्षुणियों के उद्गार, जो उनके अन्तस्तल की पुकार-स्वरूप हैं, संगृहीत हैं। उदाहरणस्वरूप—

१ दन्तिका (१४)— दिन के विहार के लिए, गृध्रकूट पर्वत पर मैंने नाग (हाथी) को जलाशय में उतरते देखा।

एक आदमी अंकुश लेकर पैर को बढ़ाने की याचना करता था। नाग ने पैर पसार दिया, पुरुष नाग पर चढ़ गया।

दमन करने में कठिन दमित (गज) मनुष्यों के वश में हो गया। उसे देख मैं चित्त को समाहित करती हूँ। उसी के लिए वन में गयी।"

२ विमला पुराणगणिका (४२)— वर्ण रूप सौभाग्य और यश से मैं मतवाली थी और यौवन में गर्व भी। दूसरी स्त्रियों को अपने से कम मानती थी।

मूर्खों की लोभनवाली इस विचित्र काया को भूषित कर वेश्या-द्वार पर पक्षियों के लिए शिकारी के पाश की भाँति खड़ी होती थी।

वही आज मैं मुण्डित संघाटी पहिन पिण्डचार करके वृक्ष के नीचे बैठी अवितर्क अवस्थागामी समाधि को पानेवाली हूँ।

दिव्य या मानुषिक सारे बन्धन उच्छिन्न हो गये। सारे चित्तमल को छोड़कर मैं शीतल निर्वाण प्राप्त हूँ।

३ पुण्णा (१२१)— मैं पनिहारिन थी, ठंढ में सदा पानी में उतरती थी, स्वामियों (आर्यों) के दण्ड के भय से सताई हुई थी। "हे ब्राह्मण! किसके भय से जाड़े भारी शीत में पानी में उतरता है?"

"तुम पूर्णिका जानती हो तो पुण्यकाम करने पाप को रोकने वाले से क्यों पूछती हो?"

"जो बड़ा या छोटा पापकर्म करता है, वह भी जल-स्नान से उस पापकर्म से छूट जाता है।"

"न जाने किस अजानी ने तुमसे यह कहा—'उदक स्नान से पापकर्म छूटता है'। तब तो सभी मेंढक कछुए, स्वर्ग को चले जायेंगे। नाग और मगर भी और जो दूसरे जलचर भी।

भेड़ मारनेवाले, शूकर मारनेवाले, मछुये और मृगवधिक, चोर और दूसरे पाप कर्मी भी जल-स्नान से पाप कर्म से छूट जायेंगे।

यदि ये नदियाँ पहले के तेरे किये पाप को धोयेंगी, तो पुण्य को भी बहा ले जायेंगी। इसलिए बाहर आओ।

ब्राह्मण जिससे डरकर सदा पानी में उतरता है, उसे ही मत कर शीत से अपने चमड़े का हनन न कर दे।"

"उदक-सेवन कुमार्ग में आये मुझे आर्य-मार्ग पर लायी। अतः भवती मैं तुझे यह शाटक (धोती) देता हूँ।"

"तेरा शाटक रहे, मैं शाटक नहीं चाहती। यदि दुःख से डरता है, यदि दुःख तुझे अप्रिय है, तो प्रकट या गुप्त पापकर्म मत कर।

यदि पाप कर्म करता है या करेगा, तो भागकर भी दुःख से नहीं छूटेगा।"

४. अम्बपाली (१३.१)—वैशाली की प्रसिद्ध वेश्या ने बुढ़ापे में ये गाथाएँ कही थीं—

"काले भ्रमरवर्ण समान मेरे ये केश छोर पर कुंचित थे, तब मैं जवान थी। वे (केश) अब जरा से सन के छिलके-से हैं। सत्यवादी बुद्ध का वचन अन्यथा नहीं हो सकता।

सुगंधि के द्रव्य से तथा पुष्पराशि से वासित मेरे केश थे। वे जरा के कारण खरगोश के बाल के समान दुर्गन्धित हैं। सत्यवादी०।

घन सुरोपित कानन की भाँति केश सुइयों से विचित्र तथा अवशोभित थे। वे जरा से जहाँ-तहाँ विरल हैं। सत्यवादी०।

स्निग्ध, सुगंधित, अलंकृत, सुवर्ण से अलंकृत मेरा सर था। अब वह जरा से गंजा हो गया है। सत्यवादी०।

चित्रकार द्वारा सुचित्रित और अंकित-सी तब मेरी भौंहें सोहती थीं। वे अब जरा से झुर्रियों से लटकी हैं। सत्यवादी०।

मेरे नेत्र भास्वर, सुरुचिर मणि-जैसे नीले और आयत थे। वे अब जरा से आहत हो नहीं सोहते।

१० जातक

जातक में प्रचलित सारे पाँच सौ सैंतालीस (५४७) लोककथाओं का यह संग्रह है। अपने उपदेशों में बुद्ध जैसी उपमाएँ देकर उन्हें रुचिकर तथा सुगम बनाते थे, वैसे ही लोककथाओं को भी देते थे। 'महागोविन्द' आदि छोटे-छोटे जातक सुत्तों में भी आये हैं। जातकों की गाथाएँ पुरानी हैं जिनमें से कुछ लोक-काव्य भी हो सकती हैं। कुछ जातक तो अतिसुन्दर लोक-काव्य हैं। 'वेस्सन्तर जातक' को पढ़ते समय उसी तरह आँसुओं का वेग और कण्ठावरोध होता है जैसे मुझे पाबूजी का पवाड़ा (राजस्थानी) सुनते-पढ़ते समय हुआ था। विश्व-लोक-साहित्य की जातक अद्भुत निधि है। ये बौद्ध देशों में तो बहुत प्रचलित हैं ही, अब तो शायद विश्व की कोई ही साहित्यिक भाषा हो जिसमें कुछ या सारे जातक अनूदित न हुए हों। हिन्दी में उनका अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने छह जिल्दों में कर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कराया है।

जातक में जहाँ प्राचीन भारत के व्यापार-पथ की विशाल सामग्री है वहाँ उस समय के शिल्प, व्यवसाय और मनुष्य-जीवन के अंगों पर भी बहुत प्रकाश पड़ता है। चित्रकारों और मूर्तिकारों के लिए ये उत्तम सामग्री प्रदान करते हैं। कितने ही काव्य ग्रन्थ भारत से बाहर जातकों को लेकर बने हैं। मूलरूप में गाथा मात्र ही जातक माना जाता है, पर कथाओं के बिना जातक का कोई महत्त्व नहीं है, अतः गाथाओं को उनके साथ ही लेना चाहिए।

जातक में सर्वप्रथम 'निदानकथा' है जो इसकी भूमिकास्वरूप है। इसके बाद 'पच्चुप्पन्नवत्थु', 'अतीतवत्थु', 'अत्थवण्णना' और 'समोधान' ये चार भाग प्रत्येक जातक में आते हैं। पच्चुप्पन्नवत्थु में वर्तमान संदर्भ दिया रहता है जिसमें उस जातक-विशेष का उद्देश्य हुआ रहता है। अतीत-वत्थु प्राचीन कथा है। अत्थवण्णना उसमें आये हुए गाथा-भाग की टीका है तथा बुद्ध स्वयं अपने से तथा अन्य शिष्यों से जातक का जो मेल बैठाते हैं,

यहाँ समीचीन है। यहाँ पर केवल 'वेस्सन्तर जातक' उदाहरण के रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

१ वेस्सन्तरजातक (५४७)—इसमें सिवि वंश के राजा 'वेस्सन्तर' के त्यागमय जीवन का वर्णन है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'सिवि दधीचि हरिश्चन्द्र नरेसू' चौपाई में सिविराज का उल्लेख किया है। ये यही वेस्सन्तर हैं। यद्यपि उनके समय यह कथा बौद्ध धर्म के लुप्त होने के साथ लुप्त हो चुकी थी पर जनता के अन्तस्तल में पड़ी हुई थी।

वेस्सन्तर की दान की उदारता से सारी जनता बिगड़ जाती है और पिता को अपने प्रिय पुत्र को निर्वासित करना पड़ता है।

यह सुन (देवी) वेस्सन्तर-पत्नी माद्री काँपती हुई बोली—"पहले जिसकी सेना ध्वजाग्र के साथ अनुगमन करती थी सो आज अकेला ही वन में जायेगा।

वीरवधूटियों से रंगवाले लाल गान्धार के दुशाले जिसके पीछे चलते थे।

जो पहले हाथी से शिविका से या रथ से जाता था वह वेस्सन्तर राजा आज कैसे पैदल जायेगा।

क्यों काषाय वस्त्र और मृगछाला—नहीं पहन लेते जब अरण्य में प्रवेश करते और चीर क्यों नहीं बाँधते?

कैसे माद्री कुश का चीर पहनेगी?

काशिक वस्त्र मलमल और कोटुम्बर धारण करनेवाली माद्री कुशचीर को कैसे धारण करेगी?

वेस्सन्तर राजा शिवियों की बात के लिए स्वयं राज से बेराज हुआ है।"

वेस्सन्तर की माता ने करुण स्वर से कहा—

'पुत्र तुझे अनुमति देती हूँ तेरी प्रव्रज्या सफल हो पर कल्याणी माद्री पुत्रों (बेटे-बेटी) के साथ यहीं रहे वन में जाकर क्या करेगी?"

वेस्सन्तर ने कहा—"न चाहने वाली दासी को भी मैं वन में नहीं ले जाता यदि माद्री चाहती है तो आये नहीं चाहती तो (यहीं) रहे।"

"हतपुत्रा मृग भीड़ की चिड़िया-सी मैं दुखभरी पीली हो जाऊँगी ऐसे मेरे विलाप करते निर्दोष राजपुत्र को देश से वन मत भेज दिया जाये, नहीं मैं जीवन छोड़ दूँगी।"

राजमाता को क्रन्दन करते सुन कर अन्तःपुर की बहुएँ, शिविकन्याएँ बाँह पकड़कर रोने लगीं।

तब महाराज ने बहू को मनाना चाहा—

"अँबर बस्त्रवासी (मेरी बहू) तुम मत धारे, मत कृष्णाजीर धारे। अरण्यवास दुःखद है सुन्दरी तू मत जा।"

सर्वांगशोभना राजपुत्री माद्री ने तब कहा—

"मैं उस सुख को नहीं चाहती जो वस्सन्तर के बिना सुख मिले। जो वन के भय आपने बतलाये हैं उन सब को मैं जाकर सह लूँगी। बहुत मेहनत से कुमारी पति को पाती है।

संसार में वैधव्य कड़ा है रथपम मुझे जाना ही होगा। बिना जल की नदी नंगी है, बिना राजा के राष्ट्र नंगा है, विधवा स्त्री नंगी है चाहे उसके दस भी भाई हों। अगर वह बहुवस्त्रधारिणी नाना रत्नों से भरी कन्या को भी वस्सन्तर के बिना नहीं लूँगी।

कैसे उन स्त्रियों का हृदय सुख मानता है जो पति को दुःख में छोड़ अपना सुख चाहती हैं। शिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर मैं उनके पीछे-पीछे जाऊँगी। वह मेरी सब कामनाओं के दाता हैं।"

उससे महाराज ने कहा—"सर्वांगशोभने माद्री ये तेरे दोनों बच्चे जाली और कृष्णाजिना छोटे हैं।"

माद्री ने कहा—"देव जाली और कृष्णाजिना दोनों बच्चे मुझे प्रिय हैं। ये अरण्य में हम दुःखी जीवनवालों को सुख देंगे।"

शिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उससे कहा—"शालि के भात और शुचि मांस के व्यंजन को खाने के आदी जंगली पौधों के फलों को खाते हुए बच्चे कितना दुःख पायेंगे।"

तब वेस्सन्तर राजा ने माता-पिता दोनों की वन्दना करके प्रदक्षिणा की।

आश्रम में रहते कुछ समय बाद एक ब्राह्मण आया। माद्री जंगल गयी थी। ब्राह्मण ने दोनों बच्चे माँगे। वेस्सन्तर ने दे दिया।

जाली पीपल के पत्ते की भाँति काँपता पिता के चरणों में वन्दना करते हुए बोला—

माता जंगल गयी है और तात तुम हमको दे रहे हो! अम्मा को भी हम देख लें तब हमें दे देना।

हम तब तक मत दो तात! जब तक हमारी अम्मा नहीं आ जाती तब चाहे ब्राह्मण हमें बेच दे या मार दे।

तात को हम नहीं देख पायेंगे इसी का बहुत दुःख है। हमें न पा बेचारी अम्मा चिरकाल तक रोती रहेगी।"

कामदर्शन कृष्णाकुमारी को न देखकर बेचारे (तात) भी बहुत समय तक रोते रहेंगे बेचारी अम्मा!"

जाते समय जाली छोटी बहन से कहता है—

ये जामुन तथा सँदुआर आदि के पेड़ हैं नाना प्रकार के वृक्ष, इन्हें आज हम छोड़ रहे हैं।

अश्वगन्ध कटहल बरगद तथा कैथ इन विविध प्रकार के वृक्षों को आज हम छोड़ रहे हैं।

जिनसे पहले हम खेला करते थे उन्हें आज छोड़ रहे हैं

यहाँ ऊपर पर्वत पर विविध प्रकार के फूल हैं जिन्हें हम धारते थे। उन्हें०।

ये हमारे खिलौने हाथी और अश्व हैं ये हमारे घर हैं जिन के साथ पहले हम खेला करते थे। उन्हें०।"

ले जाये जाते बच्चों ने पिता को कहा—"अम्मा को आरोग्य कहना तुम भी तात सुखी रहो।"

ये हमारे हाथी-घोड़े हैं, ये हमारे बैल हैं। इन्हें अम्मा को देना। वह इनसे अपना शोक दूर करेगी।"

तब क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा गान देकर शाला में घुस करुण रुदन करने लगा—

"भूख प्यासे बच्चे आज किसके पास हठ करेंगे। शाम को ब्यालू के समय कौन उन्हें भोजन देगा? बिना जूते के पैदल कैसे जायेंगे? नंगे पैर जाते उन्हें कौन हाथ पकड़ायेगा।

मद्दी ने संध्या का सौम्य समय दूर से सोचना शुरू किया—'उनके लिए यह भोजन ले जा रही हूँ। वह इस भोजन को खायेंगे। वह क्षत्रिय निवासस्थान में जरूर अकेला होगा। मुझे ने भूखी देख बच्चों के साहस बाँधना होगा। मुझ अभागिनी बचारी के बच्चे अन्दर पानी पीते पड़ हुए। मेरे स्तन भरे हुए हैं, छाती फट रही है।

पास आकर उसने कहा—"पर मैं तथा जाली कृष्णाजिना वाला बच्चा को नहीं देख रही हूँ। शाम के समय धूल में लिपटे मेरे बच्चे मेरी गोद में गिरते थे उन बच्चों को मैं नहीं देख रही हूँ। क्यों यह आश्रम निःशब्द सा दीख रहा है? पक्षी भी नहीं चहचहा रहे हैं, जरूर बच्चे मर गये"।

वह वस्सन्तर से बोली—

"क्यों मेरा मन घबरा रहा है, आर्यपुत्र मेरे बच्चों को भेड़िए तो नहीं खा गये? न तो उनके शब्द दीखते हैं न हाथ-पैर ही। मैं जाली और कृष्णाजिना को नहीं देख रही हूँ और आर्यपुत्र तुम नहीं बोल रहे हो"।

अन्त में वेस्सन्तर ने उस दान की सारी कथा बतला दी।

११ निद्देस

चूळनिद्देस और महानिद्देस इसके ही भाग हैं। यह अंशरूप रचना के समय की व्याख्या है। महानिद्देस में सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग (जिसे सोण ने बुद्ध को अवन्ती में स्वर-सहित सुनाया था) की व्याख्या है। महानिद्देस में बहुत-से देशों तथा बन्दरगाहों का उल्लेख है जिनके साथ भारत का वाणिज्य सम्बन्ध था।

१२ पटिसम्भिदामग्ग

इसमें अर्हत् के प्रतिसंविद् की व्याख्या है। इसमें दस परिच्छेद है
इसकी शैली अभिधर्म की है।

१३ अपदान

अपादान (अवदान) चरित को कहते हैं। अपदान के दो भागों
है एक का नाम थेरापदान है दूसरे का थेरी-अपदान। इसे थेरगाथा
थेरीगाथा का पूरक ग्रन्थ कह सकते हैं क्योंकि इसमें उन्हीं थेर-थेरियों
चरित है। इनमें १२८६ गाथाएं स्थविरों से सम्बन्ध रखती हैं, और
१२१७ थेरियों से। पहला अपदान बुद्धापदान है। फिर उसके बाद
बुद्धशिष्य मोग्गल्लान महाकस्सप अनुरुद्ध पूर्णमैत्रायणीपुत्र उपालि
अञ्ञात कौण्डिन्य पिण्डोलभारद्वाज खदिरवनीय रेवत आदि से सम्बन्धित
है। इसी तरह थेरी-अपदान में महाप्रजापति गौतमी आदि से सम्बन्धित चरित
कहे गये हैं। वर्ग-विभाजन की दृष्टि से थेरापदान में ५५ वर्ग हैं और
प्रत्येक वर्ग में १० अपदान हैं थेरी-अपदान में ४ वर्ग हैं और इनमें भी प्रत्येक
में १० अपदान हैं।

थेर-थेरियों की जीवनी इसी जन्म से सम्बन्धित नहीं है बल्कि वे भोग
अतीत में क्या थे इसका भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है।

भाषा कहने वाले स्वयं थे स्थविर हैं वे अपने मुँह से इन अपादानों को
बताते हैं। इतना ही नहीं वाणी मर्म-स्पर्शी भी है और ऐसा अधिक
स्थलों में है।

१४ बुद्धवंस

यह पद्यात्मक ग्रन्थ २८ परिच्छेदों का है और इसमें दीपङ्कर से
लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक के २४ बुद्धों का वर्णन है। गौतम
बुद्ध की जीवनी के अतिरिक्त शेष वर्णन पौराणिक पद्धति पर
आधारित है। एक बौद्ध परम्परा इसे स्पष्ट रूप से बुद्धवचन नहीं
मानती।

१५ चरियापिटक

यह भी ग्रन्थ 'बुद्धवंस' की ही भांति का है और सर्व-प्रमाणित नहीं है। यह छह परिच्छेदों में है जिनमें ३५ जीवनचर्याओं का उल्लेख है। इसमें भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म का वर्णन करते हुए यह प्रदर्शित किया गया है कि उन्होंने दान शील नैष्कर्म्य अधिष्ठान सत्य मैत्री और उपेक्षा आदि सात पारमिताओं की उन-उन जन्मों में पूर्ति कर ली। इन पारमिताओं का वर्णन व्यक्ति के चरित्र के रूप में किया गया है। लगता है पारमिताओं को आदर्श बनाकर लोगों ने उच्च जीवन को समझाने के लिए ही इस ग्रन्थ को रच डाला।

इसके प्रत्येक चर्या का वर्णन जातक की ही भांति है और यह पद्य रूप में प्रस्तुत है।

— • —

छठा अध्याय

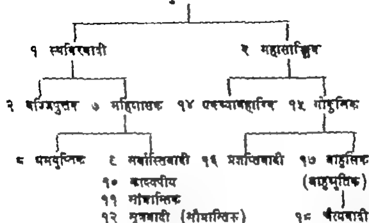
विनयपिटक

यह दूसरा पिटक है, जिसे भिक्षु-भिक्षुणियों का आचार-शास्त्र कह सक
है। इसमें पाँच ग्रन्थ हैं—

१	पाराजिक	१८६० ग्रन्थ-संख्या
२	पाचित्तिय	६६८
३	महावग्ग	७७० „
४	चुल्लवग्ग	८५९०
५.	परिवार	७६२

विनयपिटक के उपर्युक्त विभाजन से इसका सुत्त-विभङ्ग और
खन्धक विभाजन अधिक युक्तियुक्त है। वस्तुतः पाराजिक पाचित्तिय
प्रातिमोक्ष की ही व्याख्या है। प्रातिमोक्ष का प्रातिमोक्षसूत्र भी कहते
है। विभङ्ग व्याख्या का भी नाम है। प्रातिमोक्षसूत्र का यह उप
विभङ्ग होने से पाराजिक पाचित्तिय का नाम विभङ्ग पड़ा। सर्वा
स्तिवाद के सूत्र और विनयपिटक से पालिपिटक की बहुत समानता
है। आखिर सर्वास्तिवाद स्थविरवाद की ही शाखा थी। तृतीय संगीति
(अशोक) के समय तक बौद्ध धर्म के १८ निकाय (शाखाएं) हो गये थे।
'कथावत्थु' की अट्ठकथा में इन निकायों का भी उल्लेख है।

अठारहनिकाय—अशोक के समय तक बौद्ध धर्म में अठारह निकाय
हो गये थे—



बुद्ध ने अङ्गुत्तरनिकाय के एक सूत्र में डेढ़ सौ शिक्षापदों (प्रातिमोक्षों) की बात कही है। शिक्षापदों की संख्या चीनी और तिब्बती ग्रन्थ में २५० और २५८ है।

तुलना करें—

विनयपिटक	(पालि)	शिबुनृरित्सु (जापानी)	मूलसर्वा० (तिब्बती)
पाराजिक	४	४	४
संघादिसेस	१३	१३	१३
अनियतधम्म	२	२	२
निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३०	३०
पाचित्तिय	९२	९०	९२
पाटिदेसनीय	४	४	४
सेखिय	७५	१००	१०८
अधिकरणसमथ	७	७	७
	२२७	२५०	२५८

भिक्षु इन नियमों का उल्लंघन करते हुए उनके सम्बन्ध में कहा जा रहा

(१) पाराजिक (२) पाचित्तिय

(१) पाराजिक—ऐसे दोष को कहते हैं जिसके करने पर भिक्षु सदा के लिए संघ से निकाल दिया जाता है उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। पाराजिकाएं चार हैं—(१) मैथुन (२) चोरी (३) मनुष्य-हत्या (४) ज्ञान सत्कार के लिए सिद्धि का दावा करना तथा प्रदर्शन करना।

(२) संघादिसेस—इनके दंड-स्वरूप अपराधी के लिए कुछ समय तक संघ से अलग अकेला रहना पड़ता है। ये तेरह प्रकार के हैं—(१) जान बूझकर वीर्यपतन करना (२) कामवासना से स्त्री-स्पर्श करना (३) कामवासना से स्त्री से वार्तालाप करना (४) अपनी प्रशंसा द्वारा उसे बुरे उद्देश्य से आकर्षित करना (५) विवाह करवाना, या प्रेमियों को मिलाना (६) संघ की अनुमति बिना अपने लिए विहार बनवाना (७) बिना अनुमति बड़े माप के विहार बनाना जिनके चारों ओर खुली जगह भी न हो (८) क्रोध से अकारण भिक्षु पर पाराजिक-दोष लगाना (९) पाराजिक समान-अपराध लगाना (१०) चेतावनी देने पर भी संघ में फूट डालने का प्रयत्न करना (११) फूट डालनेवाले की हिमायत करना (१२) गृहस्थ की अनुमति के बिना उसके घर में घुसना (१३) चेतावनी देने पर भी संघ या साथी भिक्षुओं के आदेश को न सुनना।

(३) अनियतधम्म—ऐसे अपराध हैं, जिनका स्वरूप निश्चित नहीं है और साक्ष्य मिलने पर भी जिन्हें किसी विशेष श्रेणी के अपराधों में गिना जा सकता है। ये दो प्रकार के हैं—

(१) यदि कोई भिक्षु किसी एकान्त स्थान में बैठा हुआ स्त्री से बातें कर रहा है और कोई श्रद्धावती उपासिका आकर उसे पाराजिक संघादिसेस या पाचित्तिय अपराध का दोषी ठहराती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह उसी अपराध के अनुसार दण्ड का भागी है। (२) यदि वह एकान्त स्थान में न बैठकर किसी खुली हुई जगह में ही स्त्री से सम्भाषण

कर रहा है किन्तु उसके सम्बन्ध में कुछ अनिश्चित है और कोई श्रद्धावती उपासिका उसी प्रकार आकर उसे उपर्युक्त अपराधों का दोषी ठहराती है और उसे वह स्वीकार कर लेता है तो वह उसी अपराध के अनुसार दण्ड का भागी है।

(४) निस्सग्गियपाचित्तिय—इसके अन्दर उन अपराधों की गणना की गयी है जिनमें स्वीकरण के साथ-साथ प्रायश्चित्त भी करना पड़ता है साथ ही जिस वस्तु के सम्बन्ध में अपराध किया जाता है वह वस्तु भी भिक्षु से छीन ली जाती है। इस प्रकार के अपराधों में प्रायः सभी वस्त्र सम्बन्धी और कुछ तो भिक्षा-पात्र सम्बन्धी हैं। उदाहरणार्थ—कोई भिक्षु अतिरिक्त चीवर लेना चाहता है गृहस्थ से ऐसे समय पर वस्त्र माँगता है या अच्छा वस्त्र (रेशम या मुलायम वस्त्र) माँगता है आदि। इसी प्रकार के उपदेश से भिक्षापात्र बदलने में भी यही दोष लगता है। संघ को दी गयी वस्तु पर जब भिक्षु व्यक्तिगत अधिकार करता है तब भी वह इसका भागी होता है।

(५) पाचित्तिय—ये ऐसे अपराध हैं जिन्हें करने पर प्रायश्चित्त करने के बाद अपराध-मुक्त कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ—झूठ बोलना गाली देना चुगली करना नशीली चीजों का प्रयोग करना आदि अपराध यदि हो जायें तो उनका प्रायश्चित्त करने के पश्चात् आगे के लिए वैसा न करने के लिए दृढ़संकल्प होना पड़ता था।

(६) पाटिदेसनीय—उन अपराधों से यह सम्बन्धित है जिनके लिए क्षमा-याचना आवश्यक हो।

(७) सेखिय—ये वे शिक्षा पद हैं जिनका सम्बन्ध बाहरी शिष्टाचार वस्त्र पहनने के ढंग तथा आसन आदि करने के नियमों से है। इनमें से अधिकांश तत्कालीन शिष्टाचार को ही ध्यान में रखकर हैं।

(८) अधिकरणसमथ—इन नियमों पर संघ में विवाद होने पर उसकी शान्ति के उपाय के रूप में सात प्रकार के नियमों का विधान किया गया है।

ग्रन्थों के क्रम में 'पाराजिक' में चार पाराजिक, तेरह संघादिसेस, दो अनियत तथा तीस निस्सग्गियपाचित्तिय भिक्खु के साथ संगृहीत हैं और बानवे पाचित्तिय, चार पाटिदेसनीय, पचहत्तर सेखिय और सात अधिकरणसमथ 'पाचित्तिय' में। इसके अतिरिक्त पाचित्तिय में ही सम्पूर्ण भिक्खुनी-विभङ्ग भी है। अतएव इन्हें पाराजिक, पाचित्तिय विभङ्ग न कहकर इसे भिक्खु-विभङ्ग, भिक्खुनी-विभङ्ग कहना चाहिए। भिक्खुनी विभङ्ग छोटा है। जैसे भिक्खु-विभङ्ग में भिक्षुओं के प्रातिमोक्ष नियमों की व्याख्या है, वैसे ही भिक्खुनी-विभङ्ग में भिक्षुणियों के नियमों की व्याख्या है।

प्रथम ग्रन्थ हिन्दी विनयपिटक में (महाबोधि सभा, सारनाथ) मैंने विभङ्ग की व्याख्या और नियमों का इतिहास समाप्त इसे छोड़कर प्रातिमोक्ष का अनुवाद किया है। सारे 'खन्धक' का अनुवाद किया, पर परिवार को पीछे का प्रकरण ग्रन्थ समझ छोड़ दिया। प्रातिमोक्ष प्रति भिक्षु को दोष से मोक्ष (मुक्ति) पाने का व्याख्यान करता है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा।

खन्धक के दो भाग हैं—महावग्ग, चुल्लवग्ग। महावग्ग के वग्ग (वर्ग) बड़े-बड़े हैं इसलिए उसका यह नामकरण हुआ।

(१) महावग्ग

महावग्ग के नागरी संस्करण में ३६१ पृष्ठ हैं, अर्थात् इसमें श्लोक संख्या ७७०० होगी। चुल्लवग्ग में भी प्रायः उसी क्रम से गिनने पर ८५८० श्लोक होंगे। इनके अध्यायों को खन्धक (स्कन्धक) कहा गया। उनके नामों से उनके विषय भी मालूम होते हैं। महावग्ग को मूल सर्वास्तिवादी 'महावस्तु' कहते हैं। वस्तु का अर्थ कथा या बात है। यह अर्थ मूल पालि में नहीं था। पालि विनयपिटक के खन्धक की तुलना सर्वास्तिवाद से निम्न प्रकार है—

महावग्ग—

थेरवाद	सर्वास्तिवाद
१ महाखन्धक	१ प्रव्रज्यावस्तु

२ उपोसथ०	२ उपोसथ०
३ वस्सूपनायिका०	३ वर्षा०
४ पवारणा०	४ प्रवारणा०
५ चम्म	५ चर्म०
६ भेसज्ज०	६ भैषज्य०
७ कठिन	७ चीवर०
८ चीवर०	८ कठिन०
९ चम्पेयवत्थु०	९ कौशाम्बक०
१० कोसम्बक	१० कर्म०

चुल्लवग्ग—

१ कम्म०	११ पारिवासिक०
२ पारिवासिक०	१२ पुद्गल०
३ समुच्चय०	१३ शमथ०
४ समथ०	१४ प्रातिमोक्षस्थापन०
५ खुद्दकवत्थु०	१५ शयनासन०
६ सेनासन०	१६ अधिकरण०
७ संघभेद	१७ संघभेद०
८ वत्त०	
९ पातिमोक्खट्ठपन०	

प्रातिमोक्ष भिक्षु और भिक्षुणी प्रातिमोक्ष के दो भागों में विभक्त है। थेरवाद और सर्वास्तिवाद में उनके नियमों की संख्या किस प्रकार देखी जाती है—

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	सर्वास्तिवाद
पाराजिक	४	४
संघादिसेस	१३	१३
अनियत	२	२
निस्सग्गियपाचित्तिय	३०	३०

पाचित्तिय	९२	९०
पाटिदेसनिय	४	४
सेखिय	७५	११२
अधिकरणसमथ	७	७
	२२७	२६२
भिक्षुणी-नियम	स्थविरवाद	सर्वास्तिवाद
पाराजिक	८	८
संघादिसेस	१७	२०
निस्सग्गियपाचित्तिय	३०	३३
पाचित्तिय	१६६	१८
पाटिदेसनिय	८	११
सेखिय	७५	११२
अधिकरणसमथ	७	७
	३११	३७१

चुल्लवग्ग के अंतिम तीन स्कन्धक को छोड़ बाकी सारे सर्वास्तिवाद में आ गये हैं। चुल्लवग्ग के अवशिष्ट स्कन्धक क्षुद्रक वस्तु में आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ और भी कितनी ही बातें हैं जो पालि-पिटक में नहीं हैं।

महावग्ग के भिन्न-भिन्न स्कन्ध में निम्न बातें हैं—

(१) महास्कन्धक—आकार में बड़ा होने से इसका यह नाम पड़ा। सर्वास्तिवादी इसे प्रव्रज्यावस्तु कहते हैं जो कि अधिक उपयुक्त नाम है। इसमें बुद्ध के बोधि प्राप्त करने के साथ बोधगया में रहने और बुद्ध की प्रथम यात्रा का वर्णन है। वे वाराणसी ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में आकर पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को दीक्षा देते हैं। इसी क्रम में प्रव्रज्या उपसम्पदा धर्मचक्र-प्रवर्तन भी आये हैं। प्रव्रज्या-उपसम्पदा की विधि तथा शिष्य और उपाध्याय के कर्तव्य आदि का उसके पश्चात् व्याख्यान है, फिर बुद्ध गया और 'गयासीस' (ब्रह्मयोनि) पर्वत पर पहुँचते हैं और

'आदीप्त-पर्याय' का उपदेश देते हैं। इस सूत्र में क्षणिकता के सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है और सबको जलाने वाली आग का वृत्तान्त बनाकर विषय निरूपित किया गया है।

बुद्ध गया से चलकर राजगृह पहुँचकर, वहाँ राजा बिम्बिसार को उपासक बनाते हैं। यहीं बुद्ध के अग्रश्रावक 'सारिपुत्त' और 'मोग्गल्लान' आकर भिक्षु बनते हैं। पञ्चवर्गीयों में से एक अश्वजित् को देख प्रसन्न हो सारिपुत्त ने पूछा—"तुम किस धर्म को मानते हो"? अश्वजित् का उत्तर था—'ये धम्मा हेतुप्पभवा०' वाली गाथा, जो बुद्ध के सिद्धान्तों का निचोड़ है, और जो बौद्ध देशों में पत्थर या मिट्टी पर उत्कीर्ण अगण्य प्राप्त हुई है। उसका अर्थ है—"हेतु से उत्पन्न होने वाली जितनी वस्तुएँ हैं उनको तथागत जानते हैं उन का जो निरोध (विनाश) है उसे भी। यही महाश्रमण का वाद है"। सारिपुत्त और मोग्गल्लान पहले 'संजय' के प्रधान शिष्य थे, अब बुद्ध के हो गये।

उस वक्त जिस तरह घर छोड़कर लोग बुद्ध के पास प्रव्रजित हो रहे थे, उसे देखकर लोगों ने गाथा व्यक्त की थी— "संजय के सभी चेलों को ले लिया। अब (देखें) किसकी बारी है"?

प्रव्रज्या साधारण रूप से गृहस्थाश्रम का त्याग कर चीवर पहिनने को कहते हैं, जिसे एक भिक्षु (गुरु) भी दे सकता है। प्रव्रजित को श्रामणेर कहते हैं। उपसम्पदा एक भिक्षु नहीं दे सकता, वह संघ द्वारा सम्पन्न होती है। दोनों में माता-पिता की आज्ञा जरूरी होती है। दोनों के लिए व्यक्ति किस प्रकार का होना चाहिए आदि बातें भी इसी अध्याय में आयी हैं।

(२) उपोसथस्कन्धक—विशेष दिनों में उस समय के सभी साधु अपने धर्म के अनुसार धर्मानुष्ठान करते थे। बौद्ध-भिक्षुओं के लिए भी यह आवश्यक हो गया—उपोसथ का विधान, उपोसथागार का निर्णय, चतुर्दशी अमावस्या पञ्चदशी पूर्णिमा—दो दिन उपोसथ का निश्चय करना। उपोसथ में सारे उपसम्पन्न (भिक्षु) का एकत्रित हो प्राति

मोक्खसुत्त (शिक्षापदों) को बाँचना (पारायण) पढ़ना तथा दोषों का प्रतीकार करना होता। अमावस्या एवं पूर्णिमा की जानकारी के लिए काल और अंक की विद्या (ज्योतिष और गणित) जानना आवश्यक है और इसका भी विधान है।

(३) वर्षोपनायिकास्कन्धक—इसमें निम्न बातें बतलायी गयी हैं—"वर्षा में यात्रा करने पर दूसरे तैर्थिक कहते हैं—शाक्यपुत्रीय श्रमण तो तृणों को मर्दते वर्षा में भी विचरण करते हैं।" इसलिए भगवान् ने कहा—"अनुमति देता हूँ वर्षा में वर्षावास करने की।" ऋतुओं को जानने के लिए राजकीय अधिकमास को मान लिया। व्रज लेकर घूमने वाले घुमन्तुओं के साथ वर्षावास करने पर उनके साथ घूमा करते थे।

(४) प्रवारणास्कन्धक—वर्षा जिस तिथि से शुरू होती है, उसे वर्षोपनायिका कहते हैं और जिस दिन वर्षावास खतम होता उस आश्विन पूर्णिमा को प्रवारणा। प्रवारणा के दिन गृहस्थ लोग चौमासा काटकर अपने यहाँ से जाने वाले भिक्षुओं को जो नाना वस्तुएँ भेंट करते थे—उसी को प्रवारणा कहते थे। संघ भी उस दिन प्रवारणाकर्म करता।

(५) चर्मस्कन्धक—इसमें चर्म की वस्तुओं, विशेष कर जूतों के उपयोग के नियम कहे गये हैं। इसी में एक बहुत धनी सेठ के पुत्र—बीस करोड़ का स्वामी होने से जिसका नाम ही 'सोणकोटिवीस' पड़ गया था—को भगवान् ने बहुत कड़ा अभ्यास करने पर वीणा के तार का दृष्टान्त देते बोध बतलाया। न अत्यन्त ढीले न अत्यन्त कड़े वीणा के तार उसको स्वरवाली तथा कामलायक नहीं बनाते। यहीं अर्हत् का वर्णन है कि निष्कामता से युक्त विवेकयुक्त चित्तवाला उपादानक्षयवाला तृष्णा के क्षय से मुक्त आदि पुरुष का चित्त आयतनों की उत्पत्ति को देखकर मुक्त होता है यह पदार्थ अनित्य है और वे अर्हत् को कम्पित नहीं करते। भिक्षुओं को एकतल्ला का जूता (उपाहन) पहनना चाहिए। पुराना हो तो कई तल्ले का भी पहना जा सकता है। गुरु के नंगा पैर होने पर जूता

नहीं पहनना चाहिए। चारपाई चौकी के भी नियम इसी स्कन्धक में हैं साथ ही सवारी आदि का भी निषेध किया गया है। मध्य-देश के बाहर कुछ सुविधाएं, कुररघर (मालवा) में निवास करनेवाले सोणकुटिकण्ण की प्रार्थना पर दी गयी हैं। यहीं मध्यम जनपद की सीमा बतायी गयी है— पूर्व में कजंगल (कंकजोल संथाल परगना) से पश्चिम में थूण (थानेसर) नामक ब्राह्मण ग्राम तक, उत्तर में उशीरध्वज (हिमालय का कोई पर्वत) से लेकर दक्षिण में श्वेतकर्णिक निगम तक। मध्यमंडल से बाहर पाँच भिक्षुओं का गण (कोरम) उपसम्पन्न कर सकता है।

(६) भैषज्यस्कन्धक—प्रधान भैषज्य का परिमाण से बुद्ध का भैषज्य-दान कहा गया। दवाइयों में थीं—चर्बी की, मूल की, कषाय की, पत्ते की, फल की, गोंद की, नमक व चूर्ण की, मांस और कच्चे खून की। अंजन, सींग से खून निकालना, सस्यहस्थ-पट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा, पाण्डुरोग-चिकित्सा का भी विधान यहाँ विद्यमान है। इसी स्कन्धक में आराम में चीनी को ठीक से रखना तथा लवण, रसायन आदि का भी विधान किया गया है। इसी में उन मांसों को निषिद्ध कर दिया गया है जो उस समय भारत के शिष्ट समाज में नहीं खाये जाते थे या जिनका खाना देख लोग नुक्ताचीनी अथवा सामाजिक बहिष्कार करते थे। अभक्ष्य मांस इन जन्तुओं के थे—साँप, सिंह, व्याघ्र, लकड़बग्घा, चीता, भालू आदि का। यहीं पर भगवान् का उस समय पाटलिग्राम (पटना) में जाना लिखा है, जब मगधमहामात्य सुनीध और वर्षकार गंगा के किनारे नगर बसा रहे थे। पाटलिग्राम से वैशाली जाने पर सिंह-सेनापति से भेंट और उसका शरण-गमन होना भी यहीं पर वर्णित है।

(७) कठिनस्कन्धक—प्रवारणा (आश्विनपूर्णिमा) के दिन एक नियत चीवर द्वारा किसी एक भिक्षु को उपासक सम्मानित करते थे। उसी चीवर को 'कठिन' कहते थे, उसी के नियम यहाँ हैं। इसी से इस स्कन्धक का यह नाम पड़ा।

(८) चीवरक्खन्धक—यहाँ चीवर की बातें हैं। पहले वैद्य जीवक का संक्षिप्त चरित दिया हुआ है। जीवक के पास एक क्षौम (अलसी की छाल का) सुन्दर थान काशिराज ने भेजा था। उसी को जीवक ने भगवान् को देना चाहा। आगे चीवर के काटने, सुखाने, उनकी संख्या आदि तथा बिछौने की चादर आदि का उल्लेख है। इसी अध्याय में पाखाना-पेशाब में सने रोगी भिक्षु को बुद्ध ने अपने हाथ से नहला कर भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ, न तुम्हारे माता है, न पिता है, जो कि तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे तो कौन करेगा? भिक्षुओ, जो मेरी सेवा करना चाहे, वह रोगी की सेवा करे।" यहाँ पर यह भी विधान है कि मृत भिक्षु की चीजों का मालिक श्रमणों का संघ है।

(९) चम्पेय्यक्खन्धक—चम्पा में कहे गये इस स्कन्ध में दो दोष और उनके प्रतिकारों की बात है। निर्दोष को हटाना ठीक नहीं। अधर्म (विधि विरुद्ध बात) न करके संघ में एक साथ मिलकर फैसला करना चाहिए। कर्म (कोरम) पूरा करने का उपाय तथा तर्जनीय एवं प्रव्राजनीय आदि नियमों का भी यहाँ पर उल्लेख है।

(१०) कोसम्बकक्खन्धक—यहाँ पर कौशाम्बी के घोषिताराम की बातें हैं। एक भिक्षु शौच के लिए बचे जल को पात्र में ही छोड़ आया जबकि उसको उसे फेंक देना चाहिए था। इसी को लेकर विवाद बढ़ा। दोनों पक्षों के समर्थक पैदा हो गये और सारे घोषिताराम में वैमनस्य फैल गया। वे बुद्ध के समझाने पर भी नहीं माने और बुद्ध सबको छोड़कर अकेले चले गये। इसी प्रसंग में यहाँ राजा दीघिति (कोसलराज) और ब्रह्मदत्त (काशिराज) की कथा आयी है।

ब्रह्मदत्त ने कोसलराज को जीत लिया था। कालान्तर में कोसलराज के पुत्र दीर्घायु कुमार ने ब्रह्मदत्त को जीता। दीर्घायु कुमार ने कहा—"तुमने हमारी सेना, बल, कोष और कोष्ठागार को छीन लिया था, तुमने

मेरे माता-पिता को मार डाला। यही समय है कि मैं अपने पुराने वैर का बदला लूँ।"

इस पर काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु के पैरों में पड़कर बोला—'तात दीर्घायु! तुम मुझे जीवन-दान दो'।

"देव को जीवन-दान दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दें"।

दोनों ने एक दूसरे को जीवन दान दिया। एक ने दूसरे का हाथ पकड़ कर द्रोह न करने की शपथ ली।

कथा सुनने पर भी झगड़ालू भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते भगवान्! धर्मस्वामी रहने दें, परवाह न करें, आप सुख से विहार करें, हम झगड़े को देख लेंगे।"

महावग्ग का यह संक्षेप है।

(४) चुल्लवग्ग

इसमें ४११ पृष्ठ अर्थात् प्रायः ८५८० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ है। यह भी बारह स्कन्धकों में विभाजित है, जिनका संक्षेप इस प्रकार है—

(१) कम्मक्खन्धक—इसमें प्रतिसारणीय, तर्जनीय, उत्क्षेपणीय, प्रव्राजनीय (हटाना) आदि कर्मों की बातें हैं।

(२) पारिवासिकक्खन्धक—परिवास, मूल से प्रतिकर्षण, मानत्व, आह्वान आदि दंडों की बात इस स्कन्धक में है। इसी के प्रसंग में कहा गया है कि पारिवासिक भिक्षुओं को दूसरे भिक्षु का अभिवादन नहीं स्वीकार करना चाहिए।

(३) समुच्चयक्खन्धक—इसमें कुछ दंडों (कर्मों) के सम्बन्ध में उल्लेख है। कर्मों का समुच्चय होने से इस स्कन्धक का यह नाम पड़ा।

(४) समथक्खन्धक—अधिकरण (मुकदमा) में फैसला को समथ कहते हैं। जो इस प्रकार के होते हैं—(१) स्मृतिविनय (याद करके दोष का मानना), (२) अमूढ़ विनय (बिना होश में दोष मानना), (३) प्रतिज्ञातकरण (स्वीकार करना) (४) तृणवस्तारक (झगड़े पर तिनका सा ढाँक देना)।

(५) क्षुद्दकवत्थुक्खन्धक—वत्थु शब्द का प्रयोग यह बतलाता है कि सर्वास्तिवादियों का विनय-वस्तु नाम सार्थक है। इस स्कन्धक में स्नान आभूषण नाच-तमाशा पात्र तथा विहार-निर्माण सम्बन्धी बातों का उल्लेख है। यहीं पर बुद्धवचन को छान्दस (वैदिक भाषा) में आरोपित करने की मनाही की गयी है। वह इस प्रकार है—

उस समय यमेळ यमेळुतेकुल नामक ब्राह्मण जाति के सुन्दर (कल्याण) वचन बोलने वाले दो भाई थे। वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये और जाकर अभिवादनादि करके उनसे बोले—"भन्ते इस समय नाना नाम गोत्र जाति कुल के पुरुष प्रव्रजित होते हैं। वे अपनी भाषा में बुद्धवचन को कहकर उसे दूषित करते हैं। अच्छा हो भन्ते हम बुद्धवचन को छन्द में बना दें।"

भगवान् ने उन्हें फटकारा और धार्मिक कथा कह भिक्षुओं को सम्बोधित किया— 'भिक्षुओ बुद्धवचन को छन्द में नहीं करना चाहिए, जो करे उसे 'दुक्कट' का दोष होगा। भिक्षुओ मैं अनुमति देता हूँ अपनी भाषा में बुद्ध वचन को सीखने-सीखने की।

आराम के पेशाबखाना पाखाना अर्द्धन चारपाई, तथा वृक्षारोपण आदि के नियम भी यहीं दिये गये हैं।

(६) शयनासनक्खन्धक—इसमें विहार के भीतर के सामान-सम्बन्धी नियम हैं। यहाँ पर कई तरह की चारपाइयाँ चौकियाँ विहार की रंगाई, नाना प्रकार के (घर) आदि ओसारा उपस्थानशाला पानी घर, परिवेण (आँगन) आदि का विधान है। नवकर्म (नया मकान बनवाना) आदि का भी उल्लेख यहीं पर है।

सम्मानार्थ अग्रपिंड देने की बात करते हुए भगवान् ने तित्तिर जातक की कथा सुनायी—हिमालय के पास एक बड़ा बरगद था जिसके आश्रय तित्तिर, वानर तथा हाथी ये तीन मित्र रहते थे। तीनों में जिज्ञासा हुई हममें कौन श्रेष्ठ है, जिससे हम उसका तदनुरूप सत्कार करें। उनमें से

और तो बरगद से पीछे पैदा हुए थे। इस सम्बन्ध में तित्तिर ने यह कहा कि उसने किसी का फल खाकर बिष्टा कर दिया था जिसके बीज से यह बरगद पैदा हुआ था। इस प्रकार से मालूम हुआ कि वही सबसे जेठा है। यह कह कर बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ! बुढ़ापन के अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ-जोड़ना, कुशल प्रश्न, प्रथम आसन, प्रथम जल तथा प्रथम भोजन ठीक है।"

इसी स्कन्धक में शयनासन के स्वीकार करने की बात तथा विहारकी चीजों की बातें हैं। पाँच चीजें अविभाज्य बतायी गयी हैं। बाँटने पर भी वे अविभक्त ही रहती हैं—

(१) आराम या आराम-वस्तु, (२) विहार या विहार-वस्तु, (३) मंच पीढ़ा गद्दा तकिया (४) लौहकुंभ लौहभाणक लौह कड़ाही बसूला फावड़ा कुदाल (५) रस्सी बल्ली बाँस मूँज तृण मिट्टी लकड़ी का बर्तन मिट्टी का बर्तन। इसमें संघ के कर्मचारियों—भोजन अधिकारी शयनासन प्रज्ञापक भंडारी चीवर प्रतिग्राहक चीवर भाजक यवागू भाजक फल-भाजक, खाद्य-भाजक आदि के चुनने की बात है।

(७) संघभेदकस्कन्धक—इसमें एक साथ प्रव्रजित हुए अनुरुद्ध आदि शाक्यपुत्रों, देवदत्त और उपालि हजाम की कथा है। पीछे लाभ सत्कार के लिए देवदत्त की महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ीं। बुद्ध से साथ नहीं निभा तो देवदत्त विरोधी हो गया और पत्थर मार कर उसने बुद्ध के पैर में चोट पहुँचायी, नालागिरि नामक मस्त हाथी छुड़वाया, संघ में फूट डालने की कोशिश की। देवदत्त संघ से अलग हो गया और उसका पतन हुआ। इसमें आगे चल कर देवदत्त के पतन का कारण तथा संघ भेद की व्याख्या आदि प्रस्तुत है।

(८) व्रतस्कन्धक—इसमें व्रत (कर्तव्य) बतलाये गये हैं—आगन्तुक (अतिथि) आवासिक (निवासी) गमिक (जानेवाले) भिक्षु के लिए, भोजन-सम्बन्धी नियम, भिक्षाचारी और आरण्यक के व्रत

आसन, स्नान-गृह तथा पाखाने के नियम शिष्य उपाध्याय अन्तेवासी आचार्य के कर्तव्य।

(९) प्रातिमोक्षस्थापनस्कन्धक—इसमें यह उल्लेख है कि किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिए और इसी विषय में नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष के स्थगन पर विचार किया गया है।

(१०) भिक्षुणीस्कन्धक—भिक्षुणी की प्रव्रज्या-उपसम्पदा तथा उन्हें भिक्षुओं का अभिवादन आदि करना चाहिए, इन सबका उल्लेख यहाँ पर है। भिक्षुणी उपसम्पदा कैसे शुरू हुई तथा इसके लिए महाप्रजापती गौतमी ने क्या किया यह भी यहीं पर वर्णित है। आठ गुरुधर्मों को प्रजापती ने स्वीकार किया तब उनकी उपसम्पदा हुई। भिक्षुणियों के दण्डकर्म तथा अधिकरण-शमन और दूसरी कुछ विशेष बातें भी यहाँ बतलायी गयी हैं उदाहरणार्थ मुख-लेप चूर्ण आदि। भिक्षुणियों को उपसम्पदा पहले भिक्षुणी-संघ में फिर भिक्षु-संघ में लेनी पड़ती है। आज थेरवादी देशों में भिक्षुणी-संघ नहीं है इसलिए कोई स्त्री भिक्षुणी नहीं बन सकती। चीन में सिंहल की भिक्षुणी देवसारा ने पाँचवी सदी में जाकर भिक्षुणी-संघ को स्थापित किया था जो अब भी है। थोड़ी-सी उदार व्याख्या करके वहाँ से भिक्षुणी-संघ अब भी सिंहल में लाया जा सकता है। अरण्यवास भिक्षुणियों के लिए निषिद्ध है। उनके निवास-निर्माण गर्भिणी प्रव्रजिता की सन्तान का पालन आदि के सम्बन्ध में भी यहाँ पर व्याख्यान विद्यमान है।

(११) पञ्चशतिकास्कन्धक—बुद्ध-निर्वाण ४८७ ई० पू० की वैशाख पूर्णिमा को हुआ। उसी के आषाढ़ में पाँच सौ भिक्षुओं ने महाकाश्यप की अध्यक्षता में राजगृह में जमा हो बुद्धवचनों का संगायन किया। इसी को प्रथम संगीति कहते हैं और उसी का यहाँ वर्णन है। बुद्ध के निर्वाण पर भिक्षुओं ने शोक प्रकट करना शुरू किया। संगायन के लिए पहले आनन्द को नहीं चुना गया क्योंकि वे अर्हत् नहीं थे पर फिर वह भी अर्हत् पद प्राप्त करने पर सम्मिलित किये गये क्योंकि आनन्द ने भगवान् के

पास से बहुत धर्म (सूत्र) और विनय सुन ले। अभिधम्म का यहाँ कोई उल्लेख नहीं है।

आनन्द से महाकाश्यप ने धर्म (सूत्र) की प्रामाणिकता के बारे में पूछा और उपालि से विनय के बारे में। उनके समर्थित वचनों को सम्पूर्ण पाँच सौ के संघ ने संगायन किया। इसमें जो पाठ संगीत हुआ वह मौखिक ही रहा।

आयुष्मान् पुराण संगीति के वक्त दक्षिणागिरि (राजगृह के दक्षिण के पहाड़ों) में थे। वे नहीं आये। और उन्होंने संगीति के पाठ से अपने पाठ को नहीं बदला। भिक्षुओं के कहने पर उन्होंने कहा—"आवुस स्थविरों ने धर्म और विनय का सुन्दर रूप से संगायन किया है तो भी मैंने जैसा भगवान् के मुँह से सुना है मुख से ग्रहण किया है वैसा ही धारण करूँगा।"

यहीं पर कौशाम्बी के राजा उदयन के रनिवास की रानियों का आनन्द को बहुत-से वस्त्र-दान देने की बात को तथा अविनिश्चय छन्न को ब्रह्मदण्ड देने का उल्लेख है।

(१२) सप्तशतिकास्कन्धक—बुद्ध निर्वाण के सौ वर्ष बाद ३८७ ई० पूर्व में यह संगीति वैशाली में हुई थी जिसमें सात सौ स्थविर शामिल हुए थे। इसलिए इसका नाम सप्तशतिका पड़ा। आयुष्मान् यश ने वैशाली के भिक्षुओं को पैसा मन का काम करते देखा जो विनय-विरुद्ध था। लेकिन वहाँ पर बहुमत से यश दण्डित किया गया। इस पर यश बौद्ध भिक्षु-जगत् की सहायता के लिए निकले। वैशाली के भिक्षुओं ने भी इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया। आनन्द के शिष्य सर्वकामी सबसे बूढ़े थे। वे यश के पक्ष में हुए। वैशाली में ही यह संगीति हुई। बृहत् संघ में हल्ला-गुल्ला होने से उद्वाहिका (प्रवर समिति) चुनी गयी जिसके सामने पहले वे दसों सवाल पूछे गये जिनके बारे में झगड़ा था। जब उसने कह दिया—"निषिद्ध है" तब वही बातें बड़े संघ के सामने रखी गयी।

ये बातें थीं—

१ सींग में नमक इस अभिप्राय से रखना कि जब नमक कम होगा तो भोजन में डाला जायेगा।

२ मध्याह्न की छाया के दो अंगुल बढ़ जाने पर भी भोजन करना।

३ ग्रामांतर में असमय प्रवेश।

४ आवासकल्प०

५ अनुमतिकल्प

६ आचीर्णकल्प

७ अमथितकल्प०

८ जलोगीपानकल्प

९ बिना फाड़ का बिछौना

१० सोना-चाँदी लेना।

संघ के बीच में ये बातें आयुष्मान् रेवत ने आयुष्मान् सर्वकामी से पूछा तो सर्वकामी ने नहीं में जवाब दिया। इस विनय-संगीति में न कम न बेशी सात सौ भिक्षु थे इसलिए यह विनय-संगीति सप्तशतिका कही जाती है।

इस तरह विनय की सारी बातें पाराजिक, पाचित्तिय महावग्ग और चुल्लवग्ग में आ गयी हैं। इन्हीं की बातें विनयपिटक के पाँचवें ग्रन्थ 'परिवार' में भी हैं, जो कि सिंहल की कृति है।

(५) परिवार

१२१ पृष्ठ तथा ७६२ श्लोकों के प्रमाण का यह ग्रन्थ सिंहल में रचा गया था। इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है—

"पुब्बाचरियमग्गञ्च पुच्छित्वा च तहिं तहिं।
दीप नाम महापञ्ञो सुतधरो विचक्खणो॥
इदं वित्थारसंखेपं सज्झायमग्गेन मज्झिमं।
चिन्तयित्वा लिखापेसि सिस्सकानं सुखावहं॥

इससे तो साफ ही जाहिर है कि 'दीप' नामक श्रुतधर ने इसे सिंहल में लिखवाया।

भिक्षु जगदीश काश्यप ने नागरी संस्करण की अपनी भूमिका में लिखा है—

इसमें छोटे-बड़े कुल इक्कीस परिच्छेद हैं। विषय-विभाजन की दृष्टि से न तो इसमें कोई क्रम है, और न कोई एकरूपता। किसी विशेष तारतम्य की दृष्टि से इसका संकलन हुआ हो सो भी बात नहीं दीखती। प्रत्येक परिच्छेद अपने में पूरा है जो विषय के किसी एक पहलू पर विचार करता है।"

इसमें परिच्छेद ये हैं—(१) भिक्खुविभङ्ग (२) भिक्खुनी विभङ्ग (३) समुट्ठानसीससङ्खेप (४) अन्तरपेय्याल (५) समथभेद (६) खन्धकपुच्छावार, (७) एकुत्तरिकनय (८) उपोसथादिपुच्छा विस्सज्जना (९) अत्थवसपकरण (१०) गाथासङ्गणिक (११) अधिकरणभेद (१२) अपरगाथासङ्गणिक (१३) चोदनाकण्ड (१४) चूळसङ्गाम (१५) महासङ्गाम (१६) कठिनभेद, (१७) उपालिपञ्चक, (१८) अत्थापत्तिसमुट्ठान (१९) दुतियगाथासङ्गणिक, (२०) सेद मोचनगाथा (२१) पञ्चवग्ग।

इसकी शैली प्रश्नोत्तर की है, जैसे—भगवान् ने इस शिक्षापद का उपदेश कहाँ किसको और किस प्रकरण में दिया? क्या इसमें 'प्रज्ञप्ति' 'अनु-प्रज्ञप्ति' और 'अनुत्पन्नप्रज्ञप्ति' है आदि?

इसी प्रकरण में विनय की गुरु-परम्परा बतलायी गयी है (१) उपालि (२) दासक (३) सोणक, (४) सिग्गव, (५) मोग्गलिपुत्त से पाँच जम्बुद्वीप के अग्र और तब (६) महिन्द (७) इट्टिय (८) उत्तिय (९) सम्बल तथा भद्रनामक पंडित —ये महाप्राज्ञ जम्बुद्वीप से यहाँ (लंका) आये। उन्होंने ताम्रपर्णी (लंका) में विनय और पिटक का पाठ करवाया तथा पाँचों निकायों का पाठ कराया और सात अभिधम्म के प्रकरणों का भी। उसके बाद (१०) अरिट्ठ (११) कालसुमन (१२) दीर्घनामक थेर (१३) बुद्धरक्खित (१४) तिस्सथेर, (१५) देवथेर

आदि—इस प्रकार से इन महाप्राज्ञ तथा विनय के मार्गकोविदों ने विनय-पिटक को ताम्रपर्णी द्वीप में प्रकाशित किया।

पूर्व क्रम से प्रश्न-उत्तर के रूप में विनयवाले बहुत-से प्रश्नों को उठाकर परिवार में उत्तर दिया गया है।



सातवाँ अध्याय

अभिधम्मपिटक

प्रथम तथा द्वितीय दोनों संगीतियों के प्रसंग में 'धम्म' तथा 'विनय' के ही संगायन की चर्चा है। इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि पहले दो ही पिटक थे और अभिधम्मपिटक पीछे का है। इसके मूल को पहले 'मातिका' कहा जाता था। सर्वास्तिवाद स्थविरवाद का ही एक सम्प्रदाय था और स्थविरवाद के पालिपिटक को ही बहुत थोड़े-से मत के साथ उन्हीं नामों से संस्कृत में करके उसे सर्वास्तिवादपिटक नाम दे दिया गया है। सुत्तपिटक के सम्पूर्ण निकायों (आगमों) के दीर्घागम आदि नाम ही नहीं बल्कि उनके सूत्रों के भी वही नाम सर्वास्तिवादपिटक में मिलते हैं। विनयपिटक के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है। पर अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ दोनों में भिन्न-भिन्न हैं और यह भी यही सिद्ध करता है कि तृतीय संगीति के समय तक दो ही पिटक थे, तृतीय पिटक (अभिधम्मपिटक) उसके बाद अस्तित्व में आया। डाक्टर लाहा ने अभिधम्मपिटक के ग्रन्थों को निम्न क्रम में रखा है—

१ पुग्गलपञ्ञत्ति
२ विभङ्ग
३ धम्मसंगणि
४ धातुकथा
५. यमक
६ पट्ठान
७ कथावत्थु

सर्वास्तिवादी अभिधम्म के अन्तर्गत निम्नलिखित सात ग्रन्थों की गणना करते हैं, जिनमें 'ज्ञानप्रस्थान' मुख्य है—

ग्रन्थ	कर्त्ता
१ ज्ञानप्रस्थानशास्त्र	आर्य कात्यायन
२ प्रकरणपाद	स्थविर वसुमित्र
३ विज्ञानकायपाद	स्थविर देवशर्मा
४ धर्मस्कन्धपाद	आर्य शारिपुत्र
५ प्रज्ञप्तिशास्त्रपाद	आर्य मौद्गल्यायन
६ धातुकायपाद	पूर्ण या (वसुमित्र)
७ संगीतिपर्यायपाद	महाकौष्ठिल (या शारिपुत्र)

अभिधम्म धम्मों (सुत्तों) का दार्शनिक रूप है। सर्वत्र ही दर्शन-निर्माण का प्रारम्भिक प्रयत्न रूक्ष और भाषा के अल्पविकसित होने के कारण रूखा ही होता है। इसके सम्बन्ध में हम उपनिषदों को ले सकते हैं। वहाँ पर तो कथोपकथन के क्रम से उन्हें कुछ सरस बनाने का प्रयास किया है, पर इसकी तुलना में 'अभिधम्म' तो भारी रेगिस्तान-सा ज्ञात होता है। इसे सुगम बनाने का प्रयत्न चौथी सदी में आचार्य वसुबन्धु ने सर्वास्तिवाद के लिए किया। थेरवाद' (स्थविरवाद) के लिए वही कार्य 'अभिधम्मावतार' तथा 'अभिधम्मत्थसंगह' आदि ग्रन्थों ने उसी समय के आसपास किया। अभिधम्मपिटक स्वयं में अतिविशाल है और उसे अत्यन्त संक्षिप्त करके देना कठिन है। अतएव अब तक लिखे गये पालि साहित्य के इतिहास ग्रन्थों के आधार पर संक्षिप्त करके उसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ धम्मसंगणि

इस ग्रन्थ को 'अभिधम्म' का मूल माना जा सकता है। पुरानी परम्परा में सुत्तधर, विनयधर तथा मातिकाधर आदि का जो उल्लेख आता है, वह मातिका इस ग्रन्थ में संगृहीत मातिका ही थी। इसमें नाम (मन या मानसिक) तथा रूप जगत् की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है और यह व्याख्या कर्मों के कुशल अकुशल तथा अव्याकृत कर्मों तथा उनके विपाकों आदि को ध्यान में रखकर की गयी है। यह व्याख्या नैतिक है और दूसरे शब्दों में इसे हम बौद्ध नीतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कह सकते हैं, क्योंकि

इसमें चित्त तथा चैतसिक धर्मों का कुशल अकुशल तथा अव्याकृत रूप में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मातिकाओं का १२२ वर्गीकरण यहाँ पर है जिसमें से २२ तो तीन तीन के शीर्षकों में विभक्त करके दी गयी हैं और शेष १०० दो-दो के शीर्षकों में। ये ही क्रमशः 'तिक' तथा 'दुक' कहलाते हैं। इन्हीं तिकों तथा दुकों के द्वारा धर्मों का सम्पूर्ण विश्लेषण धम्मसंगणि में किया गया है। यह प्रणाली अभिधम्मपिटक के अन्य ग्रन्थों में भी अपनायी गयी है। नीचे २२ तिकों का विवरण दिया जाता है—

(१) तिक

१ (अ) जो धम्म कुशल हैं।
(आ) जो धम्म अकुशल हैं।
(इ) जो धम्म अव्याकृत हैं।

२ (अ) जो धम्म सुख की वेदना से युक्त हैं।
(आ) जो धम्म दुःख की वेदना से युक्त हैं।
(इ) जो धम्म न सुख न दुःख की वेदना से युक्त हैं।

३ (अ) जो धम्म चित्त की कुशल या अकुशल अवस्थाओं के स्वयं परिणाम हैं।
(आ) जो धम्म स्वयं चित्त की कुशल या अकुशल अवस्थाओं को पैदा करनेवाले हैं।
(इ) जो धम्म न किसी के स्वयं परिणाम हैं और न परिणाम पैदा करनेवाले हैं।

४ (अ) जो धम्म पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त किये गये हैं और जो स्वयं भविष्य में ऐसे ही धर्मों को पैदा करनेवाले हैं।
(आ) जो धम्म पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप नहीं किये गये किन्तु जो भविष्य में धर्मों को पैदा करनेवाले हैं।
(इ) जो धम्म न तो पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त ही किये गये हैं और न जो भविष्य में धर्मों को पैदा करनेवाले हैं।

५. (अ) जो धम्म स्वयं अपवित्र हैं और अपवित्रता के आलम्बन भी बनते हैं।
(आ) जो धम्म स्वयं अपवित्र नहीं हैं किन्तु अपवित्रता के आलम्बन बनते हैं।
(इ) जो धम्म न स्वयं अपवित्र हैं और न अपवित्रता के आलम्बन ही बनते हैं।

६ (अ) जो धम्म वितर्क और विचार से युक्त हैं।
(आ) जो धम्म वितर्क से तो नहीं किन्तु विचार से युक्त हैं।
(इ) जो धम्म न तो वितर्क और न विचार से ही युक्त हैं।

७ (अ) जो धम्म प्रीति की भावना से युक्त हैं।
(आ) जो धम्म सुख की भावना से युक्त हैं।
(इ) जो धम्म उपेक्षा की भावना से युक्त हैं।

८. (अ) वे धम्म जिनका दर्शन के द्वारा नाश किया जा सकता है।
(आ) वे धम्म जिनका अभ्यास के द्वारा नाश किया जा सकता है।
(इ) वे धम्म जो न दर्शन और न अभ्यास से ही नष्ट किये जा सकते हैं।

९. (अ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश दर्शन से किया जा सकता है।
(आ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश अभ्यास से किया जा सकता है।
(इ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश न दर्शन से और न अभ्यास से ही किया जा सकता है।

१० (अ) वे धम्म जो कर्म-संचय के कारण होते हैं।
(आ) वे धम्म जो कर्म-संचय के विनाश के कारण बनते हैं।
(इ) वे धम्म जो न कर्म-संचय और न उसके विनाश के कारण बनते हैं।

११ (अ) वे धम्म जो शैक्ष्य-सम्बन्धी हैं।
(आ) वे धम्म जो शैक्ष्य-सम्बन्धी नहीं हैं।
(इ) वे धम्म जो उपर्युक्त दोनों प्रकार से विभिन्न हैं।

१२ (अ) वे धम्म जो अल्प आकारवाले हैं।
(आ) वे धम्म जो महा आकारवाले हैं।
(इ) वे धम्म जो अपरिमय आकारवाले हैं।

१३ (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन अल्प आकारवाला है।
(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन महा आकारवाला है।
(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन अपरिमय आकारवाला है।

१४ (अ) वे धम्म जो हीन हैं।
(आ) वे धम्म जो मध्यम हैं।
(इ) वे धम्म जो उत्तम हैं।

१५. (अ) वे धम्म जो निश्चयपूर्वक बुरे हैं।
(आ) वे धम्म जो निश्चयपूर्वक अच्छे हैं।
(इ) वे धम्म जिनका स्वरूप अनिश्चित है।

१६ (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन मार्ग है।
(आ) वे धम्म जिनका हेतु मार्ग है।
(इ) वे धम्म जिनका मुख्य उद्देश्य ही मार्ग है।

१७ (अ) वे धम्म जो उत्पन्न हो चुके हैं।
(आ) वे धम्म जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं।
(इ) वे धम्म जो भविष्य में पैदा होनेवाले हैं।

१८. (अ) वे धम्म जो अतीत हैं।
(आ) वे धम्म जो अनागत हैं।
(इ) वे धम्म जो प्रत्युत्पन्न हैं।

१९ (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन अतीत है।
(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन अनागत है।
(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन प्रत्युत्पन्न है।

२० (अ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति के अन्दर अवस्थित हैं।
(आ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति से बाहर अवस्थित हैं।

(इ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति के अन्दर और बाहर दोनों जगह अवस्थित हैं।

२१ (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन कोई आन्तरिक वस्तु है।

(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन कोई बाह्य वस्तु है।

(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन आन्तरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ हैं।

२२ (अ) वे धम्म जो दृश्य हैं और इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले हैं।

(आ) वे धम्म जो दृश्य नहीं हैं, किन्तु इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले हैं।

(इ) वे धम्म जो न तो दृश्य हैं और न इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले हैं।

(७) दुक—इसी प्रकार सं० १   दुकों के द्वारा भी धम्मों का विश्लेषण यहाँ पर प्रस्तुत है जिनमें हेतु, आसव संयोजन ग्रन्थ ओघ नीवरण परामर्श उपादान क्लेश आदि वर्गों में इनका विश्लेषण किया गया है। धम्मों के १२२ प्रकार से वर्गीकरण इसी उपर्युक्त रूप में हैं।

इन वर्गीकरणों में प्रथम त्रिक द्वारा कुशल अकुशल तथा अव्याकृत रूप में विद्यमान वर्गीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पर कर्मों का आधार पूर्णतया नैतिक दृष्टि ही है। शेष वर्गीकरण तो इसी के पूरक स्वरूप हैं।

२ विभङ्ग

यह इस पिटक का दूसरा ग्रन्थ है। आरम्भ में विभङ्ग व्याख्या को कहते थे जैसे प्रातिमोक्ष की व्याख्या विभङ्ग कही जाती थी। इसमें स्कन्धों का विवरण दिया गया है। बौद्ध मान्यता के अनुसार आत्मा वस्तुतः कोई चीज नहीं है रूप (महाभूत) वेदना संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान इन पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मा नामक किसी पदार्थ की स्थिति नहीं है। इन्हीं पञ्च स्कन्धों की यहाँ पर व्याख्या की गयी है।

विभङ्ग के निम्न १८ प्रकरणों से उसका विषय स्पष्ट है—

१ स्कन्ध	१० बोध्यङ्ग
२ आयतन	११ मार्ग
३ धातु	१२ ध्यान
४ सत्य	१३ अपरिमाण
५ इन्द्रिय	१४ शिक्षापद
६ प्रत्ययाकार	१५ प्रतिसंविद्
७ स्मृतिप्रस्थान	१६ ज्ञान
८. सम्यकप्रधान	१७ क्षुद्रकवस्तु
९ ऋद्धिपाद	१८. धर्महृदय

ये उपर्युक्त १८ विभङ्ग आगे इन तीन अङ्गों में विभक्त हैं—(१) सुत्तन्त-भाजनीय (२) अभिधम्म-भाजनीय (३) पञ्ह (प्रश्न)-पुच्छक। इनमें से पहले में सुत्त के अनुसार, दूसरे में अभिधम्म की मातिकाओं के अनुसार तथा तीसरे में कुछ त्रिक आदि रूप में प्रश्नोत्तर करते हुए व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। धम्मसंगणि में तो धम्मों का विश्लेषण मात्र उपस्थित किया गया है पर विभङ्ग में उन्हीं धम्मों का स्कन्ध आयतन तथा धातु आदि में संश्लिष्ट वर्गीकरण किया गया है। यहाँ भी धम्मसंगणि के कुशल अकुशल तथा अव्याकृत इन सभी को ग्रहण करके ही यह प्रस्तुत किया गया है। इस तरह विभङ्ग धम्मसंगणि पर ही अवलम्बित है।

२ धातुकथा

स्कन्ध आयतन और धातु यही तीनों धातुकथा के विषय हैं। इस प्रकार विभङ्ग के १८ विभङ्गों में से स्कन्ध आयतन तथा धातु इन तीन विभङ्गों को ग्रहण करके उनका विश्लेषण यहाँ पर किया गया है। इस प्रकार से इस ग्रन्थ का शीर्षक विषय-वस्तु की दृष्टि से धातुकथा न होकर स्कन्ध-आयतन-धातुकथा होना चाहिए था। इस ग्रन्थ में इन तीनों का सम्बन्ध धर्मों के साथ किस प्रकार से है इसे सम्यक् रूप से प्रदर्शित किया गया है। किस-किस स्कन्ध आयतन अथवा विभङ्ग में कौन-कौन से धर्म संगृहीत

इसी प्रकार से सभी अध्यायों में इन वर्गीकरणों के आधार पर ही ही व्यक्तियों का वर्णन उपस्थित किया गया है। कहीं-कहीं यहां पर बड़ी-बड़ी ही सुन्दर उपमाएं दी गयी हैं।

५ कथावत्थु

इसके रचयिता अशोक के गुरु 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' माने जाते हैं, पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह सिलसिला बाद में भी जारी रहा और इस ग्रन्थ मे अभिवृद्धि होती रही।

इसके २३ अध्यायों में स्थविरवाद के अतिरिक्त १७ निकायों (सम्प्रदायों) के २१९ सिद्धान्तों को प्रश्न के रूप में पूर्वपक्ष रखकर बाद में में उनका उत्तर तथा समाधान उपस्थित करते हुए स्थविरवादी दृष्टिकोण की ही स्थापना की गयी है। अशोक के समय में बौद्ध धर्म अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था और वे लोग अपने-अपने अनुसार बौद्ध मन्तव्यों की व्याख्या भी करने लगे। उस समय यह समझना कठिन-सा हो गया कि बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य क्या था। इसी उद्देश्य को सामने रख कर 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' ने इसकी रचना की और उसने इस उद्देश्य की पूर्ति की तथा बाद में इसी कारणवश इसे त्रिपिटक के एक ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ में केवल दार्शनिक सिद्धान्तों का ही खंडन किया हुआ है और ये सिद्धान्त किन सम्प्रदायों के थे इसका उल्लेख यहाँ पर नहीं है। इस कमी की पूर्ति इसकी अट्ठकथा ने की है। इन सिद्धान्तों तथा मान्यताओं में कुछ तो ऐसे हैं जिनका अस्तित्व अशोक के बाद हुआ। उदाहरणार्थ—अन्धक, अपरशैलीय, पूर्वशैलीय, राजगिरिक, सिद्धार्थक, वैपुल्य, उत्तरापथक और हेतुवादी। यह इस ओर संकेत करता है कि इसके कई अंश ईसा की पहली शताब्दी तक इसमें जोड़े गए हैं।

इनमें से कुछ सिद्धान्त, जिनका खंडन उपस्थित किया गया है, नीचे दिये जा रहे हैं—

खंडन प्रक्रिया

(१) क्या जीव, सत्त्व या आत्मा की परमार्थतः सत्ता है? वज्जि

पृतक और सम्मितिय भिक्षु इसे मानते थे। स्थविरवाद के दृष्टिकोण से इसका खण्डन किया गया है (अध्याय-१)।

(६) क्या सब कुछ है? सर्वास्तिवादियों का विश्वास था कि भूत वर्तमान और भविष्यत् के सभी भौतिक और मानसिक धर्मों की सत्ता है। स्थविरवादियों के मतानुसार अतीत समाप्त हो चुका भविष्यत् अभी उत्पन्न नहीं हुआ केवल वर्तमान ही सत् हो सकता है (अध्याय-१)।

(३४) क्या गृहस्थ भी अर्हत् हो सकता है? उत्तरापथकों का ऐसा विश्वास था। स्थविरवादी मान्यता यह है कि अर्हत् होने पर मनुष्य गृहस्थ नहीं रह सकता (अध्याय-४)।

(६७) क्या यहाँ दिया हुआ दान अन्यत्र (प्रेतों द्वारा) उपभोग किया जा सकता है? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिक्षुओं का ऐसा मत था। स्थविरवादियों के अनुसार भोजन का साक्षात् उपभोग तो उनके लिए सम्भव नहीं है किन्तु यहाँ दिये हुए दान के कारण प्रेतों के मन पर अच्छा प्रभाव अवश्य पड़ता है और वह उनके कल्याण के लिए होता है (अध्याय-७)।

(१२५) क्या व्यक्ति का भाग्य उसके लिए पहले से ही निश्चित (नियत) है? पूर्वशैलियों और अपरशैलियों का ऐसा ही मत था (अध्याय-११)।

(१६७) क्या यह कहना गलत है कि संघ दान ग्रहण करता है? यह मत वैतुल्यक (वेपुल्यक) नामक महाशून्यतावादियों का था (अध्याय-१७)।

(१९१) क्या देवताओं के पशु भी होते हैं? अन्धकों के अनुसार होते थे (अध्याय-२०)।

६ यमक

इस प्रकरण में प्रश्न जोड़े के रूप में रखे गये हैं। यमक का शाब्दिक अर्थ है जोड़ी। यहाँ पर प्रश्नों के अनुकूल और उनके विपरीत स्वरूपों के

जोड़े गये रखे गये हैं और इसी प्रणाली का आदि से अन्त तक अनुसरण किया गया है। इसी से इसका यह नामकरण हुआ है, जैसे—

(१) क्या सभी कुशल-धर्म कुशल-मूल हैं?
क्या सभी कुशल-मूल कुशल-धर्म हैं?

(२) क्या सभी रूप रूप-स्कन्ध हैं?
क्या सभी रूप-स्कन्ध रूप हैं?

(३) क्या सभी अरूप अरूप-स्कन्ध हैं?
क्या सभी अरूप-स्कन्ध अरूप हैं?

इस ग्रन्थ में १० अध्याय हैं और वर्णित विषय उनके अध्यायों के नामों से ही स्पष्ट है—

(१) मूलयमक—कुशल, अकुशल और अव्याकृत ये तीन 'मूल' धर्म या पदार्थ
(२) खन्धयमक—पञ्च स्कन्ध
(३) आयतनयमक—१८ आयतन
(४) धातुयमक—१८ धातुएँ
(५) सच्चयमक—४ सत्य
(६) संखारयमक—कायिक, वाचिक तथा मानसिक संस्कार
(७) अनुसययमक—७ अनुशय (चित्त में स्थित सुषुप्त बुराइयाँ)
(८) चित्तयमक—चित्त-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर
(९) धम्मयमक—धर्म-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर
(१०) इन्द्रिययमक—२२ इन्द्रियाँ।

जहाँ तक विषय-प्रतिपादन की शैली का प्रश्न है, वह प्रायः प्रत्येक अध्याय में समान ही है। यह एक विशाल ग्रन्थ है।

७ पट्ठान (प्रस्थान)

यह शैली की दृष्टि से अत्यन्त दुरूह ग्रन्थ है, साथ ही आकार में भी बहुत बड़ा है। स्यामी संस्करण में यह ६ जिल्दों में समाप्त हुआ है और यहाँ

हालत देवनागरी संस्करण भी भी है। इसमें भी अन्तिम तीन भाग संक्षिप्त कर देने पर ही ऐसा हुआ है। यदि यह विवरण संक्षिप्त न किया जाय तो अनुमानतः यह ग्रन्थ १४००० पृष्ठों में समाप्त होगा। यह चार भागों में विभक्त है—

(१) अनुलोमपट्ठान—इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धों का विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(२) पच्चनियपट्ठान—इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धों का निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

(३) अनुलोमपच्चनियपट्ठान—इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय सम्बन्धों का विधानात्मक और निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(४) पच्चनियअनुलोमपट्ठान—इसमें धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय सम्बन्धों का निषेधात्मक और विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थारम्भ में 'पच्चयनिद्देस' नामक भूमिका है। इसमें २४ प्रत्ययों का उल्लेख और संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है और इन्हीं के आधार पर धम्मों का उदय तथा व्यय इस ग्रन्थ में प्रदर्शित है। ये २४ प्रत्यय निम्न लिखित हैं—

(१) हेतु प्रत्यय
(२) आलम्बन०
(३) अधिपति०
(४) अनन्तर०
(५) समनन्तर०
(६) सहजात०
(७) अन्योन्य०
(८) निश्रय०
(९) उपनिश्रय०
(१०) पूर्वजात
(११) पश्चात्जात०
(१२) आसेवन०
(१३) कर्म०
(१४) विपाक०
(१५) आहार०
(१६) इन्द्रिय०
(१७) ध्यान०
(१८) मार्ग०

(१९) सम्पयुत्त०
(२०) विप्पयुत्त०
(२१) अत्थि०
(२२) नत्थि०
(२३) विगत०
(२४) अविगत०

किसी एक धम्म अथवा धर्मों की उत्पत्ति तथा निरोध दूसरे धम्म अथवा धर्मों की उत्पत्ति तथा निरोध पर आधारित होते हैं और इसी आधार-सम्बन्ध को प्रत्यय कहते हैं। इन प्रत्ययों में से कुछ का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) हेतुप्रत्यय—हेतु मूल कारण अथवा आधार को कहते हैं। ये छह होते हैं—लोभ द्वेष मोह तथा उनके विपरीत अलोभ अद्वेष और अमोह। ये ही मूल कारण हैं। जिनसे धम्म उत्पन्न होते हैं, व हेतु या मूल कारण कहे जाते हैं और जिस प्रत्यय से उन धर्मों की उत्पत्ति होती है, उन्हें हेतु-प्रत्यय कहते हैं।

(२) आलम्बनप्रत्यय—आलम्बन या 'आरम्मण' (इन्द्रिय) विषय को कहते हैं। जिस वस्तु के आधार से कोई दूसरी वस्तु पैदा होती है तो उस दूसरी वस्तु के प्रति पहली वस्तु का सम्बन्ध आलम्बन-प्रत्यय का होता है, जैसे चक्षु-विज्ञान का आलम्बन है रूपायतन। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि रूपायतन आलम्बन प्रत्यय के रूप में चक्षु-विज्ञान और उसमें संयुक्त धर्मों का प्रत्यय है। इसी प्रकार हम शब्दायतन गन्धायतन रसायतन आदि को भी तत्तद्विज्ञानों के आलम्बन-प्रत्यय के रूप में ले सकते हैं[1]।



१. इस अध्याय विशेष के लिए द्रष्टव्य—पालि साहित्य का इतिहास, भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ११४–४६४ ।

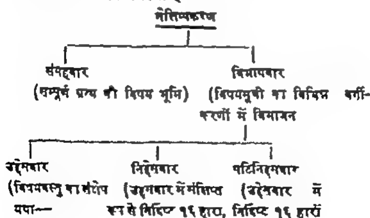
आठवाँ अध्याय

पिटक बाह्य पालि ग्रन्थ

दक्षिण भारत विशेषकर द्रविड प्रदेश तो ईसा की १४ वीं सदी तक थेरवादी रहा। वहाँ पालि में ग्रन्थ लिखे जाते थे। पर उत्तर भारत में पालि सम्प्रदाय पाँचवीं-छठी सदी के बाद नहीं रहा जब कि वहाँ महायान का प्रभुत्व जम गया। वहाँ पर नालन्दा विक्रमशिला तथा ओदन्तपुरी आदि महायान के दुर्ग बन गए। उत्तर भारत की अंतिम कृतियाँ हैं 'नेत्तिप्पकरण' 'पेटकोपदेस' तथा 'मिलिन्दपञ्ह'। बर्मी परम्परा के अनुसार ये ग्रन्थ भी त्रिपिटक में सम्मिलित किए जाते हैं और इनका स्थान खुद्दक निकाय के अन्तर्गत है। नीचे इनका विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

१ नेत्तिप्पकरण

नेत्ति का अर्थ है नेता या मार्ग प्रदर्शक। इस दृष्टि से ग्रन्थ में बौद्ध धर्म को समझने के पथप्रदर्शन का काम किया गया है। इसके विषयों का विभाजन विद्वानों ने निम्न प्रकार से किया है—



१ १६ हार, ५ नयों तथा १८ मूलपदों ५ नयों तथा १८ मूल
२ ५ नय की परिभाषाएं,) पदों की विस्तृत
३ १८ मूलपद) व्याख्याएं जो इन चार
वर्गों में विभक्त हैं—

१ हारविभङ्ग
२ हारसम्पात
३ नयसमुट्ठान
४ सासनपट्ठान ।

नेत्तिप्पकरण को महाकात्यायन की रचना बतलाया गया है। पर यह ठीक नहीं ज्ञात होता। वास्तव में इसका कर्त्ता कौन था यह अज्ञात ही है। यह बुद्धकालीन कृति नहीं हो सकती तथा इसकी रचना ईसवी सन् के प्रारम्भ के आस-पास की है, यही अभी तक विद्वानों को मान्य है। प्राकृत काव्यों में भी परिच्छेदों के स्थान पर हार का प्रयोग होता रहा।

२ पेटकोपदेस

परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ के रचयिता भी महाकात्यायन ही बतलाये गए हैं। नेत्तिप्पकरण की विषयवस्तु ही यहाँ पर एक दूसरे तरह से विवेचित है और बुद्धशासन के मूल उपादान चार आर्य-सत्यों की दृष्टि से ही विषय-वस्तु का व्याख्यान इस ग्रन्थ में है।

३ मिलिन्दपञ्ह

पंजाब से लेकर यमुना तक यवना (ग्रीकों) ने ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में राज्य किया था। दिमित्रि (१८६–१६७ ई० पू०) मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने पर भारत-विजय के प्रयास में निकला था और पतञ्जलि के महाभाष्य में हम स्पष्ट रूप से यह उल्लेख पाते हैं कि यवनों ने साकेत को घेर लिया था—अरुणद् यवन साकेतम्। दिमित्रि का एक सेनापति मिनान्डर था। बाख्त्रिया पर यूथीडीमिया के यवनराज अन्तिया के सेनापति

युक्रतिद के आक्रमण की बात सुनकर दिमित्रि को वहाँ लौटना पड़ा पर वह अपने दामाद तथा सेनापति मिनान्डर को पंजाब में छोड़ गया। मिनान्डर ने पंजाब में रहकर राज्य करना शुरू किया। उसने 'सागल' (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। यही मिनान्डर 'मिलिन्द' के नाम से प्रसिद्ध है। भिक्षु नागसेन का इस मिलिन्द से जो संलाप हुआ था वही इस मिलिन्द पञ्ह' (मिलिन्दप्रश्न) नामक ग्रन्थ में संगृहीत है। मौखिक साहित्य के रूप में ग्रन्थों में घटना-बढ़ना लगा ही रहता है और यह ग्रन्थ भी इस प्रक्रिया से अछूता कैसे रह सकता था। पर इस ग्रन्थ का मूल उसी समय का है जब कि नागसेन थे। साहित्य तथा दर्शन इन दोनों दृष्टियों से यह ग्रन्थ स्थविरवाद बौद्धधर्म का एक बहुत ही गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

मिनान्डर स्वयं विद्या-व्यसनी पुरुष था। भिक्षु नागसेन की विद्वत्ता को सुनकर एक दिन उनके दर्शन के हेतु वह चल पड़ा। सागल नगर का क्या ही सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में विद्यमान है—

सागल नगर का वर्णन

यवनों का नाना पुटभेदन (वाणिज्य-व्यवसाय का केन्द्र) सागल (स्यालकोट) नामक नगर है। वह नगर नदी और पर्वतों से शोभित रमणीय भूमिभागवाला आराम-उद्यान-उपवन-तड़ाग-पुष्करिणी से सम्पन्न नदी-पर्वत-वन से अत्यन्त रमणीय दक्ष कारीगरों द्वारा निर्मित शत्रु तथा अमित्रों से रहित पीड़ा-रहित अनेक प्रकार के विचित्र बुर्ज अटारी तथा फाटकों से युक्त भव्य गोपुर तथा तोरणों वाला गहरी परिखा और धवल प्राकार से घिरे भीतरी भाग वाला सड़क चौगान और चौराह सभी से सम्पन्न रूप से विभक्त अच्छी प्रकार से भरी हुई तथा बहुमूल्य सोने से भरी हुई अच्छी दुकानोंवाला विविध श्रेष्ठ दानशालाओं से सुशोभित हिमालय पर्वत की चोटियों की तरह सैकड़ों और हजारों ऊँचे ऊँचे भवन वाला हाथी घोड़े रथ और पैदल सेना से समाकुल सुन्दर नर-नारी-गणों का विचरण-स्थल मनुष्याकीर्ण क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य शूद्र श्रमण ब्राह्मण तथा गणाचार्यों से आकीर्ण बड़े-बड़े विद्वानों का केन्द्र काशी एवं कोटुम्बर

के वस्त्रों की दुकानों से आच्छादित, बहुविध पुष्पवर्ण की गन्धा से सुगन्धित, बहुत से प्रशंसनीय रत्नों से परिपूर्ण, कार्षापण रजत स्वर्ण कांस्य तथा बहुमूल्य पत्थरों से परिपूर्ण, बहुमूल्य रत्नों के चमकते खजाने की भाँति सभी प्रकार के धन-धान्य-उपकरण भण्डार से परिपूर्ण, अनेक प्रकार के खाद्य भोज्य तथा पेय पदार्थों से युक्त, उत्तरकुरु के समान उपजाऊ तथा 'आलकमन्दा' देवपुर के समान शोभासम्पन्न था।

मिलिन्द की नागसेन से भेंट

तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो बड़ी भारी सेना के साथ 'संखेय्य' परिवेण में आ, जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे वहाँ गया। उस समय आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सम्मेलनगृह में बैठे थे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को देखा। दूर ही से देख देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्री, इतनी बड़ी यह परिषद् किसकी है ?"

"महाराज, आयुष्मान् नागसेन की यह परिषद् है।"

तब आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को दूर ही से देख राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तम्भित हो गए और रोमांच हो आया।

गैंडों से घिरे हाथी की तरह, गरुड़ों से घिरे साँप की तरह, अजगर से घिरे स्यार की तरह, महिषों से घिरे भालू की तरह, साँप से पीछा किए गये मेंढक की तरह, सिंह से पीछा किए गए हरिण की तरह, सँपेरे के हाथों में आए साँप की तरह, बिल्ली से डर दिखाये जाते हुए चूहे की तरह, ओझा से बाँधे गये भूत की तरह, राहु से ग्रसित चन्द्रमा की तरह, पेटी में बन्द किए गये साँप की तरह, पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह, जाल में पड़ी मछली की तरह, हिंसक पशुओं से भरे जंगल में भटके मनुष्य की तरह, वैश्रवण के प्रति अपराध किए यक्ष की तरह तथा आयु समाप्त हुए देवता की तरह राजा मिलिन्द घबड़ा कर, चिन्तित, उदास तथा खिन्न हो गया। "मुझे यह कहीं हरा न दे" ऐसा शंकित हो उसने देवमन्त्री से कहा—

"देवमन्त्री आप मुझे मत बतावें कि आयुष्मान् नागसेन कौन हैं। बिना बताये ही मैं उन्हें जान लूँगा।"

नागसेन तथा मिलिन्द के संलाप का नमूना

"भन्ते नागसेन यदि कोई पुरुष नहीं है तो कौन आप को चीवर, भिक्षा शयनासन तथा ग्लानप्रत्यय देता है? कौन उसका उपभोग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्य-मार्ग के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है? कौन प्राणातिपात करता है? कौन चोरी करता है? यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य, न पाप और पुण्य कर्मों का कोई कर्ता है, न कोई करानेवाला है, न कोई फल है। भन्ते नागसेन यदि कोई आप को मार भी डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। तब आपके कोई आचार्य भी नहीं हुए, कोई उपाध्याय भी नहीं हुए, आप की उपसम्पदा भी नहीं हुई।

आप कहते हैं कि आपके सब्रह्मचारी आप को नागसेन के नाम से पुकारते हैं तो यह 'नागसेन' क्या है? भन्ते क्या ये केश नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज।"

"ये रोयें नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज।"

"ये नख दाँत चमड़ा मांस स्नायु, हड्डी मज्जा वक्क' हृदय यकृत, क्लोमक, तिल्ली फुप्फुस आँत पतली आँत पेट, पाखाना पित्त कफ पीब लहू पसीना मेद आँसू, चर्बी लार नाक लसिका दिमाग आदि नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज।"

"तो क्या आपके रूप वेदना संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान में से कोई नागसेन है?"

"नहीं महाराज।"

"भन्ते तो क्या रूप वेदना संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान सभी एक साथ नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज ।"

"तो भन्ते क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन है ?"

"नहीं महाराज ।"

"भन्ते मैं आप से पूछते-पूछते थक गया किन्तु नागसेन क्या है, इसका पता नहीं लगता । तो नागसेन क्या केवल शब्दमात्र है । आखिर नागसेन है कौन ? भन्ते आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है ।"

आयुष्मान् नागसेन ने उससे रथ-सम्बन्धी प्रश्न पूछकर ही उसकी इस शंका का समाधान किया—

"महाराज आप पैदल चलकर यहाँ आये या किसी सवारी पर ?"

"भन्ते मैं पैदल नहीं प्रत्युत रथ पर यहाँ आया ।"

"महाराज यदि आप रथ पर आये तो मुझे बतायें कि आपका रथ है ? क्या दण्ड रथ है ?"

"नहीं भन्ते ।"

"तो क्या अक्ष, चक्र, रथपञ्जर, रथ की रस्सियाँ, लगाम, चाबुक आदि में से कोई एक रथ है ?"

"नहीं भन्ते ।"

"तो क्या ये सब मिलकर रथ है ?"

"नहीं भन्ते ।"

"तो रथ क्या इन सबसे परे है ?"

"नहीं भन्ते ।"

"महाराज मैं आप से पूछते-पूछते थक गया किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्दमात्र है ? आखिर वह रथ क्या है ? महाराज आप झूठ बोलते हैं कि रथ है नहीं । महाराज सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के आप सबसे बड़े राजा हैं तो भला किससे डरकर आप झूठ बोलते हैं ?"

"भन्ते नागसेन, मैं असत्य नहीं बोलता । ईषा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'रथ' ऐसा नाम कहा जाता है ।"

"महाराज, बहुत ठीक आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी प्रकार मेरे केश आदि के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'नागसेन' ऐसा नाम कहा जाता है, किन्तु परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वजा ने भगवान् के सामने कहा था—

"जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' यह संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से एक 'सत्व' (=जीव) समझा जाता है।"

भदन्त नागसेन द्वारा प्रस्तुत की गयी 'अनात्मवाद' की यह व्याख्या बेजोड़ है।

वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले को व्यक्त करते हुए नागसेन ने कहा कि जो उत्पन्न होता है वह न वही होता है और न अन्य। इसे उन्होंने उदाहरण देकर समझाया कि पुरुष जब बच्चा होता है और जब क्रमशः वह तरुण तथा बूढ़ा हो जाता है तब इन सब अवस्थाओं में क्या वह एक ही होता है। यदि वह अन्य होगा तो उसके माता पिता आदि नहीं होंगे और यदि वही होगा तो उसका सारा व्यापार तथा व्यवहार खाट पर चित लेटनेवाले बच्चे की ही भाँति होना चाहिए। अतः अपनी स्थापना—वह न वही न दूसरा है की व्याख्या उन्होंने दीपक के जलने आदि की उपमाओं को उपस्थित करके किया।

भारत में रचित पालि ग्रन्थ और भी हो सकते हैं, पर उत्तरी भारत का उपलब्ध अन्तिम ग्रन्थ 'मिलिन्दपञ्ह' ही है। यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसमें नागसेन के साथ हुए मिलिन्द के अनेक समवादों का उल्लेख है।

इस ग्रन्थ में पूर्वभाग, लक्षण-प्रश्न, विमतिच्छेदन-प्रश्न, मेण्डक-प्रश्न, अनुमान-प्रश्न तथा उपमा-कथा प्रश्न आदि छह परिच्छेद हैं।

— • —

द्वितीय खंड

सिंहल में पालि

पहला अध्याय

१ बुद्धघोष युग

कंठस्थ बौद्ध ग्रन्थों की शुद्धता तथा सुरक्षा के लिए दूसरी संगीति के सवा सौ वर्ष बाद तीसरी संगीति अशोक के समय में पटना में हुई। इसी के निर्णयानुसार अशोक के पुत्र स्थविर महेन्द्र ई० पू० तीसरी सदी में सिंहल आये और यह देश काषायधारी भिक्षुओं से आलोकित हो गया। पर पिटक की परम्परा अभी भी मौखिक ही थी और यह सूत्रधरों विनयधरों तथा मातिकाधरों के हृदय में निहित था। ऐसी विशाल सामग्री का हृदय जैसे कोमल भंगुर पात्र में सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन है अतएव सिंहलराज वट्टगामणि के समय (ई० पू० प्रथम शताब्दी) में त्रिपिटक को लिपिबद्ध करने का निर्णय किया गया और इसके अनुसार 'आलोक-विहार' में त्रिपिटक तालपत्रों पर लिखा गया। उस समय उत्तर भारत में भी तालपत्र पर ग्रन्थ लिखे जाते थे पर वहाँ इस कार्य में लकड़ी की कलमी तथा स्याही का प्रयोग किया जाता था। दक्षिण भारत की प्रणाली इससे कुछ भिन्न थी। वहाँ पर ताल के पत्र को लोहे की सुई से कुरेदकर उस पर स्याही की कूची फेर दी जाती थी। सिंहल ने इसी दक्षिणी ढंग को स्वीकार किया और आलोक-विहार में भी यही प्रणाली अपनायी गयी जो हाल तक वहाँ चलती रही।

मूल विनय तथा अभिधम्म को पढ़ाते समय आचार्य परम्परा के अनुसार जो व्याख्या करते थे वही सिंहली अट्ठकथाओं के रूप में प्रस्तुत हुई और इन्हें भी लिपिबद्ध किया गया था। ईसवी सदी के प्रारम्भ होते ही सिंहल थेरवाद का गढ़ हो गया। वहाँ पर लिपिबद्ध किये गये पिटक-ग्रन्थ बाहर भी पहुँच जाते थे पर सिंहल-अट्ठकथायें सिंहल प्राकृत भाषा में थीं और शायद ही उनमें से कुछ दक्षिण या उत्तर भारत में पहुँची हों। उनकी भाषा

सिंहल-प्राकृत थी जो तीसरी-चौथी सदी के सिंहल शिलालेखों में मिलती है। प्राकृत होने से यह बहुत कठिन नहीं थी। समयानुसार पीछे यह माँग होने लगी कि इन्हें यदि मागधी (पालि) में कर दिया जाय तो बड़ा लाभ हो क्योंकि इससे इनके प्रयोग का क्षेत्र विस्तृत हो जाता। इसी आवश्यकता की पूर्ति बुद्धघोष बुद्धदत्त तथा धर्मपाल आदि आचार्यों ने की। बुद्धघोष इन्हीं सिंहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करने के लिए ही सिंहल गये थे। इस प्रकार से इन आचार्यों द्वारा रचित अट्ठकथाओं के आधार-स्रोत ये सिंहल-अट्ठकथाएं ही हैं। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी विभिन्न अट्ठकथाओं में इनका निर्देश भी किया है।

बुद्धघोष से पहले 'दीपवंस' नामक सिंहल का इतिहास ग्रन्थ लिखा जा चुका था। 'खुद्दकसिक्खा' तथा 'मूलसिक्खा' नामक ग्रन्थों के भी लिखे जाने की बात कही जाती है। इन दोनों का उल्लेख 'पीतमल्ल' व 'महाविहार' के अभिलेख में प्राप्त होता है। 'खुद्दकसिक्खा' के लेखक 'धम्मसिरि' स्थविर (सिंहल) माने जाते हैं पर वास्तविक रूप में पालि साहित्य का पुनरारम्भ आचार्य बुद्धघोष ही करते हैं। इनके समकालिक अन्य अट्ठकथाकारों (बुद्धदत्त तथा धर्मपाल) आदि के सम्बन्ध में इसी खण्ड के अन्तिम अध्याय में विचार प्रस्तुत किया जायगा। नीचे बुद्धघोष के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है—

(१) बुद्धघोष—महाबोधि (बोधिवृक्ष) के समीप ही 'घोरख-खेटक' के ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था। प्रारम्भ में ये ब्राह्मण शिल्प तथा विद्या वेदों में पारंगत हुए और रैवत स्थविर के सम्पर्क में आकर उनके भिक्षु शिष्य हो गये। यह काल प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक असंग तथा वसुबन्धु का था। नालन्दा अशोक के समय में सर्वास्तिवादियों का स्थान था और महायान का अनुगामी होते हुए भी अन्तिम समय तक (तेरहवीं सदी) वहाँ पर सर्वास्तिवादी विनय ही मान्य था अर्थात् यह आधा सर्वास्तिवादी था। इस प्रकार संभवतः बुद्धघोष के समय में मगध में सर्वास्तिवाद का प्रचार था। परन्तु रैवत स्थविर-जैसे थेरवादी भी वहाँ थे। उनके सम्पर्क

में आकर इन्होंने त्रिपिटक का अध्ययन किया तथा सर्वप्रथम 'ञाणोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की। त्रिपिटक के अध्ययन की तीव्र जिज्ञासा का प्रमाण-स्वरूप ग्रन्थ 'धम्मसंगणि' पर इनके द्वारा रचित 'अट्ठसालिनी' नामक अट्ठकथा है। बाद में सम्पूर्ण त्रिपिटक पर इन्होंने एक संक्षिप्त अट्ठकथा प्रस्तुत करने का विचार किया। पर इसके बारे में इनके गुरु ने यह कहा—"तुम्हारा यह प्रयास अधूरा ही है। यदि लिखना है तो सिंहल जाओ। वहाँ के महाविहार-निकाय में त्रिपिटक पर सिंहली भाषा में अट्ठकथाएं हैं। उनको मागधी (पालि) में करो।" बुद्धघोष इसी उद्देश्य से सिंहल पहुँचे। ऐसी प्रसिद्धि है कि समुद्र में आते समय नाव पर ही बुद्धदत्त से उनकी मुलाकात हुई। बुद्धघोष ने जब अपना उद्देश्य उन्हें बतलाया तो उन्होंने साधुकार देते हुए कहा—"मैं तो इसे पूर्ण करने की अवस्था में नहीं हूँ पर अपनी कृतियों को तुम मेरे पास भेजना मैं उनका संक्षेप लिखूँगा।" कहते हैं कि विनय-अट्ठकथा को देखकर उन्होंने 'विनयविनिच्छय' नामक ग्रन्थ लिखा।

पर बुद्धघोष उत्तर भारत से सीधे सिंहल नहीं आये। कांची आदि के विहारों में उन्होंने वर्षावास किया था जिसका उल्लेख अपनी अट्ठकथाओं में उन्होंने किया है। ऐसा सम्भव है कि द्रविड़ प्रदेश जैसे थेरवाद के गढ़ में उन्हें जब अट्ठकथा-सम्बन्धी पूरी सामग्री न मिली हो तभी उन्होंने सिंहल का रास्ता लिया।

महा-महेन्द्र के समय से ही अनुराधपुर का 'महाविहार' प्रख्यात था। वहाँ पहुँचने पर महाविहार के भिक्षु ऐसे-वैसे के सामने अपने पुस्तकालय का द्वार थोड़े ही खोल सकते थे। अतः प्रारम्भ में उन्होंने बुद्धघोष की योग्यता की परीक्षा करने के लिए निम्नलिखित प्रसिद्ध गाथा व्याख्या के लिए प्रस्तुत की—

"अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटये जटं॥

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञञ्च भावयं ।
आतापी निपको भिक्खु सो इमं विजटये जटं ॥" ति ।

बुद्धघोष ने उत्तर-स्वरूप इस पर 'विसुद्धिमग्ग' जैसे गम्भीर एवं विशाल ग्रन्थ को लिखकर प्रस्तुत किया जिसमें बौद्ध-दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त शील, समाधि तथा प्रज्ञा की विस्तृत विवेचना है ।

सिंहल अट्ठकथाओं की भाषा सिंहली थी जो आज की सिंहली और हिन्दी जितना अन्तर नहीं रखती थी। वह एक प्राकृत थी और सम्भवतः द्रविड़ प्रदेश में रहते हुए बुद्धघोष उससे परिचित हो चुके थे। अस्तु उसे पालि में अनूदित करना उतना ही सरल था जितना कि पालि का संस्कृत में अनुवाद करना। इन प्राचीन सिंहल अट्ठकथाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें से सुत्तपिटक की अट्ठकथा 'महाअट्ठकथा' सारे निकायों पर थी और 'कुरुन्दी' एवं 'महापच्चरि' क्रमशः विनय तथा अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाएँ थी। बुद्धघोष ने इनके अतिरिक्त 'अन्धकअट्ठकथा' और 'संखेपअट्ठकथा' से भी सहायता ली थी। बुद्धघोष का साहित्य विशाल है—

(१) ञाणोदय
(२) विसुद्धिमग्ग
(३) विनय-अट्ठकथा — समन्तपासादिका
(४) पातिमोक्ख ,, — कङ्खावितरणी
(५) दीघनिकाय ,, — सुमङ्गलविलासिनी
(६) मज्झिमनिकाय — पपञ्चसूदनी
(७) संयुत्तनिकाय ,, — सारत्थप्पकासिनी
(८) अङ्गुत्तरनिकाय — मनोरथपूरणी
(९) खुद्दकनिकाय के
'खुद्दकपाठ' तथा
'सुत्तनिपात' की
अट्ठकथा — परमत्थजोतिका
(१०) जातक-अट्ठकथा — जातकट्ठकथा (परमत्थजोतिका)

(११) धम्मसंगणि „ —अट्ठसालिनी
(१२) विभङ्ग „ —सम्मोहविनोदनी
(१३) 'धम्मसंगणि' तथा
'विभङ्ग' को छोड़कर
सम्पूर्ण अभिधम्म की अट्ठकथा —पञ्चप्पकरणट्ठकथा

(१४) धम्मपद अट्ठकथा —धम्मपदट्ठकथा

इनमें से 'ञाणोदय' अब प्राप्य नहीं है। अट्ठकथाएं कई देशों में कई लिपियों में प्रकाशित हैं। पर भारत में यह कार्य कम हुआ है। 'विसुद्धिमग्ग' का हिन्दी में अनुवाद भी हो चुका है। अट्ठकथाएं अभी अनूदित नहीं हैं केवल जातकअट्ठकथा मात्र का अनुवाद हो पाया है।

'विसुद्धिमग्ग' में 'अन्तो जटा बहि जटा' वाली गाथा का उत्तर प्रारम्भ में ही देकर ग्रन्थ को उसकी व्याख्या स्वरूप उपस्थित किया गया है। 'समन्तपासादिका' सम्भवतः उनकी प्रथम रचना है। इसे उन्होंने बुद्धश्री स्थविर की प्रार्थना पर लिखा था। 'सुमङ्गलविलासिनी' संघ-स्थविर दाठानाग की प्रार्थना पर लिखी गयी थी।

(२) दीपवंस (ग्रन्थ)—इसके लेखक का नाम अज्ञात है। संघ के इतिहास लिखने का शायद यह पहला प्रयास है। आदिकाल (विजय के आगमन) से राजा महासेन (३२५–३५२ ई०) तक का इसमें सिंहल का इतिहास है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ किसी के द्वारा चौथी सदी के मध्य में लिखा गया था। इसमें सभी प्राचीन परम्पराएँ सिंहल अट्ठकथाओं से ली गयी हैं। 'दीपवंस' की भाषा उतनी मंजी नहीं है जितनी कि 'महावंस' की। 'महावंस' में भिक्षुणियों का उल्लेख नहीं है पर 'दीपवंस' में उन्हें विशेष महत्त्व दिया गया है। चौथी या पाँचवीं सदी में ही सिंहल की भिक्षुणी 'देवसारा' ने चीन में जाकर भिक्षुणी-संघ स्थापित किया, जो वहाँ अब भी जीवित है पर सिंहल में दसवीं सदी में वह उच्छिन्न हो गया। 'दीपवंस' की वर्णन-शैली इस प्रकार है—

(लंका) द्वीप में बुद्ध उनकी शरीर धातुएँ तथा बोधि एवं संघ और आचार्यवाद के सहित शासन (बौद्ध धर्म) का आगमन तथा नरेन्द्र (विजय) के आगमन आदि की परम्परा का मैं वर्णन करूँगा सुनें—

प्रीति तथा प्रमोदोत्पादक मनोरम तथा अनेक आकार से सम्पन्न इस वृत्तान्त को दत्तचित्त होकर लोग सुनें।

—परिच्छेद १

दूरदर्शी मोग्गलिपुत्त' ने दिव्य दृष्टि से सीमान्त देशों में भविष्य में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा देखकर 'मज्झन्तिक' आदि स्थविर को चार अन्य साथियों के साथ पड़ोसी देशों में शासन की प्रतिष्ठा तथा मानवों को आलोकित करने के लिए भेजा।

—परिच्छेद, ८

नरेन्द्र की प्रार्थना पर महायशी महेन्द्र स्थविर ने उपयुक्त उद्यान महामेघवन में प्रवेश किया। सोने के घड़े को लेकर महीपति ने यह कहते हुए उस उद्यान को संघ को दान कर दिया—मैं महामेघवन नामक इस उद्यान का चारों दिशाओं के संघ को दान में देता हूँ।

—परिच्छेद, १३

लंका द्वीप का परिमाण

बत्तीस योजन लंबा और अट्ठारह योजन चौड़ा तथा सौ योजन की परिधि वाला (यह लंका द्वीप) सागर से घिरा है।

यह मेरु लंका द्वीप सर्वत्र रत्नों की खान है तथा नदी सर, पर्वत और वनों से युक्त है।

—परिच्छेद १७

लंका में भिक्षुणियाँ

यशस्वी नरेश अभय की प्रार्थना पर पश्चात अनुराधपुर में भिक्षुणियों ने विनय का पाठ किया। तथा पाँच निकाय एवं सात अभिधर्म के प्रकरणों का भी पाठ किया।"

—परिच्छेद १८

त्रिपिटक लिपिबद्ध करना

इस प्रकार राजा 'वट्टगामणि अभय' ने बारह वर्ष तथा आदि से पाँच मास तक राज्य किया।

पूर्वकाल में महामति भिक्षु तीनों पिटकों की पालि (मूल पिटक) और उनकी अट्ठकथाएँ, जिन्हें वे मुख-परम्परा द्वारा (लंकाद्वीप में) लाए थे,

उन्हें प्राणियों की (स्मृति) हानि को देखकर, एकत्रित हो, भिक्षुओं ने धर्म की चिरस्थिति के लिए पुस्तकों के रूप में लिपिबद्ध किया।

—परिच्छेद २०

(२) महानाम—पाँचवीं सदी में इस कवि-इतिहासकार ने 'महावंस' नामक ग्रन्थ को लिखा। सिंहल के इस इतिहास ग्रन्थ की तुलना में भारत वाले बहुत कम तत्कालीन ग्रन्थ मिलेंगे। इसमें महासेन के शासन-काल (३२५–३५२ ई०) तक का इतिहास दिया हुआ है। आगे चलकर अन्य विद्वानों को यह ग्रन्थ इतना पसन्द आया कि इसके अगले भागों को भी उन्होंने इसी नाम से लिखा। धर्मकीर्ति ने पराक्रमबाहु के शासन-काल (१२४०–१२७५ ई०) में इसे परिवर्धित करके अपने समय तक पहुँचाया। बीच में किसी और ने इसमें परिवर्तन किया और 'तिब्बोटुवावे सुमङ्गल' ने इसे १७५८ ई० तक तथा 'हिक्कडुवे सुमङ्गल' ने अंग्रेज़ों के शासनारम्भ (१८१५ ई०) तक इसे पहुँचाया।

महावंस की शैली को द्योतित करनेवाले निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ग्रन्थ का लक्ष्य

"प्राचीन विद्वानों ने कहीं अति विस्तारपूर्वक, कहीं अति संक्षिप्त तथा (कहीं) अनेक पुनरुक्तियों के साथ इसकी रचना की थी।

उन दोषों से वर्जित, ग्रहण तथा धारण करने में सहज, प्रसाद तथा संवेग उत्पन्न करने वाले (महावंश को) तुम सुनें।'

—परिच्छेद १

---

१ अधिक उदाहरणों के लिए मेरी 'पालि काव्यधारा' देखें।

कुवेणी का त्याग

उद्धत युवराज तरुण विजय अपने पाँच सौ साथियों के साथ निर्वासित हो ईसा पूर्व पाँचवीं सदी में लंका पहुँचा। उस समय कोल-संथाल की जाति के वेद्दा लोग लंका के निवासी थे। उनके सरदार की लड़की कुवेणी विजय के प्रेमपाश में बँधी। उसने अपने लोगों को पराजय करायी। पर अधिपति होने पर विजय ने सभ्य तथा सुसंस्कृत जाति की पुत्री को प्राप्त करने के लिए कुवेणी को छोड़ दिया। इसे कवि-इतिहासकार ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

(प्रथम निकाय से)

"कुवेणी राजपुत्र के साथ सर्वाभरण से भूषित होकर गयी और वृक्ष के नीचे उसने महार्घ शय्या तैयार की।

तब विजय प्रमुख आदि (विजय को प्रमुख बनाकर उसके अनुयायी आदि) नाव से भूमि पर उतरकर, थके हुए होकर बरछी को हाथ से पकड़ कर बैठ थे।

विजय उस (कुवेणी) के साथ सहवास करके सुखपूर्वक शय्या पर सोया और कनात डालकर सारे भृत्य भी पड़ गये।

रात को बाजे के शब्द तथा गीत के रव को सुनकर साथ में सोयी हुई यक्षिणी से विजय ने पूछा—'यह क्या शब्द है?'

कुवेणी ने उत्तर दिया—'सारे यक्षों को मरवाकर राज्य स्वामी को देना है। मनुष्य के साथ वास करने के कारण यक्ष मुझे मार डालेंगे।

यहाँ विवाह का मंगल महोत्सव है वहीं यह शब्द है यह बड़ा समागम है। आज ही यक्षों को मार डालो फिर यह नहीं कर सकोगे।

पांड्य राजकुमारी जब विजय के पास नयी दुलहिन बनकर आयी तो उसने कुवेणी से कहा—अब तुम दोनों बच्चों को छोड़कर जाओ। मनुष्य अमनुष्य से सदा भय खाते हैं।

यक्षिणी ने कहा—'मत चिन्ता करो—एक सहस्र शुल्क से मैं तुम्हारी बलि पूर्ण करूँगी।

बार-बार प्रार्थना कर (हताश हो) दोनों बच्चों को लेकर वह लंका पुर गयी ।

बच्चों को बाहर बैठाकर वह नगर में घुसी । उस यक्षिणी को पहचानकर तथा उसे मानुष समझकर यक्ष क्षुब्ध हो गये (और उनमें से) एक साहसी ने यक्षिणी को एक ही हाथ में मार गिराया ।

कुवेणी का मामा नगर से बाहर निकला । बच्चों को देखकर उसने पूछा—'तुम किसके बच्चे हो ?' 'कुवेणी के' यह सुनकर कहा—तुम्हारी माँ यहाँ पर मार दी गयी तुम्हें भी देखकर मार डालेंगे (अतः) शीघ्र ही भाग चलो ।"

— • —

दूसरा अध्याय

२ अनुराधपुरयुग

अनुराधपुर सिंहल की प्रथम राजधानी रहा। यहीं पर अशोकपुत्र महेन्द्र ने तीसरी सदी ई० पू० में आकर 'महाविहार' की प्रतिष्ठा की। यद्यपि द्रविड़ देश तथा इसके बीच में समुद्र स्थित था पर बीस मील का यह छिछला समुद्र द्रविड़ों को नहीं रोक सका। जब द्वीप खाली पड़ा था तो ये वहाँ बसने नहीं आये। पर बाद में इनका ध्यान इस ओर गया जब गुजरात के विजय और उसके साथी वहाँ पहुँच गये और मगध आदि से भी हजारों परिवार वहाँ पर आकर बस गये। इस प्रकार द्रविड़ परिवार की भाषाओं से घिरी रहने पर भी सिंहल की भाषा आर्य परिवार की ही है।

इसमें भी विचित्र बात यह है कि इसका उत्तर भारत की जिस बोली से अधिक साम्य है वह भोजपुरी है। भोजपुरी को इसके बोलनेवाले उन्नीसवीं सदी में बर्मा, मलाया, फिजी तथा ट्रिनीडाड आदि में अपने साथ ले गए। सम्भवतः इस प्रदेश के लोग ईसा के पूर्व शताब्दियों में भी सिंहल में आते रहे हों। वैसे भोजपुर, बंगाल तथा गुजरात आदि स्थानों के लोग यहाँ आ बसे।

इनके सिंहल में आ जाने पर तथा बस जाने पर ही द्रविड़ों का ध्यान इधर गया और वे लोग आक्रमण करने लगे। यह संघर्ष ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अनुराधपुर समुद्र-तट से दूर था पर चोळ तथा पाण्ड्यों ने आकर यहाँ भी अपनी ध्वंसलीला दिखायी।

इस युग में वंश तथा अट्ठकथा साहित्य के निर्माण के साथ कुछ कथा साहित्य की भी रचना हुई। इनका संक्षिप्त परिचय यह है —

(१) अनागतवंश—यह ग्रन्थ इसी कोटि में आता है और इसमें

भावी बुद्ध मैत्रेय का वर्णन है। इसके कर्ता अज्ञात ही हैं। इसमें अनुराधपुर का भी वर्णन चित्रित है—

प्रसाद—"विविध रत्नों की भूमि अनेक चित्रों से रम्य सुगन्ध पुष्पों की माला के समान नृत्य-गीत से अभिराम सुन्दर युवतियों से पूर्ण अनेक प्रकार की शोभा से आकीर्ण रत्नमय विमान (देव प्रासाद) की ही भाँति उनका निवास-स्थान था।

वहाँ की किन्नर-किन्नरियाँ मनोरमा थीं गायन तथा अंगनाएँ भी मनोरम थीं, नृत्य तथा गीत आदि भी मनोरम थे और अनेक मनोरम प्रसंगों का वहाँ पर प्रवर्तन था।

(२) धम्मनन्दी—अनुराधपुर काल में ही धम्मनन्दी हुए, जिन्होंने 'सिंहलवत्थुपकरण' नामक पुस्तक लिखी। इसमें प्रस्तुत की सभी कथाएँ सुन्दर हैं तथा शैली भी प्रसाद गुण से युक्त है—

"ऐसा सुना जाता है—सुसमृद्ध अन्नों से समृद्ध सम्पूर्ण शस्य-सम्पत्ति से नित्य युक्त सुन्दर भिक्षुओं से बहुल जनपदों में माला के समान सौराष्ट्र जनपद में अविमन्तपीम नामक पर्वत था। उस पर्वत की एक गुफा में छह अभिज्ञाओं को प्राप्त किये महा ...तिष्य एक अर्हत् रहते थे। दूसरा एक मत्तराज भी उसी पर्वत के आश्रय से रहता था। उसे देखकर किसी वनचर ने उज्जैन के राजा से कह दिया—देव इस प्रकार के लक्षणों से युक्त महाराज के योग्य हाथी अरण्य में है'। राजा ने सुनते ही उस हाथी को पकड़वा लिया ...स्थविर राजा के पास हाथी को छुड़वाने के लिए उज्जैन आये। राजा ने उनकी याचना पर हाथी को छोड़ दिया।

—•—

तीसरा अध्याय

२. पोलन्नरुव युग

द्रविड़ों के आक्रमणों के कारण सिंहल की राजधानी इस समय देश के सबसे महत्त्वपूर्ण तथा सांस्कृतिक केन्द्र अनुराधपुर से हटाकर पहाड़ से दूर 'पोलन्नरुव' में लायी गयी। पोलन्नरुव अनुराधपुर की ही भाँति बड़ा था तथा विशाल इमारतों से आकीर्ण था। सिंहल के इतिहास का स्वर्णिम युग यहीं पर व्यतीत हुआ। इसी काल में पालि साहित्य की भी अभिवृद्धि हुई और उत्तम टीका ग्रन्थ तथा व्याकरणपरक ग्रन्थों का निर्माण इसी युग में हुआ। सिंहल के राजा महापराक्रमबाहु ने भी इसे सुशोभित किया जिसकी नौवाहिनी द्रविड़ देश के चोलों तथा पांड्यों के भाग्य का फैसला करती थी। पूरब में उसकी धाक बर्मा तथा सुमात्रा तक थी। उत्तम सेनानायक तथा शासक होने के साथ ही वह बहुत बड़ा विद्याव्यसनी था और अपने अनुरूप ही उसे 'सारिपुत्त' सङ्घराज-जैसे गुरु भी मिल गये जिनके चारों ओर उस समय के प्रख्यात पंडितों की मण्डली विद्यमान थी।

(१) सारिपुत्त—अट्ठकथाएं बन चुकी थीं। इन पर टीका प्रस्तुत करने का कार्य सारिपुत्त ने किया। ऐसी प्रसिद्धि है कि उन्होंने सभी अट्ठकथाओं पर टीकाएं लिखीं परन्तु अब सब नहीं मिलतीं।

संघ की एकता

वट्टगामणि ने बाद में उन तीर्थिकों के आराम को बौद्ध स्तूप में परिवर्तित कर दिया जो उसकी हार पर प्रसन्न हुए थे। वहीं पर 'अभयगिरि' के नाम से दूसरा महाचैत्य बना। इस अभयगिरि ने महाविहार की परम्परा को तोड़ने का प्रयत्न किया और फूट महापराक्रमबाहु के समय तक चली आयी। इस प्रकार यह फूट बारह सौ वर्षों तक चलती रही और अन्त में 'सारिपुत्त' के गुरु 'कस्सप' के समय में ही इसको तोड़ने में सफलता मिली। इसका श्रेय

इन्हीं 'सारिपुत्त' को देना चाहिए। पर इसके थोड़े ही दिन बाद द्रविड़ देश के निवासी आचार्य 'कस्सप चोळिय' ने इनकी एक टीका पर आक्षेप किया कि इसमें अभयगिरिकों के मतानुसार कोई बात लिखी गयी है। सारिपुत्त के गुरु कस्सप बड़े ही शील-सम्पन्न तथा त्यागी पुरुष थे। इनके सम्बन्ध में 'समन्तपासादिका' की टीका में इन्होंने यह उद्गार व्यक्त किया है—

"सिंहलनरेन्द्र पराक्रमबाहु ने जिनकी सहायता लेकर सम्प्रदायों के भेद को मिटा कर धर्म का संशोधन किया, जो ताम्रपर्णी द्वीप में धर्म के उदय को करने वाले हैं, जो धर्मरूपी आकाश में चन्द्रमण्डल के समान हैं, जो प्रतिपत्ति के आधीन हैं तथा सदा ही अरण्यवासी हैं, जो संघ के पिता हैं तथा 'विनयपिटक' में सुविचारक हैं, जिनके आश्रय में रहते हुए मुझे धर्म-सम्बन्धी बुद्धि की प्राप्ति हुई, ऐसे महास्थविर काश्यप की मैं वन्दना करता हूँ।"

'सारिपुत्त' के नाम से अङ्गुत्तर की अट्ठकथाओं की टीकाएँ प्राप्त हैं, उन सबके सब स्वयं न लिखी हो सकने और सम्भवतः उन्हें उनके शिष्यों ने लिखा होगा और तत्पश्चात् गुरु ने उनका अवलोकन कर लिया होगा। ये संस्कृत के भी पण्डित थे और प्रमाणशास्त्र का पण्डित होने के कारण दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति के ग्रन्थों से भी परिचित होंगे। चान्द्र व्याकरण का उस समय सिंहल में भी प्रचार था और इसकी व्याख्या में भी 'सारिपुत्त' ने अपना योगदान किया तथा इस पर लिखी गयी 'रत्नमतिपञ्जिका' की 'पञ्जिकालंकार' नामक टीका प्रस्तुत की। इसका अब नाममात्र ही शेष है। 'पदावतार' के नाम से एक संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखा गया था। विनय पर इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पालिमुत्तकविनयविनिच्छय' है। 'महावंस' में इसे 'विनयविनिच्छय' कहा गया है।

'सारिपुत्त' के शिष्य 'सुमङ्गल महासामी' ने अपने गुरु के सम्बन्ध में 'विभाविनी टीका' के अन्त में लिखा है—

"गम्भीरशील दम-संयम द्वारा सन्तापित गुणाकर एवं जितेन्द्रिय भिक्षुओं के समूह द्वारा सम्मानित बुद्ध के वचनों के पण्डित तथा अनेक

लीलावती का विजयबाहु से ब्याह हुआ। उत्तर भारत के साथ सिंहल राजाओं का यही अन्तिम सम्बन्ध था।

उस समय सिंहल देश में भिक्षु-संघ भी उच्छिन्न-सा हो गया था। इसलिए विजयबाहु ने बर्मा के राजा अनुरुद्ध से इस सम्बन्ध में सहायता माँगी। वहाँ पर बर्मा के भिक्षु-संघ की सहायता से संघ की प्रतिष्ठा हुई तथा त्रिपिटक के पठन-पाठन का प्रारम्भ हुआ। ग्रन्थों के बारे में भी बर्मा से सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार विजयबाहु ने जिस प्रकार से चोळों के चंगुल से मुक्त कराकर सिंहल को स्वतन्त्र किया उसी प्रकार से भिक्षु-संघ की भी पुनः प्रतिष्ठा उनके द्वारा हुई। चोळ-आधिपत्य के समय अनुभूत अत्याचार की तीव्रता के कारण सिंहल के तीन बौद्ध निकायों (महाविहारीय अभयगिरिक तथा जेतवनीय) में आपस में जो कटुता थी तथा जो मतभेदादि थे उनकी उग्रता में ह्रास हुआ और इसने सारिपुत्त संघराज को इन तीनों में एकता स्थापित कराने में प्रचुर सहायता की। चोळ-शासनकाल में उस देश से ब्राह्मण तथा बौद्ध पण्डित सिंहल में आये और इससे वहाँ पर संस्कृत भाषा के अध्ययन का प्रोत्साहन मिला। बौद्ध धर्म की स्थिति उस समय चोळ देश में भी थी और इससे शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी आदान-प्रदान हुआ। चोळ राजा सम्भवतः बौद्ध धर्म के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित करते थे। सिंहल तथा चोळ देश दोनों स्थानों में एक ही स्थविरवाद प्रचलित था और चोळ राजाओं की सहानुभूति ने सिंहल के अत्याचार को कम करने में भी सहायता दी होगी।

(२) मोग्गल्लान (व्याकरणकार)—कच्चायन व्याकरण पहले से ही मौजूद था। परम्परा बुद्धघोष के समय में भी इसे विद्यमान मानती है। प्रारम्भिक व्याकरण होने के कारण उसमें व्याकरण के कितने ही नियम छूट गये थे। इधर संस्कृत व्याकरण का और उसमें भी चान्द्र व्याकरण का प्रचार बढ़ा तो उसके ढाँचे पर पालि के एक पूर्ण व्याकरण के निर्माण की आवश्यकता हुई और इसकी पूर्ति मोग्गल्लान ने अपने इस व्याकरण को लिखकर की जिसमें सूत्र वृत्ति तथा उणादिपाठ आदि हैं। इसमें

८१७ सूत्र हैं। साथ ही लेखक द्वारा इस पर 'पञ्चिका' भी प्रस्तुत की गयी है। व्याकरण के अन्त में उन्होंने लिखा है—

"जिस राजा के प्रभाव से कुबुद्धिनाम बुरे सिंधुओं द्वारा सर्वथा विहीन किया गया ... मुनिराज का धर्म और से मुक्त होकर पूर्ण चन्द्र के संयोग से समुद्र की भाँति बढ़ रहा है, उस राजा शक्ति-गुण-समन्वित मनुवंश-ध्वज स्वरूप पराक्रमबाहु के लंका द्वीप में शासन करते समय यतिशील श्रीमान् स्थविर मोग्गल्लान ने जिस ग्रन्थ को सुबोध असंदिग्ध तथा स्पष्ट बनाया।"

(३) मोग्गल्लान (कोशकार)—'अभिधानप्पदीपिका' कोश ग्रन्थ के रचयिता तथा व्याकरणकार ये दोनों मोग्गल्लान स्थविर एक ही हों पर इसमें भी सन्देह किया जाता है। यद्यपि उनकी कृतियों में ऐसा कोई संकेत नहीं है। अन्त इस कोश में उल्लेख पड़ता है—

"लंका में गुणभूषण तेजस्वी विजयी पराक्रम में सिंह के समान पराक्रमबाहु नामक भूपाल हुए। उन्होंने चिरकाल से तीन निकायों में बँटे हुए भिक्षु-संघ को सम्यक् रूप से एक में करके सागर कीर्ति की भाँति संघ में सदा आदरवान् हो उसके लिए सहाय (भोजन आदि) प्रस्तुत किए जिससे सर्वदा असाधारण अनुग्रह को पाकर सब भी विद्वानों से गौरव पन्थागार पद को प्राप्त किया। उन्हीं के द्वारा बनवाए हुए प्रासाद, गोपुर आदि से विभूषित ... जेतवन नामक विहार में रहते समय शान्त स्वभाव श्रीमान् एवं सद्धर्म की चिरस्थिति की कामनावाले स्थविर 'मोग्गल्लान' ने इस 'अभिधानप्पदीपिका' को रचा।"

(४) धम्मकित्ति—ये 'सारिपुत्त' संघराज के प्रमुख शिष्य थे। शास्ता को नमस्कार करते हुए वे कहते हैं—

"जिनाज्ञा चार है पथ से दूरवर्ती तीनों लोक के प्रकाश-स्वरूप अमित ... को ... तथा असह्य का सहन करनेवाले अनन्त गोचर शास्ता को मैं नमस्कार करता हूँ।"

अपने काव्य ग्रन्थ 'दाठावंस' में उन्होंने दन्तधातु का इतिहास लिखा है। बुद्ध की यह धातु कलिंग में पूजी जाती थी। राजा की अनुमति से

उसकी पुत्री तथा जामाता इसे सिंहल ले आये यहाँ आज भी 'कैन्डी' में रखी है। 'दाठावंस' में पराक्रमशीला रानी लीलावती के शासनकाल में इस ग्रन्थ की रचना की थी। 'जिनालंकार' में संस्कृत का जितना प्रभाव विद्वानों पर पड़ा था उसकी छाप 'दाठावंस' में होनी ही चाहिए। पराक्रमबाहु के पश्चात् राजा बनानेवाले जो अमात्य हुए, उनमें सेनापति पराक्रम भी था जिसकी प्रशंसा करते हुए 'धम्मकित्ति' कहते हैं—

"काळकमपरवंश के विभूषण सिंहासन तथा जनता की समृद्धि चाहनेवाले पराक्रम सेनापति हैं जिन्होंने बुद्ध धर्म में श्रद्धावाली लीलावती को लंका देश की राजलक्ष्मी बनाया।

दन्तधातु को सिंहल में लानेवाली कुमारी हेममाला का वर्णन इस प्रकार से उन्होंने किया है—"राजा 'गुहसीव' सुनीत बुद्ध की उस धातु को अपने नगर में ले जाकर, अच्छी तरह सम्मान करते हुए तथा प्राणियों को *सुगति गमन के मार्ग पर योजित करते हुए, पुण्य का संचय करते हुए* विहार करता था।

उसकी (उस 'गुहसीव' राजा की) विकसित कमल के समान आँखों-वाली हंसकान्तागामिनी (अपने) मुख की आभा से शशांक का भी विजित करनेवाली हार के भार से भरी हुई तथा कुचों के भार से अवनताङ्गी हेममाला नामक कन्या थी।

सम्पूर्ण गुणों के निधान व कुल के अनुरूप तथा सुन्दर विमल कुल में उत्पन्न उस कुमार को जानकर राजा 'गुहसीव' ने उसे (उस राजपुत्र को) सम्मान के साथ अपनी कन्या दे दी।"

इसके पश्चात् इस दन्तधातु की समुद्र-यात्रा का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुसुम गन्ध से चूर्ण से आकीर्ण करों द्वारा नित्य ही कौतुकवश देवताओं द्वारा अनुगमन कराते हुए, मार्ग में दुर्गम गहन पहाड़ का पार होकर धीरे-धीरे वे ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह पर पहुँचे।

सिंहल जानेवाले जहाज पर अपने काम से जानेवाले वणिकों को उन्होंने देखा और तब वे सिंहल जाने के इच्छुक द्विजप्रवर शीघ्र ही जाकर नाविक से बोले तथा उनके मृदु-मधुर-वचन एवं साधु आचार से प्रमुदित हृदय हो उन्होंने उन्हें जहाज पर बैठा लिया ।

यात्रा लेकर समुद्र पर आरूढ़ होने से (वहाँ के) पवन तरंग की माला शान्त हो गयी । सुगन्धि-युक्त तथा मनोज्ञ उत्तर-दिशागामी (उत्तरदिग्या) वायु बहने लगी तथा दिशाएँ भी सर्वथा विमल एवं रुचिर शोभावाली हुईं ।

वह जहाज पवन से प्रकम्पित ध्वज तथा उच्च तरंग की पंक्ति तथा मत्स्यावलि को चीरता हुआ स्थविर की उस सिद्धि से एकाएक महापट्टन में उतरा ।

धातु को उत्तर विहार में ले जाकर प्रतिवर्ष उसकी पूजा करने के लिए कीर्ति श्री मेघ नामक उस सत्यप्रतिज्ञ राजा ने पूजागार का भवन बनवाया ।"

'सासनवंस' के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"जिसने चन्द्रगोमिन् रचित शब्दशास्त्र तथा उसकी पञ्जिका की प्रशस्त टीका रची तथा विनयट्ठकथा 'समन्तपासादिका' की बुद्धिप्रसादो-त्पादिका टीका की रचना की ।

षड् अङ्गुत्तर आगम (निकाय) की अट्ठकथा 'सम्मोहविनाशिनी' के भ्रम को नष्ट करने के लिए, जिसने उसकी टीका का निर्माण किया तथा योग में रत संयमी जनों के हितार्थ 'विनयसङ्ग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना ।

उस शान्त इन्द्रिय प्रतिपत्ति-परायण शान्त वृत्ति में निरत और समाधिस्थ सन्तोष आदि गुणों से विभूषित सम्बुद्ध के शासन के महान् उन्नति के कारण

सभी (शास्त्रों) में परम आचार्य पद को प्राप्त शास्त्रों में तथा दूसरे वादों में कोविद महास्वामी 'सारिपुत्त' के शिष्य तथा उनके विमल वंश में उत्पन्न

शुद्ध वंशजात करुणादि गुणों के उदय से युक्त तर्क तथा आगम

आदि में निपुण विशारद सर्वत्र प्रसारित चन्द्र-किरणजाल के समान अपनी कीर्ति प्रसारित करनेवाले एवं परीक्षक

अखिल श्रद्धावनवाले तथा नाम से 'धम्मकित्ति' राजगुरु ने श्रोताओं में प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला सर्वदर्शी के प्रभाव के दीपस्वरूप 'बुद्ध-दन्तधातु वंस' (इस इतिहास) की रचना की।

'महावंस' के द्वितीय भाग को लिखने वाले सम्भवतः यही 'धम्मकित्ति' हैं। इस ग्रन्थ को मूल लेखक ने सैंतीसवें परिच्छेद तक लिखा था और ये उसे आगे बढ़ाकर जम्बुद्रोणि (दम्बदेनिय) काल तक ले आये?

(५) बड़े छोटे वाचिस्सर—बड़े वाचिस्सर 'सम्भवतः' सारिपुत्त के समकालीन अथवा उनसे भी कुछ बड़े थे। उनकी रचनाएं हैं—'खेमप्पकरणटीका' 'उत्तरविनिच्छय' 'विनयविनिच्छय' 'रूपारूपविभाग' आदि।

छोटे वाचिस्सर 'सारिपुत्त' के शिष्य थे। इनकी कृति 'थूपवंस' है। यह 'महाबोधिवंस' के समान ही है। इसमें बुद्धधातु पर बने सिंहल के 'रत्नमालि' आदि स्तूपों का वर्णन है।

(६) मेधङ्कर उदुम्बरगिरि—यह 'सारिपुत्त' तथा वैयाकरण 'मोग्गल्लान' दोनों के शिष्य थे। इन्होंने 'विनयत्थसमुच्चय' नामक ग्रन्थ लिखा है।

धीरे-धीरे 'पोलन्नरुव' ने भी समुन्नति और सम्मान आदि में अनुराधपुर का ही स्थान ग्रहण कर लिया। सिंहल राजवंश का सम्बन्ध उस समय कलिंग के इलाके से हो गया था। और यह ख्याल किया जाता था कि विजय और उसके साथी कलिंग के थे। वस्तुतः विजय न तो कलिंग का था न बंगाल का। यह उनके आये हुए मार्ग से ही व्यक्त होता है। वह नाव पर भरुकच्छ (भड़ोच) तथा सुप्पारक होते हुए ताम्रपर्णी पहुँचा। इस प्रकार यही स्पष्ट होता है कि वह लाट (गुजरात) देश का था। पराक्रम के पीछे उत्तराधिकारी कलिंग राजकुमार थे। उन्होंने अपने शिलालेखों में इस पर बहुत जोर दिया है कि सिंहल सिंहासन का उत्तराधिकारी कलिंगवंशी राजकुमार ही हो सकता है।

पराक्रम के पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों में इतनी शक्ति न रही कि वे राज्य को सँभाल सकें साथ ही आपसी षड्यन्त्रों से इनमें से कोई भी अधिक दिन तक टिक न सका। इन सब कमजोरियों से फायदा उठाकर मलबार लोगों ने जो बराबर ही ऐसे अवसरों की ताक में थे सिंहल पर आक्रमण कर दिया। उनका सेनापति माघ था। उन्हें विजय मिली और माघ राजा हुआ। उसका शासन बहुत ही कठोर एवं नृशंस रहा। उसके आक्रमण तथा शासनादि के सम्बन्ध में 'महावंस' में उल्लख है—

"लंका-राज महावन को निपीड़न में दावानल के समान उसने बहु संख्यक योद्धाओं को इस कार्य में लगाया। उनके वीर महायोद्धा उन्माद करते हुए कहते थे कि हम केरल योद्धा हैं।

उसने मनुष्यों की सारी सम्पत्ति को छीन लिया तथा चिरकाल से रक्षित कुलाचार को तोड़ दिया। उसने बहुत-से मन्दिरों को तोड़ा मनुष्यों के हाथ पैर काटे तथा गाय भैंस आदि को अपने हाथ में कर लिया।

महाधनी लोगों को बाँधकर उनका वध करके उनके सारे धन को हर कर उन्हें दरिद्र बना दिया।

उसने प्रतिमा-गृहों को तोड़ दिया बहुत-से स्तूपों को ध्वस्त कर दिया तथा विहारों में घूमते बहुत से उपासकों को मार डाला।

य लोग बच्चों को आमिष भोगी एवं सन्तों को पीड़न व तथा धनिकों के धन को उन्होंने हर लिया। वे सब दरिद्र हो गये।

प्रसिद्ध तथा बहुमूल्य पुस्तकों की भी रस्सी खोलकर उन्होंने यहाँ-वहाँ फिरवा दिया।

उन्होंने महान् पूर्व राजाओं द्वारा निर्मित 'रत्नमाल्य' आदि चैत्यों को गिराकर ध्वस्त किया और उनमें रखी हुई शरीर धातुओं को भी भ्रष्ट किया।

इस प्रकार मार के समान उनका आचरण था। तब पुलस्त्यपुर (पोलन्नरुव) को भी सब तरह से घेरकर उन लोगों ने दखल किया और विहारों तथा परिवेणों को कितने ही योद्धाओं का निवास-स्थान बनवाया।

इस प्रकार के घोर तथा जबर्दस्ती से माघ महीपति सिंहल में इक्कीस वर्ष तक राज्य करता रहा। माघ के आक्रमण के बाद 'पोलन्नरुव' फिर न सँभल सका। आज भी माघ के अत्याचारों के चिह्न 'पोलन्नरुव' की पुरानी इमारतों पर देखे जा सकते हैं। इसके बाद 'जम्बुद्रोणि' (डम्बदेनिय) राजधानी बनी।



चौथा अध्याय

४ जम्बुद्रोणिकाल

माघ के अत्याचार-पूर्ण शासन से कितने ही विद्वान् स्थविर द्रविड़ देश भाग गये। इसके पश्चात् विजयबाहु ने राजधानी बदली। पोलोन्नरुव काल में पालि की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई थी। साथ ही संस्कृत की ओर भी दृष्टि थी। जिस समय पोलोन्नरुव के विहारों की ध्वंसलीला माघ कर रहा था उस समय नालन्दा तथा विक्रमशिला तुर्कों द्वारा ध्वस्त हो चुके थे। जिस प्रकार से माघ के राज्य की स्थापना एकाएक हुई थी वैसे ही उसके राज्य का उच्छेद भी अचानक ही हुआ। धर्म-ध्वंस के कारण सम्पूर्ण सिंहल जाति का कुपित होना स्वाभाविक ही था। अतः इक्कीस वर्ष के उसके शासनकाल में सिंहल वीरों ने उसे चैन से नहीं रहने दिया। इस समय उत्तर भारत में मुस्लिम शासन स्थापित हो गया था। सिंहल पर माघ के साथ ही चोलों का भी भय जाता रहा और विजयबाहु ने 'दम्बदेनिय' को राजधानी बनाया।

इस प्रकार इस युग में जो पालि के बहुत विद्वान् आविर्भूत हुए जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(१) संघरक्खित—ये 'सारिपुत्त' के शिष्य थे तथा उस समय संघराज थे। माघ के शासनकाल में धर्म की जो अवनति हो गयी थी उसके सुधार के लिए एक परिषद् करने की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतः इनके तथा मेधङ्कर उदुम्बरगिरि की प्रधानता में विजयबाहु द्वारा निर्मित 'विजयसुन्दराराम' में यह परिषद् बैठी और इसमें आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। विजयबाहु ने माघ के शासनकाल में ही जम्बुद्रोणि को अपना केन्द्र बनाया था और उस अशान्ति के समय में भी

आचार-वैराग्य में पुनः वनवासी सम्प्रदाय के भिक्षुओं का प्रभाव बढ़ता रहा।

(२) वनरतन तिस्स—ये वनवासी सम्प्रदाय के थे। 'उदुम्बर मेघङ्कर' के शिष्य 'आनन्द वनरतन' भी इसी सम्प्रदाय के थे जिनके प्रसिद्ध शिष्य 'बुद्धप्पिय' अपने गुरु को ताम्रपर्णी-ध्वज कहते हैं। आनन्द ने 'पियदस्सी' के व्याकरण-ग्रन्थ 'पदसाधन' की टीका और 'खुद्दसिक्खा' की टीका लिखी। 'अभिधम्म मूलटीका' के रचयिता भी ये ही कहे जाते हैं।

(३) सद्धम्मोपायन—इस ग्रन्थ का रचनाकाल भी यही है। इसमें धर्म का महत्त्व बतलाया गया है। इसके कर्ता 'अभयगिरि के कविचक्रवर्ती आनन्द महाथेर' थे। ग्रन्थ से यह स्पष्ट नहीं होता कि ये आनन्द 'वनरतन आनन्द' थे या दूसरे। ग्रन्थारम्भ में यही लिखा है कि अपने मित्र तथा साथी 'बुद्धसोम' को धार्मिक भेंट करने के लिए ही लेखक ने इसकी रचना की थी। इसमें १९ परिच्छेद हैं जिनमें मनुष्य-जन्म प्राप्त करने की कठिनाइयाँ पाप करने की प्रवृत्ति तथा इसके भयंकर विपाक के स्वरूप प्रेतलोकादि का वर्णन है।

पराक्रमबाहु तृतीय ने द्वीप को आक्रमणकारियों से मुक्तकर बहुत जल्दी फिर से इसे बसा लिया। अपने पाण्डित्य के कारण ही कलिकाल सर्वज्ञ की उपाधि से उन्हें विभूषित किया जाता है। उस समय भिक्षुओं के आचार में शिथिलता आ गयी थी और उसे हटाने के लिए आरञ्ञक मेघङ्कर की अध्यक्षता में इन्होंने बौद्ध परिषद् का आयोजन करवाया। इस समय वनवासी (अरञ्ञवासी) सम्प्रदाय की प्रधानता स्थापित हुई। भिक्षुओं के उच्च शिक्षण की व्यवस्था इनके द्वारा हुई और इसके लिए चोळ देश से विद्वान् भिक्षु बुलवाये गये।

इसी काल में भिक्षु धर्मकीर्ति ने 'भेसज्जमञ्जूसा' नामक आयुर्वेद के ग्रन्थ को पालि में लिखा और इसका सिंहली अनुवाद पीछे अठारहवीं शताब्दी में संघराज 'सरणङ्कर' द्वारा प्रस्तुत किया गया। सिंहली में लिखे

गए विनय-नियमों के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिक्खावलञ्द' का पालि-अनुवाद भी 'सिक्खापदवलञ्जनि' शीर्षक से इन्हीं भिक्षु ने किया।

'थूपवंस' भी इसी समय की ही रचना है और इसके सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है।

(४) अनोमदस्सी—'हत्थवन-गल्लविहारवंस' इन्हीं के शिष्य की कृति है। इसमें गद्यभाग ही अधिक है और भाषा तथा शैली दोनों ही अत्यन्त प्रौढ़ हैं। इसमें ११ अध्याय हैं और आठ अध्यायों में 'संघबोधि' का चरित वर्णित है और अन्तिम तीन परिच्छेदों में उस राजा के अन्तिम निवास स्थान पर (जहाँ पर 'संघबोधि' ने लोभी राजा को अपना सिर काटकर दे दिया था वहाँ के) निर्मित विहारों का वर्णन है। कविता भाग तथा गद्य भाग दोनों ही मधुर तथा प्राञ्जल हैं। इसके उद्धरण मैंने 'पालि-काव्य धारा' में दिये हैं फिर भी नमूने के तौर पर नीचे कुछ अंश दिये जा रहे हैं—

'तब सारे राष्ट्रवासी अमात्य' के साथ महाविहार गये और वहाँ पर महासंघ को बैठक कराकर, संघ के बीच 'संघबोधि' राजकुमार ने प्रार्थना की। तब संघबोधि राजकुमार ने संघ को दंडवत् नमस्कार करके अवकाश प्राप्त कर, इस प्रकार से कहना आरम्भ किया—यह राजलक्ष्मी जैसे-जैसे जलती है वैसे-वैसे कपूर की दीपशिखा की भाँति काजल से मलिन कर्मों को ही वमन करती है। यह है तृष्णारूपी विषलता के लिए वनवासी जल राशि इन्द्रियरूपी मृगों के लिए निषाद (शिकारी) की मधुर गीत-सी सच्चरित्ररूपी चित्रों के लिए धूम की धूमरेखा-सी मोहनिद्राओं के लिए विभ्रमशय्या प्रमादवृत्तियों के लिए शौण्ड की भूमी के समान अविनयरूपी महासेना के लिए आगे चलनेवाली पताका के समान क्रोधरूपी मगरों के लिए उत्पन्न नदी-सी मिथ्यादृष्टि सर्पों के लिए मधुशाला-सी परदार-विहार-नाम अभिनयाओं के लिए संगीतशाला-सी दोषरूपी सर्पों के लिए निवासगुफा सत्पुरुषोचित व्यवहार के लिए अगलवासी बेंत की छड़ी की भाँति गुणरूपी हंसों के लिए आगामी मेघ-सी कपट नाटक की प्रस्तावना-सी कामरूपी हाथी के लिए बैसे-सी गणना के लिए भूमी

पर चक्रमवासों को भी वामवासी मामा-सी धर्म रूपी चन्द्रमंडल के लिए राहुमुख-सी। मैं किसी ऐसे (व्यक्ति) को नहीं देखता हूँ जो इस राजलक्ष्मी द्वारा मायालिङ्गन किया गया हो और धोखे में न पड़ा हो।

गोठाभय न राज्य पाकर कुछ दिनों में सोचा—मेरी जड़ता से विरक्त हो प्रजाजन वन न गए 'संघबोधि' को लाकर शायद राज कराने का प्रयास करें। शीघ्र ही उसे मरवा डालना होगा' यह निश्चय कर नगर म भरी ढकवायी— संघबोधि' राजा के सिर को जो लायगा उसे एक सहस्र पारितोषिक स्वरूप मिलेगा।

मलयदेशवासी कोई गरीब आदमी अपने काम से पोटली म भात ले जा रहा था। भोजन के समय सोते के पास बैठे हुए 'संघबोधि' राजा को देखकर उसके आकार से प्रसन्न हो भोजन के लिए निमन्त्रित किया। राजा न स्वीकार नहीं किया। उस पुरुष न कहा— मैं छोटी जाति का नहीं हूँ न प्राणिवध से जीविकोपार्जन करनेवाला केवट अथवा शिकारी हूँ। उत्तम वर्ण भोजन योग्य वंश म पैदा हुआ हूँ। कल्याणधर्मा (आप) इस भात को खा सकते हैं।

उसके आग्रह को न ठुकरा सकने भात खाकर उससे पूछा— अनुराधपुर का क्या समाचार है जो सिर लाकर देगा उस एक सहस्र पुरस्कार स्वरूप प्राप्त होगा उसकी बात के तुरन्त बाद सोचा—मेरे सहस्र मूल्यवान सिर क दान से इस समय इसका प्रत्युपकार हो सकेगा जो पुरुष मैं वही संघबोधि' राजा हूँ। मेरे सिर को ले जाकर राजा को दिखला देख मैं इस प्रकार का पातक कार्य नहीं करूँगा तब राजा न समझाया—मत डरो सहस्र कार्षापण क लाभ का मैं ही उपाय करूँगा

मन प्रसन्न हो गया यह जान राजा ने उसी मुट्ठी से कपड़े प्रवाहित होती हुई शोणित धारा के साथ गर्दन की हथेली पर रख दिया।

(६) वनरतन आनन्द—विजयबाहु के समय हुई बौद्ध परिषद् के प्र अध्यक्ष थ। माघ के शासन में शायद य पाण्ड्य देश के श्रीवल्लभपुर

(मधुरा) में चले गये। 'उपासकजनालंकार' नामक अपने ग्रन्थ में वे लिखते हैं—

विशुद्ध वर्णधाम बुद्ध को उनके द्वारा सुभाषित श्रेष्ठ धर्म को एवं दोषों से विमुक्त संघ को नमस्कार करके 'उपासकालंकार' की मैं रचना करता हूँ।

इन तीनों वस्तुओं (बुद्ध धर्म संघ) की जो उपासना करते हैं वे उपासक कहे जाते हैं वे ही सरण आदि गुणों को भूषित करते हुए उपासक के अलंकार कहे जाते हैं।

अतः वे भूषण तथा उनके गुणों का प्रकाशक होने से यह ग्रन्थ अथवा शब्द तथा अर्थ के अनुसार ही पण्डितों द्वारा 'उपासकालंकार' जानना चाहिए।

अनेक सूत्रों से सार ग्रहण करके अनाकुल होकर इसका कथन किया जा रहा है जैसे कि चतुर जन अनेक स्थानों की मणियों को लेकर उत्तम मुकुट बनाते हैं।

ग्रन्थकार-परिचय

दूसरे बौद्ध-निकायों से बिना मिश्रण किये अनाकुल महाविहार वासियों की परम्परा पर आधारित

श्रीमन्तनी नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ नगर में विशाल कुल में उत्पन्न श्रद्धालु तथा महाव्रती

महान् यतिश्रेष्ठ कीर्ति से बने पाण्डय भूमण्डल में एक ही सामन्तगत 'चोमगंग' नाम से प्रख्यात था।

उसके बनवाये हुए अनिर्वर्णनीय तीन रमणीय विहार पृथिवी-रमणी के मुकुट की कान्ति प्रकाशमान हैं।

उनमें से जो सुरत्न मौक्तिक धन-पुण्य सानागरसमूह के मानस-सा सबमें श्रेष्ठ विहार (है)

जो अनेक जनों के सम्मोद सयनसी भँवरों के समागम-सा (है) तथा उसका एक भाग कीर्ति रूपी लता-मंजरी-सा देदीप्यमान (है)।

स्वर्ग में जाने की सीढ़ी के समान प्राणियों का परम भवन पाप अपहरण करने में रमणीय 'करगी' नाम से प्रसिद्ध (है)

वह पुष्पों का आकर 'पेरम्पस्सी' इस नाम से विद्वानों द्वारा प्रवर्तित किया जाता है। सम्पूर्ण लंका द्वीप जब प्रसिद्ध इसी नाम से आकुल हो गया था

तो वहाँ अपनी रक्षा के लिए तथा पुन धर्म की वृद्धि के लिए सदा ही सद्धर्मगोचर तम्बपण्णी के ध्वज-तुल्य स्थविर आये।

आगम की अनुरक्षा करते हुए वे वहाँ रहते थे उसके पूर्व-उत्तर रमणीय प्रासाद में बसते हुए मैंने तथा सज्जनों के रंजक इस अलंकार को रचा।

(१) वनरतन मेधङ्कर—ये भी अरण्यवासियों में से ही थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'जिनचरित' (एक छोटी-सी काव्य पुस्तिका) तथा 'पयोगसिद्धि' (व्याकरण का ग्रन्थ) हैं। 'जिनचरित' में बुद्ध की जीवनी वर्णित है और इसके साथ ही प्रथम बुद्ध के उपदेश कार्यों का भी विवरण दिया गया है तथा बुद्ध के विभिन्न वर्षावास भी इसमें वर्णित हैं। इसमें प्रस्तुत की गयी बुद्धजीवनी में कोई नवीन बात का उल्लेख नहीं है और सम्पूर्ण वर्णन का आधार जातक-निदानकथा ही है। इस पर संस्कृत के काव्यों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर है। यद्यपि मेधङ्कर नाम के सिंहल में कई व्यक्ति हुए हैं पर ये 'वनरतन मेधङ्कर' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके समय के सम्बन्ध में भी विद्वानों में विवाद है। इन्होंने तो केवल यही व्यक्त किया है कि इस ग्रन्थ की रचना उनके द्वारा राजा विजयबाहु द्वारा निर्मित परिवेण में हुई। इसी को आधार बनाकर विद्वानों ने इनके काल के सम्बन्ध में अपने अनुमानों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इन सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि निस्सन्देह ही इनका समय तेरहवीं सदी का उत्तरार्ध है।

'जिनचरित' के निम्नलिखित नमूने इसकी शैली को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं—

हिमालय-वर्णन

"हरिचन्दन, कपूर तथा अगर की गन्धों से वासित, सुपुष्पित चम्पा, अशोक, पाटलि, तिलक वृक्षों तथा सुपारी, पुन्नाग आदि-आदि के वृक्षों से मंडित;

सिंह, बाघ, शरभ, हाथी, चीते तथा अश्व आदि अनेक मृगों से समाकुल;

मैना, राजहंस, हंस, तोता, क्रौंच, कबूतर तथा कलविंक आदि पक्षियों से कूजित;

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, देव, दानव, सिद्ध तथा विद्याधरों आदि से सेवित;

स्वर्ण तथा मणि के सोपानवाले अनेक तीर्थों और सरोवरों से शोभित एवं देवाङ्गनाओं की क्रीड़ा से शोभित;

शीतल फुहार से ढँके आँगनों से मंडित तथा किन्नर और नागों के रमणीय रंगस्थलों से विराजित;

मोरों के वन-नृत्यों से तथा लताओं के मण्डपों में एवं शीतल वायु से ढँके आँगनों से मंडित (हिमालय था)।

सिद्धार्थ के जन्म पर प्रकृति का आचरण

'उस समय कुछ हरिणों के साथ हर्ष-पूरित हो और उत्सुकता के साथ साथ सुनहले मृगों के साथ और कुछ विस्मय के साथ चलने लगे।

मृग सिंह के साथ वैसे ही मिल गये जैसे पुत्र के साथ माता-पिता का समागम होता है। सार्थ से बिछुड़ गये साथी स्वदेश वापस आ गये।

महासागर सातों वर्णों के तीन कम्पनों से विभूषित सात द्वीपों की मालावाला हो गया था और (उसका) जल भी अत्यन्त सुखद हो गया था।

अत्यन्त मन के प्रिय संगम से पृथ्वी स्वयं वह अत्यन्त शान्त हो गयी; देवों के अनेक प्रकार के पुष्पों की वृष्टि से विभूषित और भी बहुत विभूषित हो गयी थी।

• •

कोमल, शीतल तथा मनोज्ञ गन्धवाला वायु सम्पूर्ण प्राणियों के लिए

सुखमय होकर प्रवाहित होने लगा और अनेक रोगों से कुपीड़ित शरीरवाले लोग उनसे मुक्त होकर सुखी हो गये।

ग्रन्थकार-परिचय

"लंका के अलंकारभूत राजवंश के केतु विजयबाहु राजा के अपने नाम से बनवाये

कलाग्रम प्राकार, गोपुर आदि से शोभित श्रेष्ठ रमणीय विहार में वास करते हुए शान्तवृत्तिवाले

दयालु तथा श्रीमान् मेधंकर स्थविर ने छात्रों द्वारा प्रेरित हो इस (ग्रन्थ) को रचा।"

'धम्मरतन मेधंकर' का द्वितीय ग्रन्थ 'पयोगसिद्धि' है, जो मोग्गल्लान व्याकरण को आधार बनाकर प्रयोग को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया है। इसमें लेखक ने कच्चायन व्याकरण को आधार बनाकर प्रक्रिया नुसार 'बुद्धप्पिय दीपंकर' द्वारा प्रस्तुत किये गये ग्रन्थ 'रूपसिद्धि' में वर्णित शब्दों का उत्तर उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।

(क) बुद्धप्पिय दीपंकर—ये चोळ देश के अच्छे पण्डित थे। इनका सम्बन्ध सम्भवतः 'धम्मरतन आनन्द' से उसी समय हुआ था जब वे मधुरा के 'वेरगम्बी' विहार में आप के अत्याचारों के कारण शरणागत हुए थे। 'बुद्धप्पिय' 'वनरतन आनन्द' को अपना गुरु मानते थे। पण्डित पराक्रम ने सिंहल में पुनः शासन की प्रतिष्ठा के लिए चोळ देश से भिक्षु-संघ को जब आमन्त्रित किया था तो सम्भवतः ये भी उसी प्रसंग में ही सिंहल आये थे। इनके ग्रन्थ 'पज्जमधु' तथा 'रूपसिद्धि' आदि हैं जिनके विषय में 'द्रविड़ प्रदेश में पालि' नामक अध्याय में आगे विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

(ख) संघरक्खित—'सारिपुत्त' के शिष्य तथा सम्राट् विजयबाहु के समय में संघराज थे। इनकी कृतियाँ हैं—(१) 'सुबोधालंकार' (२) 'वुत्तोदय' (३) 'खुद्दसिक्खाटीका' (४) 'सुसद्दसिद्धि' (५) 'मोग्गल्लानपञ्चिकाटीका' (६) 'सम्बन्धचिन्ता' तथा (७) 'योगविनिच्छि-

विमिच्छय' आदि। इन रचनाओं से यही ज्ञात होता है कि ये बहुत-से विषयों के पंडित तथा ऋजु प्रकृति के थे। 'सुबोधालंकार' की रचना उन्होंने संस्कृत के विख्यात कवि दण्डी के 'काव्यादर्श' के ढंग पर की थी जिसमें उदाहरण उन्होंने अपने ही द्वारा बुद्ध-महिमापरक पद्यों को रखकर रखा। नीचे 'सुबोधालंकार' के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

"मुनिराज बुद्ध के मुख-कमल-रूपी गर्भ से उत्पन्न सुन्दर तथा प्राणियों की शरण वाणी (सरस्वती) मेरे मन को प्रसन्न करें।

रामशर्मा आदि के तो प्राचीन अलंकार (ग्रन्थ) विद्यमान हैं तथापि वे शुद्ध मागधी (पालि) के बालन में प्रयुक्त होते हैं।

इसलिए अलंकारवर्जिता को भी ठीक-ठीक अलंकारों से सन्तुष्ट मैं कर सकूँ इसीलिए मेरा यह श्रम है।

सभी गुणों से विवेकी पुरुष को पूजा करना ही पूजा है। अविवेकी जनों के पास लोग विवेक को नहीं प्राप्त कर सकते।

सभी कुशल अनुमत प्रबल अथवा अप्रबल जब तक ज्ञान न हो तब तक दुःखप्रद ही होते हैं

मेरे द्वारा विहित विधानादि आनन्दप्रद विरत्न को आनन्दित करते हुए आदर के सहित प्रकाशित हों

स्त्रियों पर, दुर्जनों पर विष पर सींगवाले पशुओं पर नदी पर, रोग पर तथा राज्याधिकारियों पर विश्वास करना ठीक नहीं है।

सभी कोमल वर्णों से अनुप्रास प्रशंसनीय नहीं है जैसे कि सीन चंचल भ्रमर-पंक्तिवाली चमेली की माला।

हे जिनवर, जो लोग नयनरूपी अञ्जलि दोन से तुम्हारे शरीर की कान्ति का पान करते हैं वे तृप्त नहीं होते हैं क्या आप सुधा सागर भी हैं ?

चन्द्र क्षयधर्मी है, कलंक युक्त एवं (मेघ) पाता है, अतः तुम्हारा मुख उसके समान होता हुआ भी उत्कृष्ट है—इसे भिन्नोपमा कहा जाता है।

मुनीन्द्र का मुख शोभायमान तथा मनोहर चमकता है। हे चन्द्र अम्बर उग हुए भी तेरी चेष्टा व्यर्थ है।

'खुद्दकसिक्खा' की टीका में श्रमण पुत्र के सम्बन्ध में य कहते हैं—

"समस्त शास्त्रों में विशारद महागुणी एवं महाप्राज्ञ श्रमण पुत्र 'सारिपुत्त' महास्वामी को मैं शिर से नमस्कार करता हूँ।"

(३) वेदेह—इनके काल के सम्बन्ध में विवाद है। कुछ लोग इसे तेरहवीं सदी और कुछ चौदहवीं सदी मानते हैं। ये वनवासी सम्प्रदाय के थे और 'वनरतन आनन्द' के शिष्य थे। इनकी कृतियाँ हैं—(१) 'समन्तकूटवण्णना' तथा (२) 'रसवाहिनी'। सिंहल का प्राचीनतम व्याकरण ग्रन्थ 'सिदत्सङ्गरा' (सिद्धान्तसंग्रह) को भी इन्हीं की रचना कहा जाता है।

इनका ग्रन्थ 'रसवाहिनी' बड़ा ही लोकप्रिय है और इसमें १०३ आख्यानों का संग्रह है। यद्यपि इसमें गद्य ही प्रधान है पर बीच-बीच में गाथाएँ भी आती हैं। इन आख्यानों में नैतिक उपदेशों का प्राधान्य है साथ ही लंका तथा भारत दोनों की सम्मिश्रित संस्कृतियों का चित्रण इन आख्यानों में उपस्थित किया गया है। 'दुट्ठगामणि' सिंहल का बहुत प्रतापी राजा था जिसने ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में द्रविड़ों से सिंहल को मुक्त किया। वीर होने के साथ ही उसके धर्म-प्रेम का नमूना 'रत्नमाल्य' चैत्य है। उसके एकमात्र पुत्र शालि ने चाण्डाल कन्या से प्रेम करके सिंहासन छोड़ दिया। वेदेह ने 'रसवाहिनी' में यह कथा दी है—

"दुट्ठगामणि राजा का पुत्र शालिकुमार सौभाग्य यौवन से युक्त तेज शक्ति-पराक्रमवाला था।

वह बहुत मेधावी रूप में कामदेव के समान मधुरभाषी सत्यप्रतिज्ञ तथा विशारद था।

(वह) दाता भोगवाला बली एवं सम्पूर्ण प्राणियों का हितैषी

था। वह दान धन में कभी भी तृप्त न होनेवाला तथा वसुत्रय में परायण था।

एक दिन कुमार उद्यान-क्रीड़ा करूँगा' यह सोच कर दक्षिण द्वार से निकला। जाकर उद्यान क्रीड़ा करते हुए जहाँ-तहाँ रमणीय शिलातल पुष्करणी लतामण्डप तथा वृक्षमूल आदि में विचरण करता हुआ एक पुष्पित अशोक वृक्ष को देखकर उसके नीचे गया और (वहाँ) ऊपर की ओर देखा। उस समय 'हुल्लास' ग्राम के कांडास की पुत्री 'देवी' उस वृक्ष पर (कपास) मेघ मण्डल पर देदीप्यमान विद्युल्लता की भाँति श्रेष्ठ रूप को प्राप्त अशोक के पुष्प तथा पल्लवों को तोड़ती तथा पहनती हुई स्थित थी। कुमार उसे देखकर उत्पन्न बलवान् प्रेम से युक्त होकर आश्चर्य-चकित हो मदन प्रेम पर संयम न कर सका। और फिर, उसके साथ सलाप करते हुए बोला—

कहाँ से तू आयी, तू कौन है? देवता है या मानुषी? मैं तेरे समान अन्य किसी को इस पृथ्वी मंडल में नहीं देखता हूँ।

तेरे चरण पद्म सदृश सुगन्ध तथा कोमल है। सुलक्षण मोर की ग्रीवा की भाँति तेरी जाँघ नर्तन के लिए रमणीय है।

भद्र तेरे जानु भरे हुए तथा कनक कदली तुल्य शुभ हैं। तेरी कटि ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि वह मुट्ठी में आ जाय।

भद्र रूप के समुद्र में अविच्छिन्न रोमों की पंक्ति से सुशोभित तेरी त्रिवली तरंगों की भंगिमा का निर्माण करती है।

भद्र रूपसागर में तेरे स्तन उत्तरसागर में चक्र तुल्य सुलक्षण बुलबुल के समान शोभायमान हैं।

भद्र वक्षस्थल से उत्पन्न अति अद्भुत प्रवाह की भाँति पानि रूपी पल्लवों से अलंकृत तेरे बाहु विराजमान हैं।

भद्रे पर्वसार रूपी तेरा मुख चन्द्र चमक की किरणों से मिश्रित हो मेरे मन रूपी कमल वन को प्रफुल्लित करता है।

शृंगार मन्दिर में सुवर्णस्तम्भ पर बँधे ध्वज के समान अविमुक्त कार्मुक की भाँति झिलमिलाती तेरी भौंहें विराज रही हैं।

चमनी की माला से शोभित मनोरम तेरे नीले केश तापिंछ के पुष्प के समान हैं।

भद्रे तुम अपना नाम मुझे बतला। तुम्हें तेरे माता-पिता कौन हैं? मेरे पूछने से यह बतला कि तू समर्था है या असमर्था ?"

उसने कहा—

"स्वामिन्, 'हेल्लोल' ग्राम के मालिक की मैं पुत्री हूँ। मुझे लोग लोहार पुत्री चाण्डाली कहते हैं।

उसे सुनकर कुमार ने कहा—

"गन्दे में पड़ी हुई उत्तम मणि को यह दुनियाँ नहीं छोड़ती। स्त्री-रत्न को हीन कुल से भी सुचि की भाँति ही ग्रहण करना चाहिए।

कुमार उस पर मुग्ध होकर, वृक्ष से उसे उतार कर, अपने यान में बिठलाकर उसके साथ नगर को गया।

राजा ने एक विश्वसनीय स्त्री को बुलाकर कुमार के पास यह कह कर भेजा—स्वामिन्, तुम्हारे पिता तुम्हारे चित्त के अनुकूल राज-कन्या या ब्राह्मण-कन्या लाकर पादपरिचारिका बनाकर अभिषेक करा देंगे। इस चाण्डाली को छोड़ दो। राजकुल को मत दूषित करो। साथ ही यह भी कहा कि राजकुमार के मन के भाव को जानकर मुझसे भी कहना।

उस स्त्री ने जाकर यह बात राजकुमार से कही। तब कुमार बोला—

'दोहदवाली (जब) एक अनार को खाना चाहती है तो क्या वह आम के फल को पाकर सन्तुष्ट हो सकती है?

इसी प्रकार दूसरी (स्त्री) को पाकर मेरा मन नहीं भरेगा। चाँद को देखकर क्या कमलवन फूलता है?

राजा ने ब्राह्मणों को उसकी लक्षण-जाँच के लिए भेजा। उन्होंने भी आकर कहा

उसका सिर छत्र के आकार का, नेत्र विशाल कमल पत्र के समान, मुख तथा हाथ-पैर भरे हुए हैं तथा उसमें चंचल लक्ष्मी बसती है।

यह सुनकर राजा स्वयं उपराज के महल में गया। तब उपराज और मनोरमाला दोनों राजा की अगवानी कर वन्दना करके एक ओर खड़े हो गये। राजा ने देवी की रूप-सम्पत्ति से सन्तुष्ट होकर पूछा — क्या तू ही मनोरमाला देवी है? उसके 'हाँ स्वामी' कहते समय मुख से कमल गन्ध निकलकर सारे भवन में फैल गयी। राजा इस आश्चर्य को देख प्रसन्न हो जाकर विशाल आसन पर बैठा। राजा पति-पत्नी को उपदेश देकर, अभिषेक करके चला गया।

तब पिता 'कुसुमासन' राजा ने पुत्र को बुलवाकर कहा—मेरे मरने पर इस राज्य को सँभालना। उसने नहीं चाहा और 'गङ्गानिस्स' कुमार राजा हुआ। शालि राजकुमार भविष्य में मैत्रेय बुद्ध के पुत्र होकर जन्मेंगे।

(१०) सिद्धत्थ—भुवनेकबाहु (१२७७–१२८८ ई०) के काल में इन्होंने 'सारत्थसङ्गह' नामक ग्रन्थ को गद्य-पद्य-मय ४० परिच्छेदों में पूर्ण किया। यह बौद्ध धर्म का इतिहास है, साथ ही इसमें दान तथा त्यागादि से सम्बन्धित कथाएँ भी दी हुई हैं।

(११) धम्मकित्ति—इन्होंने चौदहवीं सदी में भारतीय तथा सिंहली आख्यानों के संग्रह-स्वरूप सिंहली भाषा में 'सद्धर्मालंकार' नामक संग्रह-ग्रन्थ की रचना की। इसमें २४ परिच्छेद हैं तथा तीन परिच्छेदों को छोड़कर शेष २१ परिच्छेदों में 'रसवाहिनी' की ही कथाएँ दी हुई हैं। ये भी अरण्यवासी सम्प्रदाय के ही थे।

(१२) देवरक्खित धम्मकित्ति—भुवनेकबाहु पंचम तथा वीरबाहु द्वितीय के काल में (१३७२–१४१०) ये संघराज थे। उस समय भिक्षुओं में व्याप्त दुर्व्यवस्था को हटाने के लिए बौद्ध भिक्षुओं की एक परिषद् का आयोजन हुआ जिसके अध्यक्ष 'देवरक्खित धम्मकित्ति' ही बनाये गये थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'सत्तप' 'निकायसङ्ग्रह' 'बालावतार' तथा 'जिन बोधावली' आदि हैं। बौद्ध इतिहास को व्यक्त करने में 'निकायसङ्ग्रह' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सिंहली भाषा में है। 'बालावतार' कच्चायन को आधार बनाकर प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है और पालि जगत् में इसका सर्वाधिक प्रचार है।

अपने ग्रन्थ 'निकायसङ्ग्रह' में ये कहते हैं—

"हमने क्या नहीं सुना' इससे अशान्त रहते हुए, तथा 'हम सब जानते हैं' यह भी चिन्तनीय नहीं है। जैसे दीप ज्योति-सहित हो और उसमें फिर तेल डाल दिया जाय वैसे ही मेरा यह वचन है।

सदा अनेक दिशाओं में प्रकाशित महातेजवाला सूर्य दुर्जन-रूपी सम्पूर्ण घोर अन्धकार को अशेषतः छिन्न-भिन्न कर, सज्जन-पंक्ति-रूपी-हंस सहित संघ-रूपी कमल-सरोवर को पुष्ट कर लंका द्वीप में राज आदि रश्मियों के स्वामी तथा साथ चिरकाल तक रहें।

मुनीश्वर का धर्म चिरकाल तक चलता रहे राजा लोग धर्म में स्थित रहें समय पर मेघ बरसें और सारी प्रजा परस्पर मैत्री से सुख को प्राप्त हो।

'गंगासिरिपुर' में रमणीय महल भुवनेकबाहु के राज्य करते समय जो यतिराज 'धम्मकित्ति' 'गडलादेणि' ग्राम में 'तिलक' नामक विहार बनवाकर चिरकाल तक रहे

उनका शिष्य-रूपी पुत्र 'देवरक्खित' नामक और जयबाहु नाम से प्रसिद्ध और लोकपूजित जो 'धम्मकित्ति' इस नाम से भूषित है तथा संघराज पद को प्राप्त करके जो जिन शासन को शोभायमान करता है

उन्होंने इस 'निकायसङ्ग्रह' को स्वभाषा में संक्षेप से सदा बुद्धशासन की उन्नति के लिए रचा।"

— • —

पाँचवाँ अध्याय

५ जयवर्धनपुर (कोट्टे) काल

जम्बुद्रोणि से 'कुरुनगल' की राजधानी का स्थानान्तरण हुआ और उसके बाद कोलम्बो के उपनगर 'कोट्टे' में। पराक्रमबाहु षष्ठ (१४१५–१४६७) ने शासनारूढ़ 'अलकेश्वर' की इहलीला समाप्त कर दी और लंका का सम्राट् हुआ। लंका पुनः एकता के सूत्र में बद्ध हुआ। इनके समय में संघराज राहुल जैसा महान् विद्वान् उत्पन्न हुआ जो पराक्रम के 'पोलन्नरुव' की विद्वता का अन्तिम प्रतिनिधि था।

(१) राहुल संघराज—जो युग महापराक्रमबाहु के समय (११५३–११८६ ई०) में आरम्भ हुआ था उसके ये अन्तिम पंडित थे। इन्हें राहुल 'वाचिस्सर' (वागीश्वर) भी कहा जाता है। 'तोटगमुव' के विजयबाहु परिवेण में निवास करने के कारण इन्हें 'तोटगमुव राहुल' की संज्ञा भी प्रदान की जाती है। सम्भवतः ये राजवंश के थे। ये 'उत्तरमूलनिकाय' के थे और इन्हीं के कथन के अनुसार स्वामी कार्तिकेय ने १५ वर्ष की अवस्था में इन्हें वरदान दिया था जिससे ये 'षड्भाषापरमेश्वर' हुए। ये छह भाषाएँ हैं—(१) संस्कृत (२) मागधी (पालि) (३) अपभ्रंश (४) पैशाची (५) शौरसेनी (६) तामिल। इनके अतिरिक्त सिंहली तो उनकी मातृभाषा थी ही। इन्होंने सिंहली में मेघदूत की शैली पर सन्देश-काव्यों को प्रारम्भ किया। और इनके ये दो सन्देश-काव्य हैं—(१) सळलिहिणि (२) परेविसन्देश। काव्य-क्षेत्र में इनका प्रसिद्ध अन्य काव्य शेखर है जिससे ये अमर हैं। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—(१) सीमासंकर-छेदनी (२) सोग्गमुनिमित्त (३) बुद्धप्पमत्थकाव्य (४) मोग्गल्लान पञ्चिकाप्रदीप (५) पदसाधनटीका आदि। इन सबके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएं भी हैं।

इनके द्वारा प्रस्तुत किया गया 'पञ्चिकाप्रदीप' पालि-व्याकरण को व्यक्त करनेवाली प्रौढ़ टीका है। स्वयं आचार्य 'मोग्गल्लान' द्वारा अपने व्याकरण पर लिखी 'पञ्चिका' का यह प्रौढ़ व्याख्यान है। यह अंशतः पालि तथा सिंहली में लिखा गया है। इसमें विद्वान् लेखक द्वारा संस्कृत, पालि, सिंहली तथा अन्य तमिल कृतियों से उद्धरण भी दिये गए हैं और ये कृतियाँ अधुना पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं। जब तक 'पञ्चिका' अपने मूल रूप में में प्राप्य नहीं थी तब तक मोग्गल्लान व्याकरण के गम्भीर अध्ययन के लिए केवल इसी ग्रन्थ का सहारा विद्यमान था और इसी से पञ्चिका के गाम्भीर्य तथा प्रौढ़ता का आभास विद्वानों को प्राप्त होता था। पञ्चिका के मिलने के पश्चात् तो इस ग्रन्थ का महत्त्व और बढ़ गया है।

सिंहल के प्रसिद्ध विद्वान् सुभूति ने अपने ग्रन्थ 'नाममाला' में राहुल संघराज द्वारा उद्धृत निम्न ग्रन्थों की सूची दी है—

(१) कच्चायन
(२) न्यास
(३) न्यासप्रदीप
(४) निरुत्तिमञ्जूसा
(५) रूपसिद्धि तथा इस पर 'सन्न' तथा 'गटपद' (ग्रन्थिपद)
(६) बालावतार तथा इस पर 'सन्न'
(७) सद्दनीति
(८) चूलनिरुत्ति
(९) निरुत्तिपिटक
(१०) सुत्तनिद्देस
(११) सम्बन्धचिन्ता
(१२) पदसाधन तथा इस पर 'सन्न'
(१३) पञ्चिकाटीका
(१४) पयोगसिद्धि
(१५) लिङ्ग-सन्नि-टीका ('वीसमिनाप' की टीका)

(१६) मेलज्ञमञ्जूषा तथा इस पर 'सभ'
(१७) अभिधानप्पदीपिका
(१८) चान्द्रव्याकरण
(१९) महाभाष्य (पतञ्जलि)
(२०) भाष्यप्रदीप (कैयट)
(२१) भाषावृत्ति (पुरुषोत्तमदेव)
(२२) दुर्गसिंहवृत्तिपञ्जिका
(२३) पञ्जिकासमुद्धार
(२४) कातन्त्र
(२५) शब्दार्थचिन्ता
(२६) सारस्वत
(२७) काशिका
(२८) काशिकावृत्ति
(२९) वार्तिक
(३०) भागवृत्ति (भर्तृहरि)
(३१) सारसंग्रह
(३२) पदानसार
(३३) श्रीधर (कोश)
(३४) वैजयन्ती (कोश)
(३५) अभिधर्मकोश (वसुबन्धु)
(३६) प्राकृतप्रकाश
(३७) बृ
(३८) रामायण
(३९) भाष्य (महाभाष्य)
(४०) भरतशास्त्र
(४१) अमरकोश
(४२) मेदिनीकोश

(४३) कारक-चये
(४४) समास-पटल
(४५) रतनसुत्त-पटपद
(४६) वेमल-जातक-पटपद
(४७) सिरिंग-सुत्त

'पञ्चिकाप्रदीप' को प्रकाश में लाने का श्रेय विद्यालंकार परिवेण (सिंहल) लंका के संस्थापक तथा हमारे आदरणीय गुरु आचार्य श्री धर्माराम नायक महास्थविर जी को है। इन्होंने १८९६ ई० में 'पञ्चिकाप्रदीप' का सम्पादन करते हुए इसकी भूमिका में लिखा था—"मोग्गल्लान व्याकरण के अध्ययन करने में विद्यार्थियों का जो इतना उत्साह बढ़ रहा है, उसमें पञ्चिका का जो अभाव बड़ा बाधक हो रहा है आदि। अब तो मूल पञ्चिका भी प्राप्य है और इस पञ्चिकाप्रदीप के महत्त्व में इससे और वृद्धि ही हो गयी है।

इसके प्रारम्भ में व कहते हैं—

"जिस सम्बोधि-रूपी निर्मल-सागर से उत्पन्न जिन मुनिचन्द्र के उत्तम वचनों के युक्तियुक्तों के द्वारा बाह्य वादों के मुखकमल सकुचित हो जाते हैं, ऐसे उस अतुल बुद्ध-रूपी चन्द्र की मैं सदा वन्दना करता हूँ।"

अपने शासन-पालन करनेवाले पराक्रमबाहु के सम्बन्ध में इन्होंने कहा है—

"पूर्वजन्म-रूपी कमलाकर के प्रकाशक राजेन्द्रों के मुकुटमणियों से रंजित अनुशासनवाले पिता-माता-अभिमत सेनाधिपति (षष्ठ) पराक्रमबाहु द्वारा शुभ प्रेम भाव-द्वारा जो पाले-पोसे गये

व्याकरण शास्त्रों में तथा दूसरे शास्त्रों में अन्य भाषाओं में एवं सम्पूर्ण त्रिपिटक में जो आचार्यत्व को प्राप्त कर कीर्ति पा चुके हैं ऐसे राजा पराक्रमबाहु दीर्घजीवी हों।

'पञ्चिकाप्रदीप' के अन्त में व लिखते हैं—

"महावीर्यग्राम (तोटगमुव) में (स्थित) रमणीय प्रवर विहार

महाविजयबाहु-निवास के वासी स्थविर, राहुल स्वामी के नामवाले वागीश्वर नाम से विदित मैं 'पञ्चिका' के पठनार्थ 'दीप' प्रदान किया।

यशस्वी राजा पराक्रमबाहु ने जो कि सिंहल में बहु पुण्य तथा तेजवाले राजा हैं, बचपन से ही मुझे पुत्र-समान प्रेम से अच्छे गुणों के साथ पोसा।

उस कुशाग्र बुद्धिवाले राजा को त्रिपिटक के अर्थ की व्याख्या करते हुए तथा दस पुण्य कर्मों को प्रेरणा प्रदान करते हुए हमने जयवर्धनपुर में

उन्हीं के राज्यारम्भ के चौदहवें वर्ष में कार्तिक की पूर्णिमा को शाके १३७१ (१४७७ ई०) में इस ग्रन्थ को समाप्त किया।"

(२) मतार वनरतपस्सी—ये भी इसी काल के थे तथा 'सरमी ग्राम' के निवासी थे। इसी से इन्हें 'सरमी-ग्राम-मूल-महास्वामी' कहा गया है। इनकी रचना 'वृत्तमाला-सन्देश-शतक' है जिसमें १०२ पद्य हैं तथा यह उत्कृष्ट काव्य के आदर्श को उपस्थित करती है—

जयवर्धनपुर (कोट्टे) वर्णन

"प्राणियों के लिए आनन्दकर निकायों का समूह, लक्ष्मी-रूपी-सरोज के आकर, अच्छे कुल सूर्यवंश राजवंश में उत्पन्न (तथा) जो दुर्भिक्ष के कारण सुभिक्ष को शरण देनेवाले तथा पुण्यार्थ को साधारण करनेवाले हैं। जिस पुर में देवलोक के देवताओं की भाँति लोग प्रमुदित हो क्रीड़ा करते हैं

सूर्यवंशोत्पन्न राजा पराक्रमबाहु (की पुरी) प्राकार के सारभूत परवाली श्वेत तथा विशाल चन्द्रवंश में स्थित वधुओं को धन के लिए परिधि-सी दीखती है

(वहाँ) विशाल आकाश में निरालम्ब घरा में चमकते चारों ओर प्रसारित नाना शरद् ऋतु के मेघों की पंक्ति के समान अनेक प्रासाद शिखर देदीप्यमान हैं

(वहाँ) भूमि पर फैले धाम-रूपी जल में प्रतिबिम्बित नगर की सड़कों के दोनों ओर बँधे ध्वज सदा ही सूर्य की नदी के सिर पर लगते हुए नाना प्रकार के चमकते-जैसे शोभायमान हैं

(वहाँ) ध्वजों के वस्त्रों में बँधी किंकिणी-जाल के साथ अति अधिक वायुवेग से हिलते मानों राजा की कीर्ति को नगर के आकाश में देदीप्यमान विशाल ध्वजमाला द्वारा स्वर्ग के देवगणों के लिए गान गाते हुए (गीत के समान) दीखते हैं

(वहाँ) भारी तुरंग-समूह के खुरों से उठी धूलि से सूर्य धूसरित है और विस्तृत सड़कों के बीच उत्तम पथों की बड़ी पंक्तियाँ बादलों की मर्दनकारी प्रतीत होती है तथा अन्धकार के समूह की भाँति ही जाते हैं।

जब ताड़ और स्निग्ध सुपारी तथा विशाल ताल के वृक्ष मन्द वायु से कँपाये जाते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि वे पुर की शोभा को विलसा स्तुतिकर अपने मस्तक को हिला रहे हैं।

नील जल के तल से उत्पन्न श्वेत छत्रपत्रों की कमल-पंक्तियाँ राजहंसो आदि पक्षियों की विविध परिखाओं से घिरी धूल से लिपी प्राकार से विस्तृत पुर नामक वधू जब सर्वथा वस्त्रहीन होती है तब उद्यान के छोर से विविध चित्र-से चमचमाता वस्त्र सा दीखता है।

ऊँचे स्तम्भों के शिखरों पर बँधी मन्द वायु द्वारा चालित ध्वज की पंक्तियाँ ऐसी लगती हैं मानों नागराज के पृथक्-पृथक् स्तम्भ-रूपी सर्पों को पकड़ने के लिए गरुड़ उड़ा हो।

जहाँ महानदी बह रही है और नदी के जल में नीचे चंचल मीन दिखाई दे रहे हैं। ऐसा लगता है मानों यहाँ सम्मान के लिए नागों द्वारा नागलोक से लायी गयी पद्मरागमणियाँ चमक रही हों।

इस प्रकार बहुविध ऐश्वर्य के निवास लंका-रूपी-कान्ता के तिलक की भाँति उत्तम पुरी में समस्त प्राणियों को श्री देनेवाले देवराज विभीषण विराजते हैं।

राजा पराक्रमबाहु की प्रशंसा

जो राजा धीरता में गिरि, स्थिरता में पृथिवी धनु-समूह-रूपी

हिम के शोषण में सूर्य सज्जन-कुमुद के विकासन में चन्द्रमा तथा दिशा विदिशा के शासन में नरश्रेष्ठ के समान हैं।

विश्वस्त कीर्तिवास भूपति ऐसे विराजमान हैं जैसे शरत्समय, चन्द्र-किरण क्षीरसागर से उठी तरंगें तथा गंगा का जल।

सूर्यवंश के ध्वज नरराजश्रेष्ठ बुद्धि में बृहस्पति को उद्यम में विष्णु को तेजगुण में सूर्य को तथा यश में चन्द्रमा को जीतते हैं।

कल्याणपुरी-रूपी अम्बर में अनुपम राजा-रूपी चन्द्रमा के लोकहितार्थ निरन्तर प्रकाशित होने से शत्रु-रूपी-कमल सदा मुरझाये और स्वजन-बन्धु रूपी-कुमुद आनन्दित हुए।

पूर्व जन्म के संचित बहु पुण्य-रूपी-कमल-नाल से वंश-रूपी-कमल-सरोवर में उत्पन्न ये राजा सम्पूर्ण प्राणि-रूपी भँवरों को रस राजधर्म-रूपी-मधु का दाता उत्तम भूपालरूपी-कमल के मुकुल सदा लक्ष्मी के निवास तथा सदा ही सम्पत्तिशाली उन्नतवर्ण वंश-रूपी रवि से विकसित किये जाते हैं।

वंश-रूपी क्षीरसागर में विराजित मन्दराज के समान शरण प्रजा पर होनेवाले अन्याय-रूपी नागों को मारने में गरुड़ के समान सम्पूर्ण शत्रु रूपी-गजों को विजित किये सिंहराज के समान ये श्रेष्ठ देवराज विमोचन की स्तुति करते हुए

चित्त-रूपी-स्तंभ पर तुम्हें दिखाई दें अमात्य-मंडल-सहित राजा पराक्रमबाहु को स्नेह-रूपी अंजन से अंजित दयामय भावना से अच्छी तरह देख हे सुरपतिनि नित्य रक्षा करो।"

सिहम की प्रकृति का वर्णन

"कुसुमित सुगन्धि के वृक्षों को पार करी पलायन के लिए वसन्तेषु के समान देख 'यहाँ बड़ होना ही ठीक है' ऐसी हास-स्मृति से हँसने-से दीखते

प्रभात में गमते ओसकण और पक्षियों के कूजन-सहित वृक्ष-समूह 'यतियों के तपोक्षेत्र ठीक है' ऐसा कह मानों सिद्धान्त में सन्तोष अश्रु-सा स्रवित करते हैं।

लता-रूपी-हाथों में प्राप्त पुष्पित पुष्पवाले जहाँ नवपल्लव राशि-रूपी अंजलिवाले वृक्षसमूह सदा ही धर्म के आचरण में प्रेम किये विनम्र शिष्य के समान सदा प्रकाशित होते हैं।

प्रातःकाल कूजते कुक्कुट जहाँ संयमियों के आश्रम में भाव-युक्त उपस्थित हो मानों प्रतिदिन जगाते हैं।

जहाँ संयमियों के तपोवन में पुष्प के बाद फलयुक्त आम के वृक्ष हैं। वे मानों अपनी इस सम्मति को कहते हैं कि आर्य-मार्ग के समाप्त होने पर इसी प्रकार से मोक्षफल होता है।

नगर शोभा

क्षीरसागर से उत्पन्न चन्द्र के सदृश देदीप्यमान घरों के प्रतिमा-गृहों में बुद्ध की सजीव-सी चित्र-विचित्र प्रतिमाएँ सदा दीखती हैं।

(जहाँ) पद-पद पर संचित पुण्य की राशि है, हाथ-हाथ में दीपमाला-धारण है, बाँह-बाँह में फूल की डलियाँ लटक रही हैं और प्रत्येक मुख से साधु-साधु (का शब्द) निकल रहा है।

पराक्रमबाहु अर्थात् सिंहल के अन्तिम प्रतापी राजा थे। अतएव कवि का यह कथित्व यथार्थ है।



द्विदीप—विभीषण और उत्पलवर्ण (विष्णु) लंका के रक्षक देवता हैं।

छठवाँ अध्याय

६ अन्धकार युग

षष्ठ पराक्रमबाहु (१४१५–१४६७ ई०) के मरने के बाद आधी शताब्दी भी नहीं बीती कि आपसी झगड़े के कारण सिंहल निर्बल हो गया और उसी समय पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने में प्रथम पार्तुगीज वहाँ पहुँचे। उस समय सोलहवीं शती का आरम्भ ही था और धर्मपराक्रमबाहु का लंका में शासन था। उसे स्वजनों और बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने का आश्वासन देकर पार्तुगीजों ने पास ही की भूमि पर जिसे उन्होंने 'कोलम्बो' नाम दिया—समुद्र के किनारे की चट्टानों पर अपना किला बना लिया। कोलम्बो के किले पर पार्तुगीजों की तोपें चढ़ गयीं। फिर क्या, एक ओर आपसी झगड़े को बढ़ावा देते हुए दूसरी ओर अपनी तोपों और बन्दूकों का जौहर प्रदर्शित करते हुए उन्होंने सिंहल को अपने हाथ में कर लिया। इससे सिंहल प्रजा असंतुष्ट हो गयी। १५४० ई० तक पहुँचते पहुँचते राजा की स्थिति इस हद तक पहुँच गयी कि उसने पैतृक धर्म बौद्ध धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उसका नया नामकरण 'डाम जाअम-परिय-बण्डारा' हो गया।

धार्मिक अत्याचार

भारत में उस समय अकबर का शासन था और वहाँ पर शान्ति की नीति को अपना कर पादरी अपना प्रचार करते थे। सिंहल में तो शक्ति भी उन्हीं के हाथ में थी। इस शक्ति का दुरुपयोग उन्होंने सिंहल की जनता को ईसाई बनाने में किस प्रकार से किया इसे डाक्टर मललसेकर के शब्दों में सुनिए[1]—

१ डा०—जी० पी० मललसेकर, "दी पालि लिटरेचर आफ सीलोन" पृ० २६१–२६२।

"पोर्तुगीजों के आने का प्रत्येक कदम लूट, धर्मान्धता क्रूरता, और और किसी यूरोपीय उपनिवेशिक शक्ति के उपलब्ध इतिहास में अतुलनीय अमानुषिकता से अंकित था । उनकी क्रूरता एवं अत्याचारों के प्रति उपेक्षा उनकी सैनिक सफलता के साथ ही बढ़ी । उनके अमानुषिक बर्बर व्यवहार ने स्त्री पुरुष और बच्चे का भेद नहीं रखा । अपनी प्रजा को भयभीत करने तथा पोर्तुगीज-बल के प्रभुत्व को समझाने के लिए उन्होंने ऐसे अत्याचार किये जो उनके अपने इतिहासकारों द्वारा यदि शताब्दी के भीतर ही अभिलिखित न होते तो उन्हें सच न माना जाता । बच्चे सैनिकों के भालों पर टाँगे जाते थे जिससम उनके माँ-बाप शिशु की आवाज सुनें । कभी-कभी वो पत्थरों के बीच उन्हें पीसा जाता और माताओं को यह दृश्य देखने के लिए मजबूर किया जाता ।

कभी-कभी पुलों पर से नदी में आदमियों को मगरों के खाद्य-रूप में सैनिक मनोरंजन के लिए फेंक दिया जाता था । मगरों की यह आदत हो गयी थी कि वे सीटी को सुनते ही अपने मुँह को पानी के ऊपर कर देते । प्राय असली राजा के जो भक्त थे उनके सर्वस्व को हर लिया जाता । जो पोर्तुगीजों का पक्ष करते उनका स्वागत होता और उन्हें धन पद और भूमि दी जाती । गाँव के किसान इतने उदास आते थे कि वे अक्सर अपनी जीवनोपयोगी चीजों के लिए अपने बच्चों को बेच डालते थे । पोर्तुगीज अफसर आक्रमण में कम नहीं थे लोग बस्तियों को छोड़कर भाग गये थे और अधिकतर भूमि बिना जुती रह गयी थी । सबसे बुरा यह था कि पोर्तुगीजों ने सिंहल के राष्ट्रीय धर्म को नष्ट कर देने का निश्चय कर लिया था । 'दोम जोओ तृतीय' उस समय पोर्तुगाल का राजा था तथा वह कैथोलिक धर्म का जबर्दस्त समर्थक था । वह अपनी काफिर प्रजा के धर्म परिवर्तन के लिए धर्मान्धतापूर्ण आग्रह रखता था ।"

भुवनेकबाहु ने अपने पुत्र धर्मपाल की मूर्ति पोर्तुगीज राजा के पास राज्याभिषेक पाने के लिए भेजी । यह प्रार्थना इस शर्त के साथ की गयी कि सिंहल राजा के राज्य में बाईबिल के प्रचार की छूट हो । धर्म

तलवार पर पोर्तुगीज़ों का सबसे अधिक ध्यान था। हिदायत थी—"उपदेश शुरू करो, पर यदि उसमें सफलता न मिले तो तलवार से फैसला हो।" पोर्तुगाल के राजा ने १५४६ ई० में भारत (गोआ) के वाइसराय को चिट्ठी भेजी—"मैं तुम पर भार देता हूँ कि तत्पर अफसरों द्वारा सारी मूर्तियों का पता लगाओ, उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालो। उन लोगों के खिलाफ कड़ी सजा घोषित करो जो मूर्तियों के गढ़ने, ढालने तथा चित्रण करने का काम करते हों, अथवा जो धातु, पीतल, लकड़ी, मिट्टी अथवा किसी दूसरी चीज से मूर्ति बनाते हों, उनके खिलाफ भी कार्रवाई करो, जो विदेश से मूर्तियों को लाते हों। जो काफिर खुले अथवा गुप्त रीति से अपने उत्सव आदि करें, उनके विरुद्ध भी कड़ा रुख अख्तियार करने के लिए हिदायत थी।

उसका आदेश अक्षरशः पाला गया।

जो भी काफिरों के धर्म-परिवर्तन करने के विरोध करने की धृष्टता करता, वह पोर्तुगाल के राजा के कोप का भाजन होता।

राजा धर्मपाल भी अपनी रानी के साथ कैथोलिक ईसाई हो गया। रानी का नाम 'दोना कतेरिना' रखा गया। पोप ने भी राजदम्पति को अपना आशीर्वाद भेजा। सिंहलवासियों ने पोर्तुगीजों और शासकों से बचने के लिए पोर्तुगीज नाम अपनाये। परेरा, दमेल, दसिल्वा आदि उसी समय के अवशेष हैं। नाम रखने से प्राण तथा धर्म बचें तो क्यों न ऐसा करते। उस समय सिंहल के लोग गो-मांस को हिन्दुओं की ही तरह अभक्ष्य मानते थे। पर उनको कसौटी बना कर पादरी कहीं सिर न काटें, इसलिए उन्होंने इसे भी भक्ष्य मान लिया।

पोर्तुगीजों ने अपनी इस धर्मान्धता की पूर्ति के लिए कोई उपाय बाकी नहीं रखा। विहार भूमिसात कर दिये गये। पुस्तकालयों में आग लगा दी गयी। पुस्तकों के पन्नों को हवा में उड़ा दिया गया। जो पुरुष कण्ठा या अथवा भिक्षु का पीताम्बर पहनता था, उसे मौत का सामना करना पड़ता। 'तोटगमुव' और 'कारगल' के विहार, जो नालन्दा तथा विक्रमशिला की

परम्परा के प के भिक्षु मार डाले गये। इस प्रकार से शताब्दियों के काम को कुछ ही वर्षों में समाप्त कर दिया गया।

परन्तु सिंहल-निवासियों ने विशेषकर पहाड़ों में रहनेवालों ने पोर्तुगीजों को आराम से नहीं चीन दिया और इस संगठन में 'सितवक्यस' (कैन्डी) के क्षेत्र के लोगों का विशेष हाथ रहा। प्रारम्भ से ही इस सम्बन्ध में देशभक्त लोगों की दृष्टि रही और उन्हें तभी साँस-में-साँस आयी जब उन्होंने १५० वर्षों के पश्चात् पोर्तुगीजों को द्वीप छोड़ने के लिए बाध्य किया। इस कार्य में राजवंश के 'सीतावक' के 'मायादुन्न' और उनके पुत्र 'टिकिरि बण्डारा' का विशेष प्रयत्न रहा। प्रारम्भ में इसका नेतृत्व इन्हीं लोगों ने लिया। 'टिकिरि' ने तो ११ वर्ष की अवस्था में ही सेना में प्रवेश कर लिया था और प्रारम्भ से ही उसे विजय तथा यश प्राप्त होता गया तथा उन्हें 'राजसिंह' का खिताब हासिल हुआ। इस नाम को सुनकर ही पोर्तुगीजों का दिल काँपने लगता था। धीरे-धीरे प्रत्येक स्थलों पर उसकी विजय होती गयी और वह निचले भाग का स्वामी बनकर कैन्डी भाग पर भी आक्रमण करने में समर्थ हो गया।

कैन्डी के राजा ने पादरियों को बुलाकर अपनी राजधानी में गिरजा बनवाया और यह स्वयं भी ईसाई होना चाहता था। राजसिंह ने इस पर अधिकार कर लिया। पर राजसिंह द्वारा बौद्ध पक्ष का यह समर्थन बहुत ही संक्षिप्त रहा। बात यह हुई कि कैन्डी की विजय के पश्चात् मदान्ध होकर उसने अपने हाथ से ही अपने पिता की हत्या कर दी। इस पाप से शुद्ध होने के बारे में उसने भिक्षुओं से पूछा। उन्होंने इसका यह उत्तर दिया कि पितृघात बहुत बड़ा अपराध है और इससे शुद्ध होना अत्यन्त कठिन है। यह उत्तर सुनकर वह आग-बबूला हो गया। उसकी दशा वैसी ही हो गयी जैसे डंक से आहत आशीविष की। वह भयंकर रूप से बौद्ध-विरोधी हो गया और विहारों को ध्वस्त करने पुस्तकों को जलाने तथा धर्म को ध्वंस करने का कार्य उसने प्रारम्भ कर दिया। सिंहल में आज जो प्राचीन पुस्तकें प्राप्त नहीं होतीं इसके कारण पोर्तुगीज कैथोलिक पादरी तथा राजसिंह ये

दोनों ही हैं। राजसिंह से प्राण बचाने के लिए केसर के मारे भिक्षुओं ने अपने चीवर उतार दिये। और विक्रम (१५४२ ई०) में बहुत-से धार्मिक ग्रन्थों की प्रतिलिपि पर्याप्त धन खर्च करके करवायी थी। अब वे सभी जलकर खाक हो गयीं। राजसिंह स्वयं शैव सम्प्रदाय का अनुयायी हो गया और उसने 'समन्तकूट' पर्वत पर स्थित 'श्रीपाद' को शैव संन्यासियों को दे दिया। राजसिंह की मृत्यु १५९२ ई० में हुई।

राजसिंह का उत्तराधिकारी 'विमलधर्म सूरिय' हुआ और उसने १२ वर्ष तक, अर्थात् १६०४ ई० तक राज्य किया। वह पोर्तुगीजों में ही रहता था और उन्होंने उसे ईसाई बना कर उसका नामकरण 'डाम जाओ' कर दिया था। पर कार्य-क्षेत्र में उसने ईसाइयत छोड़ दी और पोर्तुगीजों से स्वतन्त्र हो अपने उपयुक्त नाम से ही पहाड़ी क्षेत्र की राजधानी कैन्डी के राजसिंहासन को उसने विभूषित किया। पर वह तथा उसकी रानी पोर्तुगीजों के बीच में रहे थे और यूरोपीय सहानुभूति उनमें विद्यमान थी। अतः कैन्डी दरबार में पोर्तुगीज वेशभूषा की नकल होने लगी। पोर्तुगीज नाम भी सामन्तों में साधारण होने लगे और अब तक यह सब सिंहली जीवन में न्यूनाधिक रूप में वर्तमान है। पर इन बाह्य प्रभावों का 'विमलधर्म' की धातुओं के प्रति नीति में कोई असर नहीं हुआ और वह अटल ही रही। बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का अभ्युदय हुआ और राजसिंह द्वारा किये गये ध्वंसात्मक कर्मों की पूर्ति की ओर उसका ध्यान गया। पोर्तुगीजों तथा राजसिंह के अत्याचारों के कारण परिस्थिति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि देश में ऐसा कोई भी भिक्षु शुभम नहीं था जिसकी उपसम्पदा ठीक से (कायदे से) हुई हो। अतः इसको पुनर्जीवित करने के लिए राजा ने 'रक्खङ्ग' (अरकान) देश से परम्परागत भिक्षु-समुदाय को आहूत करने के लिए अपने राजदूत को भेजा। यह उद्देश्य सफल रहा और स्थविर 'नन्दिचक्र' की अध्यक्षता में लंका में भिक्षु-समुदाय का आगमन हुआ। 'महावलीगङ्गा' के तट पर 'गतम्बाय' को सीमा मानकर सिंहल के सम्भ्रान्त परिवारों से कितने ही कुलपुत्र भिक्षु हुए और इससे प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई। 'दन्तधातु' की

की प्रतिष्ठा एक तिमंजिला विहार बनवाकर कैन्डी में की गयी और 'श्रीपाद' के भी अधिकारी बौद्ध बनाये गये ।

'विमलधर्म' की मृत्यु के उपरान्त उसकी रानी 'डोना कतेरिना' साम्राज्ञी हुई, पर 'सेनरत' नामक एक शक्तिशाली व्यक्ति ने गद्दी पर अधिकार कर लिया और इस रानी से अपना विवाह सम्पन्न कराया । यद्यपि इसके समय में देश कुछ शान्ति में दृष्टिगोचर हुई, पर यह भी पोर्तुगीजों से लड़ता रहा । अगस्त १६३० ई० में पोर्तुगीज सेना को उसने बुरी तरह से हराया । उनका सेनापति मारा गया और सेना भी बहुत संख्या में ध्वस्त हुई । इस प्रकार से पोर्तुगीजों की शक्ति नितान्त निर्बल हो गयी ।

सेनरत के पश्चात् उसका पुत्र 'राजसिंह द्वितीय' गद्दी पर बैठा । उसने भी मार्च १६३८ ई० में पोर्तुगीजों को भयंकर रूप में परास्त किया और उनके मूलोच्छेद के लिए डचों को आमन्त्रित करके उनसे सन्धि भी की ।

धर्म की स्थापना (डचकाल) (१६५८-१७९६ ई०)

डच लोगों में पोर्तुगीजों की धर्मान्धता नहीं थी यह इसी से स्पष्ट होता है कि कीर्ति श्री राजसिंह ने जब संघ को फिर से स्थापित करने का विचार किया तो डचों का इसमें पूर्ण सहयोग रहा । इस समय बीच के पहाड़ी इलाके कैन्डी के राजा के हाथ में थे और इसको राजधानी बनाया थी ।

कीर्ति श्री राजसिंह ने पहले विजय राजसिंह ने स्याम से भिक्षुओं को लाने के लिए दूत भेजे पर राजा बीच में मर गया । पहिली बार के भेजे दूत भी नौका दुर्घटना में मर गये । दूसरी बार दूत भेजने के लिए जहाज डचों ने दिया । राजसिंह द्वितीय के बाद कीर्ति श्री राजसिंह गद्दी पर बैठा ।
डचों ने दूतों को स्याम में भेजकर राजा की इच्छा जाननी चाही । राजा ने
(के अनुसार
यह उत्तर गुन...) । स्याम के राजा धार्मिक ने दूतों का स्वागत किया और
जैसे जब से आरम्भ क स्थापना के लिए सहायता देने की इच्छा प्रकट की ।
और विहारों को ध्वस्त के उपालि स्थविर के नेतृत्व में भिक्षु भेजे । १०५५
का कार्य उसने प्रारम्भ कैन्डी में पहुँचकर उन्होंने 'सरणंकर' आदि सिंहल
भिक्षु बनाया ।
प्राप्त नहीं होती उसके क

— • —

सातवाँ अध्याय

७ संघ की पुनः स्थापना

सिंहल देश में लुप्त भिक्षु संघ की पुनः स्थापना १७५३ ई० में हुई और स्थविरवाद तथा पालि वाङ्मय के अभ्युदय ने एक नया मोड़ लिया। तात्कालिक सिंहल सम्राट् कीर्ति श्री राजसिंह की सहायता से इसे सम्पन्न करने वाले संघराज 'सरणंकर' थे।

(१) सरणंकर संघराज—धर्म के वैभव का अपनी पीढ़ियों के लिए पुनरुत्थान प्रस्तुत करने तथा प्रायः अस्ताचल को प्राप्त धर्म-सूर्य की उषा-लालिमा का पुनः दिग्दर्शन कराने में अपना अपूर्व योगदान इन्होंने दिया और अन्धकाराच्छादन को संघ के इतिहास के विद्याकाश में स्थित एकाकी नक्षत्र की भाँति इन्होंने दूर किया। इनके हृदय रूपी प्रकाश से अद्यावधि भी यह द्वीप देदीप्यमान है। इनका जन्म ई० १६९८–९९ में कैन्डी के ही समीप स्थित 'वलिविट' ग्राम में हुआ था अतः इन्हें वलिविट सरणंकर की भी संज्ञा प्रदान की जाती है। ११ वर्ष की ही अवस्था में ये 'सामणेर' हुए तथा स्थविर 'सूरियगोड' का शिष्यत्व स्वीकार किया।

ये बहुत बड़े विद्याव्यसनी तथा अल्पवय 'सामणेर' थे। प्रारम्भ से ही तात्कालिक सम्राट् से इन्होंने अपना सम्बन्ध स्थापित किया और संघ की पुनः स्थापना तथा उसे सुदृढ़ करने में अपना हाथ बँटाया। उस समय पालि के अध्ययन तथा अध्यापन का बहुत ह्रास हो गया था। बहुत कम भिक्षु या गृहस्थ ऐसे थे जिन्हें पालि का साधारण ज्ञान था। अतः पालि भाषा के अध्ययन में रत होने पर इन्हें सबसे बड़ी कठिनाई यही हुई कि ऐसे व्यक्ति ही नहीं सुलभ थे जो इन्हें पढ़ाने की योग्यता रखते हों और पालि भाषा के ज्ञान के बिना बुद्धोपदेशों को समझना असम्भव ही था। पालि भाषा सम्बन्धी अध्ययन की यह अवस्था थी कि इसके किसी

भी व्याकरण की कोई भी पूर्ण पुस्तक प्राप्य नहीं थी। इन्हीं परिस्थितियों में सरणंकर ने अपना अध्ययन प्रारम्भ किया। इन कठिनाइयों का सामना करते हुए नवयुवक 'सामणेर' ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक स्थानों की यात्रा की और अपना अध्ययन 'बालावतार' नामक पालि व्याकरण की प्रथम पुस्तक से एक गृहस्थ का शिष्य बनकर प्रारम्भ किया और इसकी पूर्ति अस्वरस्सी' सामणेर के द्वारा की। अध्ययन पूर्ण होने पर धर्म के सन्देश का प्रचार बड़ी लगन के साथ इन्होंने सम्पन्न किया और इसके लिए देश के सुदूर भागों की भी यात्रा इनके द्वारा की गयी। साथ ही श्रोताओं का क्या कर्तव्य है तथा उन्हें इसकी पूर्ति के लिए क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में भी इन्होंने अपने उपदेश दिए। ये बड़े ही उदार, सीधे स्वभाव वाले तथा आत्मनिष्ठ थे। प्रातःकाल उन्हें जो भिक्षाटन में प्राप्त होता था उसी से इनको सन्तुष्टि थी और इसके कारण इनका नामकरण 'पिण्ड पातिक सरणंकर' भी लोगों ने कर दिया था।

बौद्ध धर्म एवं संघ की प्रतिष्ठा में सम्राट् को य सदा उत्साहित करते रहे। सम्राट् ने भिक्षुओं को मँगाने के लिए स्याम के राजा के पास जो प्रतिनिधि मंडल भेजा था और वह उस देश के राजा के लिए जो पत्र ले गया था उसे पालि में इन्होंने ने ही लिखा था। उस प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों का चुनाव भी इन्हीं की राय से हुआ था और इन्हीं के उत्साहों से यह प्रतिनिधि मंडल अपने उद्देश्य में सफल हुआ। सिंहल में जब पुनः 'उपसम्पदा' का प्रारम्भ हुआ और राजा ने इसकी स्थापना करने में सहायता प्रदान करनेवालों के कार्यों का मूल्यांकन करके उन्हें अनेक उच्च उपाधियों से विभूषित किया तो सरणंकर' के कार्यों की भी अपूर्व सराहना उनके द्वारा की गयी और वे लंका के संघराज बनाये गए। इस पद पर रहते हुए बौद्ध धर्म तथा पालि भाषा के अभ्युदय को दृष्टि में रखकर इन्होंने अनेक सुधार किए।

भिक्षु-संघ के अभाव में सिंहल में शिक्षा का ह्रास होना स्वाभाविक ही था क्योंकि वहाँ परंपरागत सम्पूर्ण भार भिक्षुओं पर ही था। भिक्षु-संघ ही समाज की शिक्षा के लिए उत्तरदायी था। समाज में उनके धार्मिक

जीवन की व्यवस्था कर दी थी और न शिक्षा का भार सँभाले थे। वहाँ पर ब्राह्मणों की भाँति कोई ऐसी गृहस्थ श्रेणी नहीं थी जिसकी जीविका का पूरा भार निश्चित कर दिया गया हो। अतः समाज को शिक्षित करने के लिए संघ की अत्यन्त आवश्यकता थी और संघराज सरणंकर एवं उनके अन्य सहयोगी भिक्षुओं की सहायता से संघ ने अपने इस उत्तरदायित्व को पुनः सँभाला।

इनकी कृतियों में 'अभिसम्बोधि-अलंकार' तथा अन्य कुछेक पद्यादि हैं—

अभिसम्बोधि-अलंकार

"वस्तुत्रय (बुद्ध धर्म तथा संघ) को नमस्कार करके अमृत (निर्वाण) को सुगम करके रत्न-प्रकाशक (बुद्ध) ने जैसे बन्धासन (बोधगया) को प्राप्त किया वैसे ही (उनका उसी प्रकार से वर्णन प्रस्तुत करते हुए) मैं 'अभिसम्बोधि अलंकार' नामक ग्रन्थ की रचना करूँगा।

सागर कल्पों तक जिन्होंने विपुल पुण्य का सम्पादन किया था जो निरन्तर विमल शील से अलंकृत अप्सरा-स्वरूपा थी तथा जो वर हास से युक्त थीं, उन माया देवी की कुक्षि में स्मृतियुक्त वे (बोधिसत्त्व) उत्पन्न हुए।

सम्पूर्ण मणि के मध्य (विराजमान) स्वर्णाकर की भाँति माता के शान्तिपूर्वक दस मास तक उनकी कुक्षि में निवास करते हुए, इसकी समाप्ति के पश्चात्—

वैशाख पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र में पन्द्रह घड़ी के बाद मध्याह्न को इन्द्र के पुष्पित नन्दन वन की भाँति पवित्र प्रसिद्ध लुम्बिनी नामक उद्यान में अत्यन्त पुष्पित मङ्गलशालवृक्ष के नीचे शाखा पकड़ कर खड़ी माता की कुक्षि से (बोधिसत्त्व ने जन्म ग्रहण किया)।"

बुद्ध-रूप वर्णन

"उस समय सम्बोधाग्र का वह सम्पूर्ण भार का प्रमाण धर रहा था (अनेक महापुरुष) लक्षणों से पूर्ण शरीर सुन्दर मन में सुशान्त हुआ था;

(बोधिसत्त्व का) वह चरण सम्पूर्ण देवताओं तथा मनुष्यों के सिरों का अलंकार-स्वरूप था तथा अनेक सुर-नरों के जयघोष से युक्त था।

तमाल लता की आभा के समान सुनील केशवाले पूर्ण चन्द्र के आकार के सौम्य मुखवाले सुपुष्पित नील कमल के समान नील नेत्रवाले इन्द्र धनुष के समान टेढ़ी भौंहोंवाले

सुरक्त अधरों से शोभित, कुन्द पुष्पों की उपमावाले दन्तपंक्ति से शोभित मृदु नासा से सुशोभित कटि-प्रदेशवाले हाथी की सूंड़ के समान भरी हुई दोनों जांघोंवाले वलय तथा मणि-युक्त छत्रसमान पादों वाले महावर के चूर्ण के समान चरण कमलवाले

(बोधिसत्त्व ने) नेरञ्जरा नदी में आ बालू में पात्र रखकर, पुन स्नान करके (पायास का) उपचार ग्रास बना उसे अच्छी तरह ग्रहण करके ऊपर धारा में पात्र फेंक दिया।

मृदु, स्निग्ध अच्छे पत्र समुदायवाले सीधे घने बैठे मोर के पुच्छ के समान नील सघन पत्रजाल चंचल रक्त पल्लव की शोभावाले

मन्दवायु से कम्पित शाखावाले भूमि के तिलक से सदृश श्वेत स्कन्ध वाले सर्व मुनियों से सेवित महाबोधि नाम से प्रसिद्ध अपनी दया की भाँति शीतल छायावाले उस श्रेष्ठ बोधि-वृक्ष के पास पहुँच कर, तीन बार प्रदक्षिणा करके सामने (स्थित) भू-प्रदेश को (उन्होंने) पहचाना।"

फुटकर

सम्राट् नरेन्द्र सिंह की प्रशंसा में श्लोक लिखा है—

"ब्रह्मलोकाधिपति ब्रह्मा सुरपति देवराज शक्र स्वर्ग में सिंहल-राज की भावना करके (उनकी आज्ञा से) अपने-अपने सिर पर मुकुट धारण करना उचित है (ऐसा सोचकर) राजा द्वारा प्रदत्त रत्न-खचित धातु वेदिका से युक्त होकर, बुद्ध की (वहाँ) स्थापना करके सुर-नर और अमात्य-गण वंदन करते हैं।

जिस वंश में 'राजा का कर्त्तव्य क्या है' इसका ज्ञान है, जो सुगत भास्कर का सुन्दर सूर्य वंश है, उसी वंश में भूपति प्रवर सिंहलेन्द्र तुमने जन्म प्राप्त किया। महर्षि शास्ता बुद्ध के मार्ग को तुम्हारे पिता-पितामहादि ने पूजित किया।

इस प्रकार से उस बन मुनि (बुद्ध) के मत को विदित कर 'मेरे बुद्ध हैं, मेरा धर्म है, मेरा संघ है, मैं धर्म में प्रसन्न हूँ' (आदि भावनाओं से युक्त होते हुए) दान आदि अनेक पुण्य तथा स्वर्ग की भाँति सुखद बुद्ध की श्रद्धा से प्रशंसा करते हुए तुम अन्धकार समूह-रूपी पाप-समूह को, सूर्य की भाँति ध्वस्त करते हुए इस लाख अधिक पचास वर्षों तक (इस देश) की रक्षा करो।

चारों देवराज (महाराज) सहस्रनयन (इन्द्र) और नारायण आदि के देव प्रसाद से रात-दिन (सर्वदा) भीतरी-बाहरी रोग नष्ट हों। वायु रूप विपुल धन और बल देकर, उनके साथ पालन करते शरद् ऋतु के रवि की भाँति राज-तेज प्रताप से युक्त होकर (तुम) अमर बन जीओ।"

(२) सिलेमय—र भी इसी काल में हुए। इनकी कृति निम्नल माला है—

"श्रेष्ठ धर्मराज सुगत पूजनीय महा बुद्ध ने संसार में विचरण करते हुए दानादि सम्पूर्ण पारमिताओं को पूर्ण कर, बोधि वृक्ष के नीचे मार की सेना को पराजित कर सर्वज्ञता को प्राप्त किया, उस उत्तम जिन के धातु 'दन्तधातु' की मैं वन्दना करता हूँ"।

(३) हीनटिकुम्बुरे सुमङ्गल—ये संघराज के शिष्य थे। राजा के प्रस्ताव पर 'पिमिम्परम्हं' (सिमिम्परम) का सिंहली अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किया था। ग्रन्थ के अन्त में ये गाथाएँ हैं—

"बुद्धराज के परिनिर्वाण के दो हजार तीन सौ बीस वर्ष बाद श्रेष्ठ बुद्धधर्म के सुप्रतिष्ठित रमणीय द्वीप सुधासम से शोभायमान लंका में स्वर्ग खंड से सम्भार कैंडी नगर में कीर्तिश्री की कीर्ति की राजसिंह

को जीतने में सिंहराज के समान अनुत्तमूलरूपी नागराज के लिए मत्त राज के समान वीर 'सरणंकर' संघराज शोभायमान हैं।

उनके अग्रवर शिष्य 'अतरग्राम' निवासी 'भण्डार राजगुरु' के नाम से प्रसिद्ध थे। वह सागर के समान गम्भीर शास्त्रराशि को धारण करने-वाले थे। उनके मध्य शिष्य सुमङ्गल स्थविर थे।

उन्होंने मूलभाषा (पालि) में धर्म रस से युक्त गम्भीर एवं कठिन अर्थ जाल से बद्ध स्थित उस 'मिलिन्दपञ्ह' को शुद्ध बुद्धि से विशेषतः सिंहली भाषा में किया। यह सद्धर्म का दर्पण योग के लिए अमृत रसायन बन गया।"

— • —

आठवाँ अध्याय

८ आधुनिक युग

सम्राट् राजाधिराज

कीर्ति श्री राज के पश्चात् गद्दी कैन्डी के सिंहासन पर बैठा। इसे भी पूर्व सम्राट् की ही भांति धार्मिक कृत्यों तथा विद्या आदि से प्रेम था और इनके अभ्युदय एवं प्रगति में उसे आनन्द आता था। उस समय समुद्र के किनारे का भूभाग डचों के हाथ में था। अन्तिम सिंहल राजा द्रविड़ वंश के थे और विवाह सम्बन्ध के कारण ही गद्दी के अधिकारी हो सके थे। जनप्रिय होने के लिए उनके लिए यह परमावश्यक था कि बौद्ध धर्म तथा उसकी भाषा पालि के प्रति अधिक अनुराग का प्रदर्शन करें। अतः इस सम्राट् ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया।

उस समय भारत में स्थित अंग्रेज यह नहीं चाहते थे कि उनके अधिकार से केवल २० मील ही दूर डचों का शासन स्थापित रहे और यह बात बहुत दिनों से उन्हें खटक रही थी तथा इसे समाप्त करने के लिए वे मौका ढूँढ़ रहे थे। १७६१ ई० में कीर्ति श्री के समय में ही उन्होंने अपना दूत कैन्डी भेजा था जो सिंहल सम्राट् के प्रति सन्धि-प्रस्ताव को लेकर गया था यद्यपि राजा ने इस प्रतिनिधि से ठीक से भेंट की पर सन्धि के सम्बन्ध में कोई निर्णय तय नहीं हुआ। १७९५ में हालैंड अंग्रेजों के विरुद्ध यूरोप में चल रहे युद्ध में सम्मिलित हो गया और सिंहल से डचों को हमेशा के लिए समाप्त करने का यह अंग्रेजों के लिए स्वर्णावसर था तथा उन्होंने यहाँ भी डचों के विरुद्ध युद्ध घोषणा की और अपने उद्देश्य में सफल हुए। १७९६ ई० में जनरल स्टुअर्ट कोलम्बो के सामने सेना लेकर पहुँचा और उन्हें आधीनता स्वीकार करने के लिए कहा और १६ फरवरी १७९६ ई०

में कोलम्बो पर ब्रिटिश झंडा फहराने लगा क्योंकि इस दिन डचों ने अंग्रेजों की सभी शर्तें मंजूर कर ली।

सिंहल के सामन्तों ने आगे चलकर आपसी षड्यन्त्र द्वारा कैन्डी पर भी अंग्रेजों के अधिकार को जमने में सहायता दी। श्री विक्रमराज सिंह अन्तिम सिंहल राजा था। तात्कालिक प्रधान मन्त्री किसी भी प्रकार से उसे समाप्त करना चाहता था और इसके लिए अनेक षड्यन्त्र उसने किये। इन सबका राजा के चरित्र पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। उसके मस्तिष्क की शान्ति समाप्त हो गयी तथा दुष्ट साथियों ने इसी बीच मन मस्त करने की सलाह देकर उसे शराब पिलाना भी प्रारम्भ कर दिया। उसका जीवन घोर रूप से पतनोन्मुख हुआ और वह रोमाञ्चकारी अत्याचारों की ओर प्रवृत्त हुआ।

इससे प्रजा में विद्रोह की आग सुलगी और सिंहल के प्रधान मन्त्री तथा ब्रिटिश गवर्नर मार्च ने इसका लाभ उठाकर २ मार्च १८१५ ई० को सिंहल की स्वतन्त्रता सदा के लिए समाप्त कर दी और सम्पूर्ण देश पर अब उनका अधिकार हो गया। जिस सन्धि के अनुसार सम्पूर्ण द्वीप के शासन सूत्र पर अंग्रेजों का एकाधिकार हुआ उसमें स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया था कि वे बौद्ध धर्म तथा आचार-विचार में दखल नहीं देंगे और सदा ही इनकी रक्षा करेंगे। पर प्रारम्भिक दिनों में अंग्रेजी शासन ने भी ईसाई प्रचारकों के साथ अत्यन्त सहानुभूति रखी। ईसाईमत का जिस क्रूरता और बर्बरता से पोर्तुगीजों ने सिंहल के मस्तक पर बलपूर्वक जमाया था और जिस प्रवञ्चना के साथ डचों ने क्रूरता को छोड़कर अन्दर ही अन्दर प्रसार। संवर्धन किया था उस मोह को अंग्रेज जाति भी न छोड़ सकी और उन्होंने प्रारम्भ में वस्तुस्थिति को ही बनाये रखना चाहा तथा तदनुसार अनेक कार्य भी किये। गवर्नर टामस मेटलैंड ने चाहा कि सरकारी पदों के लिए ईसाई होने की शर्त हटा दी जाय पर इस प्रस्ताव का विरोध तात्कालिक 'सेक्रेटरी आफ स्टेट' ने किया और यह कार्यान्वित नहीं हुआ। अतः मिशनरी लोग स्कूल खोलकर ईसाईमत का प्रचार करने लगे और स्कूलों में जो कहें

शिक्षा दी जाने लगी उसमें सदा ही इस भावना का पुट रहा करता था कि उनका अपना धर्म हास्यास्पद विश्वासों से ओतप्रोत है। इसके विपरीत ईसाई धर्म ही स्वस्थ सभ्यता का प्रतीक है' यह भावना भी उनमें कूट-कूट कर भरी जाने लगी।

इसके विरुद्ध सिंहल निवासियों में विचार जागृत हुए और इसका विरोध करने के लिए पादरियों ने सिंहल-साहित्य तथा पालि-वाङ्मय की कमियाँ आदि का पता लगाने के लिए इनका अध्ययन भी प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बौद्ध पुस्तकें केवल कूड़ा-करकट नहीं हैं। यद्यपि प्रारम्भ में यह कार्य खंडन-मंडन के लिए ही शुरू हुआ पर इसने एक नया मोड़ लिया। उधर स्कूलों में पढ़े सिंहल बच्चों में अपने मूलधर्म तथा परम्पराओं के प्रति सम्मान की भावना का जागरण हुआ और वे स्थान-स्थान पर मिशनरियों द्वारा अपनी आस्थाओं के प्रति किये गये आक्रमणों का जवाब देने लगे। अनेक-अनेक विहारों में 'उपोसथ' के लिए एकत्रित भिक्षु भी मिशनरियों द्वारा बौद्ध आस्थाओं के प्रति प्रकट किये गये प्रहारों का उत्तर उसी प्रकार की खंडनात्मक शैली में प्रस्तुत करने में प्रवृत्त होने लगे। इसी समय 'मोहोट्टिवत्त गुणानन्द' नामक एक तरुण 'श्रामणेर' का पदार्पण हुआ। इन्होंने ईसाई शास्त्रों का अति गम्भीर अध्ययन किया और उनमें पारंगत होने के पश्चात् वे शास्त्रार्थ के लिए निकल पड़ने को समुद्यत भए। इनकी वाणी में वह ओज, शौर्य तथा प्रतिभा थी कि उनके समक्ष प्रतिवादियों के मन सम्मोहन की भाँति मस्त हो गए। इन्होंने ईसाई पादरियों को खुले आम शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पहले तो इन लोगों ने इस तरुण 'श्रामणेर' की अवहेलना की परन्तु इससे इनके उत्साह में कोई कमी नहीं आयी और नवागम के प्रखर तेज से देदीप्यमान तथा ईसाइयों के शास्त्र-ज्ञान में पूर्ण दीक्षित गुणानन्द ने 'पानदुर शास्त्रार्थ' के खुले आम जनता के बीच १८७३ ई० में पादरियों का ऐसा पराभव किया कि सम्पूर्ण सिंहल में एक बार पुनः शास्ता के आगमों का जयजयकार गूँज गया तथा बौद्धधर्म के शान्ति-स्रोत के प्रवाह से लेकर दीप

की दिशाएँ प्रशान्त हो उठीं और सर्वत्र बौद्धनिनाद की विजय वैजयन्ती फहरा गयी।

इस प्रकार एक बार पुनः बुद्ध-सन्देशों से सिंहल देश की वायु सुरभित हो गयी और आधुनिक युग में बौद्ध धम एवं पालि वाङमय के अभ्युदय की लहर सम्पूर्ण देश म दौड़ गयी। अपना सर्वस्व देकर लोगों न गुणानन्द को उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहायता प्रदान की और बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक सामग्रियों—शिक्षा उत्साह तथा प्रेस—की ओर लोगों का विशेष ध्यान गया तथा इनको सुलभ कराने में लोग तन मन और धन से जुट गये। ईसाइयों के तो अपने कई प्रेस थे और उनसे लोहा लेने के लिए बौद्धों ने अपने प्रसों की स्थापना की। स्याम के सम्राट् ने प्रेस स्थापना में प्रचुर धन देकर अपने अपूर्व सहयोग का प्रदर्शन किया और 'लङ्कोपकार प्रेस' नामक प्रथम प्रेस की स्थापना 'गाल' म १८६२ ई० में हुई। गुणानन्द ने रोमन कैथलिकों के गढ़ 'कोटहेन' को अपना प्रमुख अड्डा बनाया और वहीं पर दायकों की सहायता से 'सर्वज्ञ-शासनाभिवृद्धि-प्रेस' नामक प्रस की स्थापना की। बाद में आगे चलकर इस प्रकार के अनेक प्रसों की स्थापना हुई। इसके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थों के प्रचारार्थ प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया गया और सर्वप्रथम इसके लिए 'मिलिन्दपञ्ह' को सिंहली अनुवाद के साथ प्रकाशित करने के लिए चुना गया क्योंकि विरोध-पक्ष के खंडन एवं अपने पक्ष की स्थापना के लिए यही पालि का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन १८७७-७८ ई० में श्री गुणानन्द के ही सम्पादन में हुआ।

गुणानन्द क शास्त्रार्थ की ओर 'थियोसाफिकल सोसाइटी' के संस्थापक अध्यक्ष कर्नल हेनरी स्टील आल्काट का ध्यान आकर्षित हुआ और वे भी बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए। वे सभी धर्मों का व्यापक समन्वय चाहते थे और मानव के आध्यात्मिक विकास में बौद्धोपदेशों के महत्व का अनुभव करते हुए उनके मूल अध्ययन के लिए वे सिंहल आये। वहाँ बौद्ध धर्म-विषयक अध्ययन में रत होकर शास्ता के उपदेशों के गूढ़ तत्वों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए तथा सिंहली बौद्धों से उनकी प्रगाढ़ मैत्री स्थापित

हुई तथा उनके निर्देशन में १८८० ई० में कोलम्बो में 'बुद्धिस्ट थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना हुई।

इस पुनरुत्थान की लहर ने यूरोपीय विद्वानों को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित किया और पालि तथा बौद्धधर्म की महिमा स्वयं यूरोपीय विद्वानों द्वारा प्रसारित होने लगी। चाइल्डर्स तथा रीज डेविड्स आदि ने पोर्तुगीज काल में धर्मान्धता की आग में भस्म होने से अवशिष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस प्रकार आगे चलकर सुखद परिणाम यह हुआ कि शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर ने 'प्राच्य शिक्षा विभाग' की स्थापना सिंहल में की और इससे पालि के अध्ययन को विशेष बल तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

सिंहल में पालि की शिक्षा की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ और राजधानी के सन्निकट ही वे एक ऐसे विद्यापीठ की स्थापना करना चाहते थे जहाँ पर भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों ही सिंहली पालि तथा संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर सकें। इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने 'हिक्कडुवे सुमङ्गल' को आमन्त्रित किया। वे एक बहुश्रुत भिक्षु थे। उन्हें अट्ठकथा-सहित सम्पूर्ण त्रिपिटक के गहन अध्ययन के साथ-साथ संस्कृत-भाषा पर भी पूर्ण अधिकार एवं पाण्डित्य प्राप्त था और इन सबके वे सर्वश्रेष्ठ पंडित थे। साथ ही प्रारम्भ हुए बौद्ध पुनरुत्थान काम में भी उनका सर्वाधिक योगदान था। गुणानन्द का ईसाई पादरियों के साथ जो सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था उसमें उनके सहायक के रूप में वे भी सम्मिलित हुए थे। अतः उन्होंने १८७४ ई० में 'विद्योदय परिवेण' की नींव डाली जो उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होता रहा और आज विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित है।

१८७५ ई० में कोलम्बो के बाहर 'पेलियगोडा' नामक स्थान में 'विद्यालंकार परिवेण' की स्थापना हुई। यह 'धम्मालोक' स्थविर द्वारा स्थापित हुआ था जिनके शिष्य 'रत्नपाल धर्माराम' नामक स्थविर अपने समय के पालि के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। इसी परम्परा में 'धम्मानन्द' नायकपाद हुए, जो इन पण्डितों के नायक भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा

बहुत बड़े विक्रमी और पराक्रमवान् राजा ने शत्रु राजाओं को परास्त किया उनकी पुरी 'जयवर्धनपुर' ऐसी ही थी जैसे इन्द्र का निवास अमरावती हो।

अपनी गुणवती भगिनी 'सरोजवती' की स्मृति में महार्ह कारगिरि नामक पर्वत पर उन्होंने 'सरोजवती' नामक विहार बनवाया,

और अपनी माता रानी 'सुमेधा' की स्मृति में उत्तम तथा महाशोभावाले महाविहार 'सुमेधा परिवेण' का निर्माण शुभ 'पब्बटवत' में कराया।"

६ विमलसार स्थविर—इन्होंने 'सासनवंसदीप' नामक काव्य लिखा जिसमें बौद्धधर्म का इतिहास व्यक्त है—

"तब महिषी (माया) उस (गर्भ) के दस मास पूर्ण होने पर अपने स्वजनों के भवन में जाने की कामनावाली हुई। प्रियकर प्रियतम राजा से उसने पूछा—देव मुझे देवदह नगर जाने की इच्छा है।

उस नरपति ने देवी के उस वचन को स्वीकार कर सुन्दर कपिलवस्तु से लेकर सारे मार्ग का कदली कदली-ध्वजा पूर्णघट आदि से स्वर्ग के सुरपथ की भांति सजवा दिया।

तब शैय्या से उठकर, द्वार के पास स्वयं जा (बोधिसत्त्व ने) पूछा—'यहाँ कौन है?' 'यहाँ महाराज छन्दक नामक मैं अमात्य हूँ।' नरेन्द्र ने कहा—छन्दक मैं निष्क्रमण करूँगा।

७ रत्नजोति (मातले)—इन्होंने 'गुणगुणचरित' नामक एक संक्षिप्त रचना में 'विद्यालय परिवेण' के संस्थापक आचार्य की प्रशंसा प्रस्तुत की है—

'मैं न मरा श्री गुणगुण संघ-स्वामी विद्यालय नामक परिवेण के प्रसिद्ध पति कालीश्वर तथा विविधकालाचार्य के उत्कृष्ट-चरित को मैं संक्षेप में कहता हूँ।

उस पंडित जनों के स्नेहयुक्त मित्रराज बुद्ध के सिद्धान्त की महती वृद्धि की कामना करनेवाले ने पंडित-जनों के हित-रूप इस सुन्दर प्रशस्त तथा प्रसिद्ध विद्योदय परिवेण का आरम्भ किया।

जनता के मानस-मन्दिर में दीप के समान और शताब्दी में उसके उत्तम में स्थित इसके अस्सीवीं वर्ष गाँठ पर लंका के बौद्धजनों ने आह्लादित होकर मनोहर-कुसुम से युक्त एक मन हो धूप दीप और पुष्प लेकर स्थविर के उत्तम और सुन्दर गुणों का स्मरण करके

नाना पूर्ण घटों चामरों तथा तोरणों से और सुन्दर पञ्चाङ्गिक बाजों के साथ जहाँ-तहाँ बड़ी ध्वज-पंक्तियों को उठाए हुए मुनिपुत्र लंका भूमि को अलंकृत किया।"

८. मेधानन्द (मोरतुवे)—इन्होंने 'जिनवंसदीप' नामक पालि ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थकार का आत्म-वर्णन इस प्रकार है—

"रत्ना भूषणों से भूषित शरीरवाली अर्थात् स्थूल स्तनों से शोभित मध्यदेश कुमारी का अभिनन्दित हरी पालकी में बैठकर जाय।

मालती की सुगन्धी माला पहन सुगन्धि से सुवासित केशों की वेणीवाली (देवी) से विमल-चन्द्र-प्रतिमावाली एवं विमल गतिवाली प्रमत्ता का कल्पना में चीन लिया।"

अंत में अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"लंका के अलंकारित नगर ग्राम में रत्नाकर के स्वामी गुण व भूषणों से भूषित विख्यात निर्मल विशाल दानशाला 'धर्मालोक' के उन्नत अलिन्द के सम्मुख में समर्थ उदार चतुर प्रकृष्ट सद्धानन्द स्थविर नामक गुरु भाग्यवान गुरु द्वारा उपसम्पदा से मिली शिक्षा से प्रसन्न अर्थों के समान रक्षा करते हुए सत्पादि प्रतिष्ठा की।

'धर्मविज्ञान के स्वामी सत्यविचारक गुण-सम्पत्तिवाले यतीन्द्र की शिक्षा-गुरु तथा उपाध्याय तथा उपसम्पदा से ग्रन्थ के अध्ययन के लिए रमणीय धर्मा राष्ट्र में उतरे।

पिता के पद को प्राप्त 'मेंग्डान' राजा ने मेरी कुशाग्र बुद्धि से प्रसन्न होकर पालन किया। "

८. पिपविसत (पिपुसत)—ये एक स्वाभाविक कवि थे। इनके ये तीन पालि काव्य ग्रन्थ सुन्दर कृतियाँ हैं—(१) 'महाकस्सपचरित (२) 'महानेक्खम्मचम्पू' (३) 'कमसाम्पत्ति'।

इनके नमूने हैं—

"तब पिप्पली माणव की माता ने नित्य ही उसे स्त्री लाने के लिए अनेक प्रकार से कहते हुए (इस वचन से) पुत्र को अतिशय रूप से पीड़ित किया।

उन ब्राह्मणों ने सलाह दी—'भो निश्चित रूप से 'मद्र' देश में 'सागल' (स्यालकोट) नामक श्रेष्ठ नगर है। वहाँ सुन्दरियों की खान है इसलिए इच्छित की साधना के लिए वहीं चलें।

मद्र देश के आभारण समान उस सागल नामक श्रेष्ठ पुर में जाकर नाना जनों से आकीर्ण वहाँ सुन्दर तीर्थ स्थानों को उन्होंने देखा।"

'महानेक्खम्मचम्पू' में बुद्ध के बाहर निकलने का वर्णन है—

"तब उस समाचार के श्रवण से उत्पन्न प्रीतिप्रमोद की अधिकता से परम हृदयवाले अनाथपिण्डिक गृहपति ने अपरिमित जनसमूह को ले पाँच सौ महाश्रेष्ठियों से अनुगमित होकर, योजन मात्र मार्ग पर अगवानी कर, अनेक प्रकार के पूजाभिमान करते निरन्तर होनेवाले सहस्रों साधुवादों से भुवन लोक के आच्छादित होते हुए जनसमूह द्वारा पूजित भगवान ने भिक्षु संघ के साथ निकल कर अपरिमित समय से संचित तीस पारमिताओं के अतिशय प्रभाव से उत्पन्न सारे त्रिभुवन के विस्मयदायक अति महान् बुद्धानुभाव से अचेतन पृथिवी के निम्न स्थानों को उन्नमित करते उन्नत स्थानों को समीभाव करते बिना बजाये भी वीणा वेणु मृदंग शंख ढोल आदि बाजों को बजाने तथा स्वयं ही अपना-अपना नाद को छोड़ने सम्पूर्ण नर नारियों द्वारा पहन गये सोने-चाँदी-मणि-रत्न के आभूषणों से अधिकतर

मानमान हुए सिंहों के सिंहनाद करते विविध रुचिर तोरण के शोभासार से मनोहर उठे द्वार प्रवेशमान सुवर्णाभ पूर्णघट पर दीपमाला से अलंकृत मंडपवान 'जयवन' नामक अनुपम विहार में प्रवेश किया।

'नमस्काराञ्जलि' में बुद्धस्तुति प्रस्तुत है—

"ब्रह्मा-विष्णु-शिव-इन्द्र-मानव-मनुज-गरुड़-पक्षियों के मुकुटों में जड़ी मणियों की किरण-रूपी-भ्रमर पंक्तियों द्वारा सेवित मुनिचरण-रूपी निर्मल कमल को मैं प्रणाम करता हूँ।"

१० ज्ञानतिलक (हैसिलोट)—ये बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। इनकी रचनाएँ हैं—(१) 'एकाक्षरकोशव्याख्या' (२) कच्चायन व्याख्या (३) 'निरुक्तिरत्नाकर' (४) 'मोहमुद्गर' संस्कृत नीति शास्त्र (५) 'कारिकाव्याख्या' आदि।

'कारिका' ग्रन्थ के आरम्भ में—

'सम्बुद्धि से उस उदार अनुपम तेज से जिसने माहात्म्यवान् के समूह को खद्योत-सा कर दिया तथा बुद्धिमान आदमियों को जिसने संकुचित कर दिया उस सद्धर्म-रूपी अमल सूर्य को मैं सिर से प्रणाम करता हूँ।"

अन्यान्त में—

"बुद्ध-शासन में एक नामवाली बड़ी शिक्षा में गौरव रखने मतिमान् और विनीत मुनिराज के वचन और शब्दशास्त्र में भी बड़ा स्थविर मण्ड मौ पधाराम हुए।

वे यतीश्वर प्रसन्न चित्त थे मेरे माता पिता आदि तथा साधु लोग प्रव्रज्या ग्रहण के लिए तरह वर्ष की छोटी ही आयु में सम न गये।

मेरा शिष्य-वर्ग के साथ मुझे उन्होंने प्रव्रजित किया और विहार उत्सवपालित किया।"

११ धिम्मकित्ति (महानाम)—इन्होंने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'दीप-' का दूसरा भाग २७ परिच्छेदों में अधिक लिखा। बुद्धपाद के सम्बन्ध इस्तान मिला है—

'जम्बुद्वीप में बोधगया के समीप ही एक ब्राह्मण कुमार, विवेद का वेत्ता विख्यात विद्या वाद के लिए घूमता हुआ एक विहार में गया।

१२ पञ्ञानन्द (यगिरल)—इन्होंने वर्तमान सदी के प्रारम्भ में 'महावंस' के तीसरे भाग को लिखकर आधुनिक काल तक उसे पहुँचाया।

'हिक्कडुव सुमङ्गल' के निधन पर वे लिखते हैं—

विद्योदय के प्रथम अधिपति प्रसिद्ध विद्या विपुल हृदय और सदा सत्य अपने समय के पूज्य महा अभिनायक श्री सुमंगल हा! स्वर्गवासी हो गये।

यह दुर्घटना समाचार सुनकर, शोकपूर्ण हृदय से रोते हा-हा नाद से सारी लंका को बधिर करते एकत्रित हो भिक्षु गण और अधिक रोये।

उत्तम नेता के योग्य गौरवपूर्ण भक्ति-पूजा करके उन्हें दग्ध कर दिया तब सारी लंका चन्द्र से वंचित आकाश की भाँति श्रीहीन हुई।

विद्यालंकार के नायक पाद महास्थविर 'धम्माराम' के निधन पर इन्होंने ये उद्‌गार कहे—

अपनी बुद्धि से अनेक ग्रन्थों के रचयिता और नायक धर्मशास्त्र के प्रवक्ता दीपनवासी (और) यतियों के नायक

विद्यालंकार नामक प्रसिद्ध शास्त्रमन्दिर में निवास करनेवाले महाप्राज्ञ महाकवि 'धम्माराम'

इन यतिराज स्वामी श्रेष्ठ के मृत्यु को प्राप्त होने पर सम्पूर्ण लंकावासी शोकाकुल हो गए।

अत्यन्त शोकाकुल दुःखित भिक्षुओं ने उनके मृत देह को जलाया।

१३ धम्माराम (यतकदुव)—आशुकवि व महाविद्वान् विद्यालंकार विश्वविद्यालय के प्राण हैं। वर्षों से इन्होंने व्रत ले रखा था—"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।" कविता उनके लिए अत्यन्त सरल काम था। 'धम्मारामसमानुचरित' नामक छोटी पुस्तिका इन्होंने लिखी। बाकी कविताओं में अभिनवीन तथा सुन्दर पद हैं। 'मनोरथपूरणी' की भूमिका में इनके पद हैं—

"बुद्ध से प्राप्त सुन्दर, चिन्तामणि या कल्पवृक्ष समान अनुपम जनता के मन-रूपी पुष्प की चाँदनी के समान श्रेष्ठ सुभद्र की छप से मैं वन्दना करता हूँ।"

विद्योदय (पेरादेनिया) विश्वविद्यालय में उपाधि से सम्मानित होते समय उन्होंने यह कविता बनायी थी—

"यह जो वह विद्योदय प्रसिद्ध श्रेष्ठ विद्यालय में चिरकाल से विद्या की उन्नति में निरत चित्त से रत अध्यक्ष 'बलगम' नामक प्रसिद्ध ग्राम के स्थविरपति महाविद्वान् श्रीमान् 'नियन्नन' नामक स्थविर हैं।"

'भक्तिगीत' में इनके करुण उद्गार हैं—

"पुत्र किसी को दुःख दे रहा है। कच्छप सांप गिलहरी अथवा जन्तु या किसी की तू हिंसा मत कर।

छोटे से भी प्राणी को पुत्र जानते देखते तू न मार अन्त में मक्खी मच्छर या खटमल को भी।

न दण्ड से न काठ के टुकड़े से न कमाई से या न हाथ से ही चौपाये पशु या किसी पर तू मत प्रहार कर।

आकाश में उड़ते अथवा वृक्ष पर बैठे विहग को काम के निमित्त से तू न मार।

पुत्र पक्षी गगन में उड़ते हैं तथा भवन को ही घर बनाते हैं। वे पुत्र वृक्ष में बैठ बच्चों का पालन करते हैं।

वे मधुर गायन करते हुए नीड़ को मधुर बनाते हैं। रंग तथा कूजन से भी वे नीड़ को सुन्दर बनाते हैं।

उनमें भी पुत्र कोई माता-पिता को पोसते हैं, बाल-बच्चों को पोसते हैं और पत्नी को भी पोसते हैं।

उनमें कोई एक ही पुत्रवाली है, वही एक पुत्र के आश्रय में रहती है। उसकी यही एक मात्र गति है, अत्यन्त अल्प में वह चिन्ता भी है।

पुत्र उस माता का मृत मृग की मारी के लिए आहार, प्यासी के लिए पानी लाकर घोंसले में देता है।

सूखे काठ के समान जिसके पेट से भी भूनी काँपती वह पुत्र को जोहती खड़ी रहती है।

उसके लिए बड़ी मेहनत से आहार ढूँढकर वह घोंसे में से जल्दी जल्दी माँ के पास आता है।

जो मृग पूर्व उसे मारा तो वह बुढ़िया क्या करेगी वह माता क्या खाये वह माता क्या पिये ?

पुत्र कौन उसे खिलायगा कौन उसे पिलायेगा कौन उसे आश्वासन देगा वह तो एक ही पुत्रवाली है ?

हे मृग वह अनाथ माता किसे आलिंगन करे किसको, मृग वह चूमे या किससे प्रियालाप करे।

पुत्र तू पत्थर का नहीं है न तो तू मिट्टी का है न तो तू काठ का है न तो तू निर्मित ही है।

एक बार ही पुत्र आ जा जब तक मैं जीती हूँ पुत्र मैं तेरे चरणों पर गिरती हूँ हे पुत्र आ जा।

तू ही एक मात्र पति है तू ही शरण है तेरे बिना मैं दीन-अनाथ हूँ कैसे मैं जीऊँ, कैसे मैं जीऊँ।

--

किसी की गर्भिणी प्रिय भार्या घोंसले में है हे पुत्र पति के आने की प्रतीक्षा करती हुई आहार चाहती है।

उसकी भी हे मृग प्रिय भार्या बच्चों को तथा परिसंविलों को देखती ठीक से सोय।

वे चिड़िया के बच्चे मुँह से चूँ चूँ भी न कर पासने के भीतर ही नष्ट हो गये।

दूसरे भी सुख सारे प्राणी सुख-सम्पुट दुःख के विरुद्ध हैं सभी सुखी होना चाहते हैं दुःखी नहीं।

मत तू किसी को मारे मत किसी का तिरस्कार, मत किसी को कोई मत भीड़ सताए।

१४ प्रकाशार्शित (कोइजुमि)—विद्यालयाय विश्वविद्यालय में पाली संस्कृत के वे विद्याप्राध्यापक हैं। जिनका भाषा में इन्होंने लिखी हुई पुस्तकें मिली हैं। इधर यह स्पष्ट कि पालि की पुस्तकों का प्रचार सीमित होता है पालि में बहुत नहीं मिलता। उनकी कविता के नमूने हैं—

'यह स्वच्छ शीतल अमधागगामी नदी किनारे पर शोभित तरुणा और लताओं से पुष्पराज के बन में सम्मानित कलरवना की सुनाग वन्या-सी दीखती है।

सो यह नदन पत्नी युवती प्रिया के साथ-साथ मधुर आम के फल को फोड़कर प्रिया के पुण समापन-सुख का साथ करते हुए गृह के सनातन प्रेम का निवेदन करता है।

अच्छी तरह देखने मुझ अति आश्चर्य होता है कि मार गनों के बीच में मरे मुख से माना है सिंह और मृग से सदा वैर त्यक्त कार जन्तु हैं और वे वहीं सहोदर की भाँति रत रहे हैं।"

१५ जितर्षम (मिगामुचे)—इन्होंने 'शीतमामिनी' नामक पालि काव्य लिखा है—

"चाँदनी के समान सम्पूर्ण से अमात्य सुराचाय उत्तर समुद्र में उसे सदानुम पुरुषरूपानयाम हु जिनकी कथन क्रम से शासित शील राशी हुई मार की सन्तान को सदा गुमन पराजित नहीं किया।

लाल की वाली सेना जाँ के शीत-काल से संयुक्त गंगा के तरंग की दोर वायुरा-सप्तमान मन्द वायु से कम्पित पुष्पराज से पूर्णित सुन्दर जन्म से सामराज अति पुण्य से शामिल हुआ।

कुन्द और चन्द्रबन्धु (कुमुद) के समान मन्दहासवाले सुन्दर आनन से युक्त लोक को आमन्त्रित करने के लिए घोर 'आवट्ट' (आवर्त-संसार) के बन्धन में पड़े सूर्यवंशी लोकबन्धु, अप्रमत्तों के बन्धु हे मुनिराज अबन्धु के बन्धु तुम्हीं मेरे एक बन्धु हो।

क्षीरसागर के चन्द्रमा के समान तुम श्वेत तथा शीतल हो। जनों के मानस को तुम तृप्त कर देनेवाले हो। तुम्हारे प्रति प्रसन्नता प्रदर्शन मात्र से 'महुकुम्भता' आदि भर कर देवता हुई। तुम्हीं कामप्रद मणि हो।"

कवि परिचय

"नील सागर के समान नारियल के वन में देव-मन्दिर समान अनेक मंजिलों की आपण (बाजार) वाले बिजली के दीपों से हतान्धकार व्योम-मार्गवाले वर्ग में आस्थावान सज्जनों के 'मिगम' नामक पुर में

कुन्द और हार सी श्वेत बालुका-विस्तृत प्रांगणवाले बौद्ध भिक्षुओं के वास करने के अनेक भवनवाले सदाचार, दान दया आदि से पवित्र भिक्षु वाले साधुओं के शेखर 'अभयशेखर' नामक विहार में"

१६ सुमङ्गल (सोगुत्त)—इस तरुण भिक्षु ने 'मुनिन्दापदान' नामक लघु काव्य लिखा है—

'जहाँ-तहाँ हंसयुगल कूज रहे थे जहाँ-तहाँ पुष्प लताएँ पुष्पित थीं जहाँ-तहाँ स्वच्छ क्रौंच निनाद से युक्त जहाँ-तहाँ कमल-कुन्द से वासित

सारस तथा मोर के झुंडों से युक्त मैना-तोता द्वारा आश्रित तथा भौंरों से लीन कमलिनी से युक्त था। इसे देख वे मन में बहुत प्रसन्न हुए।"

ग्रन्थ समाप्ति

" 'उडुगर' नामक प्रसिद्ध ग्राम में 'सुधम्मावास' नामक शुभ परिवेण में शासन के परम सेवा परायण 'सोगुत्त' नामक ग्राम में उत्पन्न स्थविर ने बुद्धाब्द २५०० (१९५६ ई०) में भक्तिपूर्वक इस ग्रन्थ 'मुनिन्दापदान' को रचा।"

सिंहल में पालि का पठन-पाठन बहुत बढ़ा हुआ है। भिक्षु तो पालि में दक्षता प्राप्त करना ही चाहते हैं गृहस्थ भी उससे वंचित नहीं हैं। विद्या-

लंकार और विद्योदय दोनों विश्वविद्यालय विशेषकर इसी उद्देश्य से स्थापित किए गए हैं जिनमें पालि के अध्ययन पर ध्यान दिया जाता है। इनमें प्राचीन प्रणाली को उतना आश्रय नहीं दिया गया है। इसलिए जैसे भारत में संस्कृत का गंभीर साहित्य लुप्त होता जा रहा है, वैसे ही यहाँ भी पालि के साहित्य के लिए भय है। पर भारत में जिस प्रकार से संस्कृत के गम्भीर साहित्य की रक्षा के लिए 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' जैसी संस्थाओं की स्थापना करके चेष्टा की जा रही है उसी प्रकार से सिंहल के उपर्युक्त विद्यालय भी अपने उद्देश्य-पूर्ति में सफल हैं।

— o —

नवाँ अध्याय

९ द्रविड़ प्रदेश में स्थविरवाद तथा पालि

द्रविड़ प्रदेश के बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में भारत के प्रकरण में ही लिखना चाहता था पर उसे यहाँ अलग लिखने का कारण यह है कि एक तो यहाँ के बौद्ध धर्म का सिंहल के साथ विशेषकर 'महाविहार' से घनिष्ट संबंध था। साथ ही यहाँ बौद्ध धर्म एक शताब्दी अधिक स्थित रहा जब कि उत्तर भारत ग्यारहवीं सदी में ही बौद्ध विहीन हो गया था।

चोळ पाण्ड्य द्रविड़ प्रदेश को तमिलनाड कहा जाता है। 'चोळ' में अशोक के समय धर्मदूतों के जाने का उल्लेख उसके अभिलेखों में आता है। द्रविड़ देश के समीपतम स्थान चितलपुर के अटिमटिया—दामोदर पहाड़—में अशोक शिलालेख प्राप्त है जो धर्मलिपि ब्राह्मी में है। और यह धर्मदूतों के जाने के पहले से है। द्रविड़ देश में ब्राह्मण तथा कुछ संख्या में श्रमण भी आ चुके थे। धर्मदूत जिस जगह उतरे थे उसके बारे में द्रविड़पुर अट्ठकथाकार 'धम्मपाल' कहते हैं—

"सद्धम्मावतरट्ठाने पट्टने नागसव्हये।
धम्मासोकमहाराजविहारे वसता मया॥

(नेत्तिप्पकरण-अट्ठकथा के अन्त में)

अर्थात् सद्धर्म के उतरने के स्थान 'नागपट्टन' के धर्माशोक महाराज के विहार में बसते मैंने यह पुस्तक लिखी। 'नेगापट्टम' तंजौर जिले में अब भी समुद्र तटपर एक अच्छा कस्बा है। नेगापट्टम के बन्दरगाह पर उतर कर धर्मदूत धर्म के प्रचार में संलग्न हुए थे। जैसा पिछली शताब्दियों में उत्तर में सर्वत्र महायान फैल गया था वह बात द्रविड़ प्रदेश में नहीं

हुई। यहाँ अन्त तक स्थविरवाद महाविहारीय ही रहा। द्रविड़ प्रदेश के भिक्षुन ही द्रविड़ आचार्यों का आज भी स्थविरवादी देशों में बड़ा मान है। दोनों

(१) बुद्धदत्त—यह शायद बुद्धघोष से पहले सिंहल आए थे। दोनों की भेंट समुद्र में नौका पर हुई थी। इनके ग्रन्थ 'विनयविनिच्छय' में लिखा है—

"इति तम्बपण्णीय परमवय्याकरणेन तिपिटकनयविधिकुसलेन परमकविजनहदयपदुमवनविकसनकरेन सब्बजनसहन परमरतिकर-वर मधुर-वचनुग्गारेन उरगपुरवासीना बमालंकारभूतेन बुद्धदत्तेन रचितोयं 'विनयविनिच्छयो'।

द्रविड़ प्रदेश में नदी तट पर स्थित ताम्रपर्णी था और उसी प्रदेश में 'उरगपुर' (आज का उरेउर) नगर था। 'बुद्धदत्त' कवि और परम वैयाकरण थे। इनके ग्रन्थों से वर्णित स्पष्ट है। इनके ग्रन्थ हैं—(१) 'विनयविनिच्छय' (२) 'उत्तरविनिच्छय' (३) 'अभिधम्मावतार' (४) 'मधुरत्थविलासिनी' और (५) 'रूपारूपविनिच्छय'।

'विनयविनिच्छय' में ये कहते हैं—

"विनयपिटक-रूपी सागर के पार उतरने में भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिए जो नाव-सा है

जो इस विनिश्चय को प्राप्त होते हैं वे अत्यन्त उत्तुंग तरंग-माला वाले शील-समाधि-विघ्न रूप ग्राहों वाले शासन रूपी सागर का तर जाते हैं।"

'उत्तरविनिच्छय' में ऐसा व्याख्यान है—

"इस परम उत्तर ग्रन्थ को पार करने पर निर्विघ्नता को पार देखकर अमृत-रूपी सागर के पार उतर विनय-मार्गज्ञ सर मुक्त होता है।"

'अभिधम्मावतार' में धम्मराग का परिचय दिया गया है—

"नर-नारियों से भरे कुल की आकुलता से असंकीर्ण, समृद्ध सर्वांग परिपूर्ण स्वच्छ-सरी जलपान

नाना रत्नों से भरी दूकानों से समाकीर्ण नाना उद्यानों से शोभित रमणीय 'कावेरिपट्टन' में

"'उरगपुर' निवासी आचार्य भदन्त बुद्धदत्त द्वारा इस 'अभिधम्मावतार' नामक अभिधर्म में प्रवेश करानेवाला ग्रन्थ समाप्त हुआ।"

'खुद्दकनिकाय' के 'बुद्धवंस' की 'मधुरत्थविलासिनी' नामक अट्ठकथा के रचयिता भी यही हैं। जान पड़ता है और अट्ठकथाएँ लिखी जा चुकी थीं और यही केवल इनके हाथ आ पायी। इसमें इन्होंने कहा है—

"सद्धर्म में रत शीलादिगुण प्राप्त बुद्धसिंह द्वारा सत्कारपूर्वक सुचिर काल तक प्रार्थित होने पर इस 'बुद्धवंस' की अत्थवण्णना' का आरम्भ मैं करता हूँ।

बुद्ध की पंक्तियों के प्रकाशक प्राचीन अट्ठकथाओं के मार्ग का अनुसरण करते हुए मैंने 'बुद्धवंस' की अट्ठकथा बनायी।"

(२) धम्मपाल—द्रविड़ प्रदेश के इस आचार्य की कृतियाँ बुद्धघोष से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वास्तव में बुद्धघोष द्वारा छोड़े हुए कार्य की पूर्ति इनके द्वारा हुई है। इनकी रचनायें हैं—

(१) परमत्थदीपनी (खुद्दकनिकाय के उन ग्रन्थों की अट्ठकथा जिनका बुद्धघोष ने व्याख्यान नहीं किया है। इस प्रकार उदान इतिवुत्तक विमानवत्थु, पेतवत्थु थेरगाथा थेरीगाथा एवं चरियापिटक की यह अट्ठकथा है)

(२) नेत्तिप्पकरणअट्ठकथा

(३) दीघनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(४) मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(५) संयुत्तनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(६) अङ्गुत्तरनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(७) जातकट्ठकथा-टीका
(८) अभिधम्मट्ठकथा-टीका
(९) बुद्धवंस-अट्ठकथा-टीका
(१०) विसुद्धिमग्ग-टीका

इनका जन्म द्रविड़ प्रदेश के 'काञ्चीपुर' नामक स्थान में हुआ था। ये बुद्धघोष के पश्चात् हुए, अर्थात् पाँचवीं सदी के पश्चात्। युआन् च्वाङ ने जिन धर्मपाल का उल्लेख किया है वे इनसे गुरु तथा महायानी थे और नालन्दा के आचार्य थे।

इनकी शैली का नमूना है—

"महाकारुणिक, ज्ञेयसागर-पारङ्गत, निपुण गम्भीर, विविध नय की देशना देनेवाले नाथ की मैं वन्दना करता हूँ" (उदानट्ठकथा)।

"जिस महर्षि की चर्या सम्पूर्ण लोक के हितार्थ है, उस लोक के अध्यापक अचिन्त्य प्रभाव को मैं वन्दना करता हूँ" (चरियापिटक अट्ठकथा)।

"विनय-योग्यों के कमल-सरोवर में जो सद्धर्म की किरणों की माला-माला है जिसने महामोह-रूपी तम को चारों ओर से नष्ट करके शान्त किया है (विसुद्धिमग्गटीका)।

(३) अनुरुद्ध—ये भी काञ्ची के पास के ही 'कावेरिपट्टन' के रहनेवाले थे। इनके ग्रन्थ हैं—(१) 'अभिधम्मत्थसङ्गह' (२) 'नामरूप परिच्छेद' (३) 'परमत्थविनिच्छय'।

इनमें मुख्य ग्रन्थ तो 'परमत्थविनिच्छय' ही है, पर 'अभिधम्मत्थसङ्गह' अधिक सरल होने से थेरवादी देशों में अधिक प्रचलित हो गया और इसी कारणवश इसका अन्यत्र भी प्रचार हुआ।

ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुए कहा है—

"श्रेष्ठ काञ्ची राज्य के उत्तम 'कावेरी' नगर में कुलीन कुल में उत्पन्न बहुश्रुत ज्ञानी,

सम्मानित यशवाले परमार्थ-ज्ञाता अनुरुद्ध स्थविर ने ताम्रपर्णी प्रदेश के 'तंजोर' नगर में बसते हुए,

वहाँ के संघ-प्रधान द्वारा याचित हो निर्मल महाविहारवासियों की परम्परा पर आधारित 'परमत्थविनिच्छय' नामक प्रकरण को परमार्थ के प्रकाशन के लिए रचा।"

(४) कस्सप (चोळीय)—ये ईसा की बारहवीं सदी के अन्त में हुए। 'सारिपुत्त' ने इनकी प्रतिद्वन्दिता की और अपनी कृतियों में इन्होंने 'सारिपुत्त' की टीकाओं के दोषों का प्रदर्शन किया है। इनकी रचनाएँ हैं—

(१) 'मोहविच्छेदनी' (अभिधम्ममातिका-टीका) (२) 'विमतिविनोदनी' (विनयकथा-टीका)। सिंहल और द्रविड़ देश के विद्वानों में थेरवादी होते हुए भी आपस में जो प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान थी, इसकी स्पष्ट झलक हमें इनकी कृतियों में मिलती है। अपने बारे में ये कहते हैं—

"नाना जनों के निवास से अतिरमणीय चोल देश में भार को वहन करने में कुमपक्व के समान कावेरी के पवित्र जल से हितयुक्त मरंगमान राजाधिराज के उत्तम वंश से सुसन्तोपित

सम्पूर्ण उपभोग तथा परिभोग के धनों से नाना रंगों से भरी दुकानों से सुन्दर, नन्दन के स्वामी के समान ही चोळराज का पुर है, वहाँ के श्रेष्ठ, सुन्दर बौद्ध-विहार में जो रहते हैं।

विज्ञानी इस शोभायमान प्राकारोंवाले उस नगर के 'नागानन' नामक विहार में वास करते हुए,

नाम से पुनकूपर महाश्रेष्ठ काश्यप के समान आकाश में उदित चन्द्रमा की भाँति विस्तृत यशवाला दूसरे शास्त्रों और तीनों पिटकों में निपुण वादी-गजसमूह के विजय में सिंह के समान लीला करनेवाला

उन (काश्यप) ने अभिधम्मपिटक-रूपी सागर में बिखरे सारभूत

वस्तु-रत्न-समूह का विकास कर, सम्यक् ज्ञाताओं के गले को भूषित करने के लिए 'मोहविच्छेदनी' नामक रत्नावली बनायी।'

विनयटीका 'विमतिविनोदनी' में उन्होंने जो 'सारिपुत्त संघराज' का खंडन प्रस्तुत किया है, इससे स्पष्ट होता है कि उनकी मान्यता अभयगिरिक सिद्धान्तों की ओर थी जिनका उन्मूलन 'सारिपुत्त संघराज' ने किया था। 'कस्सप चोळीय' अन्तिम द्रविड़ पिटक-टीकाकार थे।

(२) बुद्धप्रिय दीपङ्कर—इनका समय तेरहवीं शताब्दी है। इनकी रचनाएं हैं—(१) 'महारूपसिद्धि' (व्याकरण) (२) 'पज्जमधु' आदि। पज्जमधु पालि की बहुत सुन्दर रचना है। यह एक शतक है। इसके अन्त में इन्होंने 'आनन्द वनरतन' की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

'आरञ्ञक आनन्द' नामक महास्थविर के समान जिनका प्रबुद्ध पद्मप्रिय का सेवन करनेवाले बुद्ध के गुणों के सम्पन्न प्रेमी 'बुद्धप्रिय' द्वारा रचे गए 'पज्जमधु' का पान व्यक्ति-रूपी भौंरे करें।"

बुद्ध सौन्दर्य वर्णन

"इन्दीवर के भीतर स्थित भ्रमर-पंक्ति के समान, पद्म वन-समता के सरोवर के तट पर भ्रमण करती नवयौवन की शोभा की पदलिपि-सी तुम्हारी भौं-सम्पन्न पलकों की पंक्ति सारे पाप को दूर करे।

दोनों कन्धों और बाहुओं-रूपी तोरण के बीच गर्दन की शाखा पर स्थित शिर-रूपी मंगल घट के ऊपर उत्सव के लिए मन से स्थापित नील-चामर जैसे तुम्हारे केश त्रिभुवन के मंगल के लिए होवें।"

इस प्रकार यह 'पज्जमधु' एक सुन्दर काव्य है।

महाकच्चायन के व्याकरण की टक्कर पर जब 'मोग्गल्लान' ने एक नये पालि-व्याकरण की रचना की तो 'बुद्धप्रिय' ने कच्चायन-व्याकरण की प्रतिष्ठा के लिए 'महारूपसिद्धि' नामक कच्चायन-व्याकरण पर आधारित ग्रन्थ को प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल अट्ठकथा और दर्शन की उद्भावना करनेवाले ही नहीं प्रत्युत बौद्ध कवि भी द्रविड़ देश में उत्पन्न हुए। प्राचीन द्रविड़ भाषा में भी 'मणिमेखलाई' आदि काव्य प्रस्तुत किये गये।

द्रविड़ प्रदेश से बौद्ध धर्म का उच्छेद

चौदहवीं सदी में मलिक काफूर ने मदुरा को जीता तथा सारे मन्दिरों और विहारों को ध्वस्त कर दिया। वहाँ घनघोर अत्याचार किया गया। प्रसिद्ध यात्री इब्नबतूता ने इस अत्याचार का आँखों देखा वर्णन उपस्थित किया है—

"एक रात को सुल्तान एक जंगल में घुसा जहाँ काफिरों ने शरण ली थी। वहाँ दूसरे दिन सवेरे उनको उन काठ के खम्भों में बाँधकर मार दिया गया जिनको वे ही रात को ढो लाये थे। तब उनकी स्त्रियों के केशों को खम्भों में बाँधकर वैसे ही मार कर छोड़ दिया गया। ऐसा आचरण करते मैंने किसी भी शासक को नहीं देखा।"

बौद्धविहारों को तुर्कों ने लूट लिया और इन्हें वे मध्य-एशिया से ही लूटते हुए चल आ रहे थे। ऐसे निर्मम हत्यारों से भिक्षु अपने को पीत कपड़ों में रखकर कितने दिनों तक बच सकते थे! जो जीवित बचे वे सिंहल भाग गये और बिना ग्वाले की गायों की भाँति जो बौद्ध गृहस्थ बच रहे, वे ब्राह्मणों के शिष्य हो गये।

इस तरह द्रविड़ प्रदेश से बौद्ध धर्म का उच्छेद हो गया।

—•—

तृतीय खंड

अन्यत्र पालि



पहला अध्याय

१ बर्मा में पालि

१ थेरवाद—बर्मा तथा सुवर्णभूमि में अशोक के समय बौद्ध धर्म-दूत 'सोण' और 'उत्तर' गये थे। तब से लेकर पाँचवीं सदी तक अर्थात् लगभग ७०० वर्षों तक थेरवाद ही बर्मा में प्रचलित रहा। 'ह्मावजा' के समीप 'मौङ्गान' में दो स्वर्णपत्र अभिलेख मिले हैं जिनमें दक्षिण की चौथी पाँचवीं सदी की कदम्ब लिपि तथा पालि भाषा में उत्कीर्ण है—

"ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो एवंवादी महासमणो॥

यहीं पर ताम्रकोषी के समान बीस स्वर्ण-पत्रों पर लिखी एक पोथी मिल गयी जो पालि में है, जिसमें है—

"अभिञ्ञासच्चवग्गा महत्थाएर' आदि॥

इससे पता लगता है कि पाँचवीं-छठी सदी में बर्मा में हीनयान अर्थात् थेरवाद ही स्थित था पीछे यहाँ महायान फैला। तमोद (केरल) वंश के 'शिन् अर्हन्' भिक्षु हुए। वे त्रिपिटक और शास्त्रों में निपुण तथा चतुर थे। शिन् अर्हन् अरण्य में वास कर रहे थे। लोगों ने समझाया और पास उनको में आ गयी। वे राजा अनुरुद्ध से मिलने गये।

राजा के पूछने पर उन्होंने कहा—"मेरा वंश भगवान् बुद्ध का वंश है। मैं भगवान् बुद्ध के गंभीर सूक्ष्म त्रिपिटक-वर्णित धर्म का अनुगमन करता हूँ।"

"तो भन्ते मुझे भी भगवान के उपदेशित धर्म का थोड़ा-सा उपदेश कीजिये।"

शिन् अर्हन् ने राजा अनुरुद्ध को बुद्ध के शुद्ध धर्म का इतना सुन्दर उपदेश दिया कि वह बोल उठा—"भन्ते आपको छोड़ कोई हमारा शरण नहीं

मेरे स्वामी आज से हम अपना शरीर और जीवन आप को अर्पित करते हैं। भन्ते मैं आपके सिद्धान्तों को अपनाता हूँ।"

इस प्रकार राजा ने वज्रयान-महायान को छोड़ भिक्षु अर्हन् के धर्मवाद को स्वीकार किया।

बर्मा में कई जातियों का समागम था। तलैंग पुराने और सबसे अधिक सभ्य थे। उत्तर से 'म्रम्म' बड़ी संख्या में आकर बस गए। इनका तिब्बतियों के साथ वही सम्बन्ध है जो हमारे साथ ईरानियों का। म्रम्म ही शासक थे।

अनुरुद्ध ने अपने एक मंत्री को भेंट देकर 'थातोन्' के राजा मनोहर के पास धर्म-ग्रन्थों और बुद्धधातुओं को मांगने के लिए भेजा। थातोन्-राजा का उत्तर था—"तुम्हारे जैसे मिथ्यादृष्टिकों के पास पिटक और बुद्धधातु नहीं भेजी जा सकती—केशरी सिंह राज की चर्बी सुवर्ण पात्र में ही रखी जा सकती है, मिट्टी के बर्तन में नहीं।

अनुरुद्ध यह सुनकर आग भुन गया और जल तथा स्थल मार्ग से सेना ले थातोन् पर चढ़ा तथा मनोहर और उसके मन्त्रियों को कैदी बना 'अरिमर्दनपुर' (पगान) लाया गया। साथ ही ग्रन्थों के साथ उनके जानकार विद्वान् भिक्षु भी 'पगान' लाये गये। वह बड़ा ही आकर्षक दृश्य था जब कि राजा के बत्तीस श्वेत हाथियों के ऊपर त्रिपिटक तलैंग से म्रम्म देश में लाया गया और उनके साथ बड़े सम्मान और सत्कार के साथ भिक्षु भी साथ गये।

इस विजय का क्या प्रभाव हुआ इस सम्बन्ध में एक फ्रेंच विद्वान् ने ये उद्गार व्यक्त किये हैं—

"युद्धक्षेत्र में विजयी बर्मी बौद्धिक तौर से पराजित हो गये। इसी समय उस अद्भुत वास्तुविद्या और साहित्य का निर्माण होने लगा जिससे पगान बौद्ध राजधानी बना दिया गया। उत्तरी और उत्तरपूर्वीय भारत के प्रायः तीन शताब्दियों से पड़ते प्रभावों ने धीरे-धीरे बर्मी लोगों को इस योग्य बना दिया कि राजा अनुरुद्ध की विजय से प्राप्त तलैंग सभ्यता को अपना सकें। उसी समय बर्मी स्वरों और पत्थर तथा ईंटों के अभिलेखों के लिए विदेशी वर्णमाला से साधारण बर्मी-वर्णमाला तैयार की गयी। इस नयी

बपमाला में त्रिपिटक लेखबद्ध हुआ। बर्मी राजधानी पगान में धार्मिक शिक्षा के लिए संस्कृत को हटा पालि ने स्थान ले लिया।

स्थविर भिक्षुओं के चरणों में बैठकर बर्मी जनता और राज-दरबार ने हीनयान की दीक्षा ली और जल्दी-जल्दी एक के बाद एक भव्य विहार और मन्दिर भारतीय तथा सिंहल भिक्षाचार्यों के तत्वावधान में बनने लगे।

बर्मा में तांत्रिक बौद्ध धर्म और उसके पुरोहित आरी विदा हुए और एक नया ऐतिहासिक युग आरम्भ हो गया।

शिन् अर्हन् के प्रभाव और वाग्मिता तथा राजा अनुरुद्ध की उत्साहपूर्ण सहायता से बुद्ध का सरल और शुद्ध धर्म सारे ब्रह्म देश में फैलने लगा। देश के कोने-कोने से सैकड़ों जन आ-आकर भिक्षु-दीक्षा लेने लगे। पगान (अरिमर्दनपुर) स्थविरवाद के केन्द्र के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। सिंहल के राजा विजयबाहु ने धार्मिक ग्रन्थों और भिक्षुओं को भेजकर शासन की स्थापना में अनुरुद्ध से मदद माँगी। ब्रह्म संघ ने उतना ही नहीं भेजा, प्रत्युत सिंहलराज के लिए एक श्वेत हाथी भी भेजा और बदले में भगवान् की दन्तधातु के लिए याचना की। इस इच्छा की पूर्ति सिंहलराज द्वारा हुई।

इससे पहले बुद्ध की कुछ अस्थियाँ अनुरुद्ध को प्रोम किलरा से मिली थीं। इनके ऊपर अनुरुद्ध ने 'स्वेजिगोन' का महास्तूप बनवाना शुरू किया जिसकी समाप्ति उनके योग्य पुत्र और उत्तराधिकारी 'क्यन्जित्था' के हाथ से हुई। इस स्तूप के चारों तरफ पुरातन तैंतीस 'नाट्स' (देवताओं) के मन्दिर हैं। उनके बारे में पूछने पर अनुरुद्ध ने कहा था—

"मनुष्य नये धर्म के लिए नहीं आना चाहते हैं। अच्छा तो उन्हें अपने पुरातन देवताओं के लिए आने दो। वे इस तरह धीरे-धीरे सच्चे पथ पर आ जायेंगे।"

अनुरुद्ध ने अनेक बार धर्माचार्यों को भेजकर सिंहल से त्रिपिटक की प्रतियाँ मँगवाईं। शिन् अरहन् ने थातोन् के त्रिपिटक से उनकी तुलना करके एक अधिक शुद्ध संस्करण तैयार किया। शिन् अर्हन् के उद्योग से

तैलङ्ग जाति की संस्कृति ने ब्रह्म देश को बहुत थोड़े समय में संस्कृत और सभ्य बना दिया।

पगान में अनुना भी एक विशाल बुद्ध प्रतिमा खड़ी है जिसके दोनों ओर दो मूर्तियाँ हाथ जोड़े जमीन पर घुटने टेके खड़ी हैं। इनमें एक मुकुटधारी राजा क्यन्जित्था की और दूसरी संघराज शिन् अर्हन् की है।

अनुच्छ के अभिलेख में उत्कीर्ण है—"श्री दयधर्मोय उपयानपति महार श्री अनिरुद्धदेवस्स।

क्यन्जित्था (१०८४-१११२) पिता की भाँति योग्य और शक्तिमान था। उसने बहुत से स्तूप और मन्दिर बनवाये जिनमें पगान का 'आनन्द विहार' बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध है। इसकी पहली परिक्रमा की दीवारों में अस्सी मचान हैं जिनमें बुद्धजीवन के आरम्भ से बुद्धत्व प्राप्ति तक की घटनाएँ अंकित हैं। इन मूर्तियों को 'जातकनिदानकथा' के अनुसार अंकित किया गया है। दीवारों और विहार की छतों पर फलकदार मिट्टी की चमकीली स्लाबसियाँ हैं। प्रत्येक स्लाबसी पर पर्लेख में संक्षिप्त लेख हैं। दूसरे तल पर मिट्टी की चमकीली स्लाबसियाँ लगायी हुई हैं जिनमें सम्पूर्ण साढ़े पाँच सौ (५४७) जातक अंकित हैं। सारे मूर्ति-फलकों की संख्या १४७२ है।

शिन् अर्हन् की मृत्यु के समय बर्मा पालि-पिटक का अनुयायी हो चुका था। शिन् अर्हन् के बाद पंथगु संघराज हुए। नरथु और 'मिन्-शिन्सा' के झगड़ा में नरथु के कहने पर पंथगु मध्यस्थ बने। पंथगु को विश्वास देकर नरथु ने मिन्-शिन्सा को बुलवाया और अपने यहाँ बाग में धोखे से विष देकर मरवा डाला। इससे पंथगु बहुत नाराज हुए। वे देश छोड़ सिंहल चले गये और नरथु के जीते तक नहीं रहे।

६० वर्ष की अवस्था में जब संघराज बर्मा लौटे तो उनका बड़ा स्वागत हुआ। वे अधिक दिनों तक नहीं जी सके। उनके बाद स्थविर भिक्षु 'उत्तरजीव' संघराज हुए। सिंहल स्थविरवाद का केन्द्र था। इसलिए यहाँ बहुत से तीर्थयात्री जाया करते थे। एक बार 'उत्तरजीव' के साथ 'छपटा'

ग्रामवासी एक २० वर्ष का श्रामणेर भी गया। सिंहल भिक्षुओं की बातचीत के दौरान में मालूम हुआ कि भिक्षु महिन्द अशोक-पुत्र महेन्द्र के उत्तराधिकारी थे और 'उत्तरजीव' मोग्गलिपुत्त के। श्रामणेर 'छपट' की उपसम्पदा सिंहल में हुई। नाम पड़ा '[illegible]'। 'उत्तरजीव' संघराज लौट गये। भिक्षु महेन्द्र ने त्रिपिटक की पाठ-तुलना की थी और प्राचीन त्रिपिटक से सिंहल त्रिपिटक को अधिक शुद्ध बतलाया था। अब सिंहली उपसम्पदा भी श्रेष्ठ मानी जाने लगी। 'छपट' पूरे दस साल तक सिंहल में रहे। उन्होंने सोचा—"बर्मा में भिक्षु विधिपूर्वक उपसम्पन्न नहीं हैं। उनके साथ मैं विनयकर्म नहीं कर सकता। उसके लिए पाँच और भिक्षुओं की आवश्यकता होगी। चार और भिक्षुओं को साथ ले बर्मा लौटने के विचार से उन्होंने ताम्रलिप्ति (बंगाल) के स्थविर 'सीवली', कम्बोजराज के पुत्र 'ताम्रलिन्द', काञ्चीपुरी के 'आनन्द' महास्थविर और लंका के 'राहुल' महास्थविर को इस काम के लिए साथ लिया।

चपट चारों साथियों के साथ ११८१-८२ में बर्मा (पगान) लौटे। उन्होंने दूसरे भिक्षुओं के साथ विनयकर्म करने से इनकार कर दिया। इस प्रकार ११८१-८२ में बर्मा में सिंहल संघ और प्रथम संघ नामक दो संघ बन गये।

दोनों की परम्परा मिलाकर समझौते की कोशिश की गयी, किन्तु उसका कोई असर नहीं हुआ। 'चपट' राजी नहीं हुए। सिंहल संघ का आकर्षण इतना अधिक था कि उसके अनुसार भिक्षु बनने के लिए, इरावती में बनाये गये नाव के बेड़े में आकर बहुत से लोग भिक्षु बनने लगे। सिंहल संघ की संख्या और प्रभाव बढ़ने लगा। 'चपट' के साथियों में लंका के राहुल सबसे अधिक पण्डित थे। वे एक सुन्दरी कन्या पर मुग्ध हो गये। उन्होंने चीवर छोड़ने का निश्चय कर लिया। समझाने-बुझाने का प्रयत्न निष्फल हुआ और राहुल चीवर छोड़ मलाया चले गये।

बाद दिन बाद 'चपट' भी मर गये। सीवली, आनन्द तथा ताम्रलिन्द पगान में धर्मप्रचार करते रहे। उनमें मतभेद हुआ था पर सिंहल संघ बढ़ता ही गया और उसका प्रभाव सारे बर्मा पर पड़ा।

यह वही समय था जब कि कुतुबुद्दीन के सेनापति मुहम्मद बिन-बख्तियार ने नालन्दा तथा विक्रमशिला को ध्वस्त कर दिया था और सारे भिक्षु इतनी निर्दयता से मारे गये कि वहाँ के पुस्तकालयों के ग्रन्थों को पढ़कर बतलाने-वाला कोई नहीं रहा था। भारत में विहारों और भिक्षुओं के सर्वनाश के साथ महायान (वज्रयान) बौद्ध धर्म भी सदा के लिए लुप्त हो गया।

नरपतिसिथु (१२१० ई०) का उत्तराधिकारी 'हितिलो-मिन्लो' (१२१०–१४ई०) ने बोध गया के मन्दिर के नमूने पर एक मन्दिर 'पगान' में बनवाया। उसके बाद 'क्यास्वा' गद्दी पर बैठा। 'क्यास्वा' स्वयं त्रिपिटक का विद्वान् था। कहते हैं उसने त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं और टीकाओं का तीन बार पारायण किया था। अपने अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए उसने 'परमत्थबिन्दु' नामक पुस्तक लिखी थी। 'सद्दबिन्दु' नामक व्याकरण की पुस्तक भी उसने लिखी थी। उसकी कन्या भी विदुषी थी जिसने 'विभत्यत्थ' नामक पालि व्याकरण की एक छोटी पुस्तक रची।

'क्यास्वा' के पौत्र 'नरथिहपते' अथवा 'श्रीत्रिभुवनादित्य पवरधम्म-राज' (१२५४-८७ ई०) इस वंश का अन्तिम राजा था जिसके साथ ही दो सौ वर्षों से चली आ रही पगान की ज्योति बुझ गयी। १२८७ ई० में कुबलाखान् की सेना ने पगान पर आकर अधिकार कर लिया।

२ छपद सद्धम्म जोतिपाल—इनके ग्रन्थ हैं—(१) 'अभि-धम्मत्थसङ्खेप' (२) 'कच्चायननिद्देस' (३) 'विनयगूळ्हत्थदीपनी' (४) 'नामचारदीपक' (५) 'सीमालङ्कारटीका' आदि। ये कहते हैं—

'बुद्ध-निर्वाण के १९८० वर्ष पूरा होने पर यहाँ समुद्र 'अरिमद्दनपुर'
(पेगू) से 'तम्बपण्णि' (लंका) पहुँच श्री पराक्रमबाहु राजा षष्ठ को पा

और महास्वामी से धर्म के मर्मों को अच्छी तरह गुजार कर 'जयवर्धन'
(कोट्टे) नामक पुर में आपत्तिहीन विनयानुसार सीमा बँधवायी
भिक्षुओं को 'विनय' और 'अभिधम्म' सिखाया प्रज्ञा से युक्त हृदय

शासन धर्मों पर दयालु, निर्लोभता, पराक्रम और शील के गुणों से प्रशस्त, श्रद्धा के धनी सम्पूर्ण शिष्यों पर अनुकम्पा करनेवाले

सारे बर्मा के साथ त्रिपिटक-पारंगत 'छपद' नामक यतिराज के प्रिय शिष्य ने नाना धर्मों की इस 'परमत्थ वण्णना' को मुनि के शासन के हितार्थ संक्षेप से रची।"

धर्म छिन्न-भिन्न

मंगोलों का आक्रमण होने से अन्य लोग बिलकुल निर्बल हो गये और इसका लाभ शानों ने उठाया। इसी समय उत्तर के पूर्वन्तु शान् की बाढ़ बढ़ और बवंडर की भाँति वे सारे बर्मा में फैल गये। उनके शासन में भिन्न-भिन्न रूप से रहा। पहले उन्होंने मंगोलों के सामन्त के तौर पर शासन करते हुए 'पिनिया' (विजयपुर) को अपनी राजधानी बनाया और फिर 'आवा' (रत्नपुर) में शासन शुरू किया। १२८७ में एक शान 'वरेरु' की अधीनता में दक्षिणी बर्मा में पेगू को अपना दूसरा केन्द्र बनाया। इन बर्बरों के प्रहार से और वातों के साथ विद्या को भी बहुत हानि हुआ, लेकिन ये भी सांस्कृतिक प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। उनका एक राजा 'थोहन्' बौद्ध हो गया। उसके बड़े भाई भी बौद्ध थे। मंगोल विजय के बाद यही तीनों बर्मा के शासक थे। बौद्ध धर्म चीन और तिब्बत में था, इसलिए शान उससे अपरिचित नहीं थे। पिनिया में धीरे-धीरे कितने ही विहार बन गये, पठन-पाठन होने लगा। कुछ शान सैनिक शासित बौद्ध धर्म के भी सामन्त थे, अतः उसका भी प्रभाव पड़ा।

१ धम्मचेति (१४७२-९२ ई०)—पेगू के राजा की लड़की का नाम शिन्-सा-बू था। वह पहले आवा और फिर पेगू में रानी रह चुकी थी। वह अन्तःपुर में भाग निकलना चाहती थी। 'धम्मचेति' और उसके साथी भिक्षुओं ने उसे भगाया था। उनकी सहायता से भाग निकलने में वह सफल हुई और फिर पेगू की रानी बनी। दोनों भिक्षुओं में एक को राज्य का भार दे स्वयं मुक्त होना चाहती थी। दोनों में समान भाव होने से उसका निर्णय उसने भाग्य पर छोड़ दिया। एक दिन एक ...

से एक में गृहस्थ का वस्त्र और दूसरे में चीवर रख लिया। गृहस्थ परिधान वाला पात्र 'धम्मचेतिय' के हाथ में पड़ा। 'धम्मचेतिय' ने चीवर छोड़ शिन्-सा बू की कन्या से ब्याह कर लिया। शिन्-सा-बू 'श्वेदगान-चैत्य' में जा धर्म सेवा करने लगी। आज 'श्वेदगान' का वैभव शिन-सा-बू की ही देन है।

'धम्मचेतिय' के समय सद्धर्म का सितारा फिर चमका। यद्यपि वह गृहस्थ हो गया था पर धर्म पर उसका अनुराग था। इधर जो संघ में शिथिलता आ गयी थी उसको हटाने के लिए उसने २२ भिक्षु ६ जनवरी १४७६ में सिंहल भेजे। दो जहाजों में ग्यारह-ग्यारह भिक्षु अनुयायियों सहित चले। उनके अगुआ 'चित्रदूत' और 'रामदूत' थे। दोनों पोतों में 'चित्रदूत' का पोत २१ फरवरी १४७६ को लंका पहुँचा और उसने सिंहल के राजा भुवनेकबाहु को 'धम्मचेतिय' का स्वर्णपत्र और भेंट दी। रामदूत का पोत प्रतिकूल हवा होने के कारण आफत में पड़ गया और वह १४ जून को सिंहल पहुँचा। कल्याणी गंगा को सीमा बना सिंहल के भिक्षुओं ने उन्हें उपसम्पदा दी।

२१ अगस्त १४७६ ई० को एक पोत ग्यारह भिक्षुओं और उनके शिष्यों के साथ बर्मा लौटा। दूसरे पोत पर आफत आयी और छह भिक्षु और उनके चार शिष्य मर गए। बाकी तीन वर्ष बाद १२ नवम्बर १४७९ में बर्मा लौटे।

ये कल्याणी सीमावाले भिक्षु हुए। राजा 'धम्मचेतिय' ने सारे राज्य में घोषणा कर दी—जो पठाम् हैं और सिंहल में उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुओं से उपसम्पदा लेना चाहते हैं वह कल्याणी सीमा में आवें और उपसम्पदा लें। जो नहीं चाहते वे जैसे हैं वैसे ही रहें। राजा की घोषणा का प्रभाव हुआ और कुछ ही समय में १५,६६६ भिक्षुओं ने नयी उपसम्पदा ली। धम्मसंघ सिंहलसंघ में परिणत हो गया। धम्मचेतिय ने इसी संघ को मान्यता दी। प्राचीन सोण-उत्तर की परम्परा सर्वथा उच्छिन्न हो गयी।

४ आधुनिक काल (१४७६) पेग्वार की 'महाविहार-परम्परा' बर्मा में मानी जाने लगी। चपट जातिपाल के समय भी कुछ पुष्प लोग साण उत्तर के अनुयायी रहे थे। उस समय बर्मा कई राज्यों में बँटा हुआ था। १५२७ ई० में 'थोहन्ब्वा' (थीहमवा) राजा के सिंहासन पर बैठा। वह बड़ा लालची और क्रूर था तथा विहारों की संपत्ति लूटने से बाज नहीं आता था। यही नहीं उसने धार्मिक पुस्तकों में आग लगवा दी। भिक्षुओं को भोजन के लिए आमन्त्रित कर जाल पर उन्हें मरवा दिया। इस प्रकार से मारे गये भिक्षुओं की संख्या तीन हजार थी। पर बर्मी जनता धर्म के बिना रह नहीं सकती थी। बौद्ध धर्म ने ही उसे सभ्यता संस्कृति दिया दी थी।

थोहन्ब्वा के शासन पर बर्मी सहायक अधिकारी मिनकिदामाद से यह अत्याचार सहा नहीं गया। १५४३ ई० में उसने ही उसे मार डाला। इसका कारण बताते हुए उसने कहा—"वह भिक्षुओं को सम्मान नहीं करता था, मानव प्राण को कुछ नहीं समझता था, दूसरे पुरुषों की स्त्रियों से बलात्कार करता था।" राजा की हत्या के बाद इसने राज्य लेने से इन्कार कर दिया और भिक्षु हो जंगल में चला गया।

पालि ग्रन्थों का बर्मा में कितना प्रचार था, यह पगान के अभिलेख से ज्ञात होता है। मुहकरीम प्रान्त के शासक तथा उसकी पत्नी ने १४४२ ई० में भिक्षुसंघ को अनेक उपहार दानस्वरूप भेंट किये। उसमें और वस्तुओं के साथ पुस्तकें भी थीं, जिसकी यह सूची यहाँ पर दी हुई है—

१ पाराजिकखण्ड
२ पाचित्तिय
३ भिक्खुनीविभङ्ग
४ विनयमहावग्ग
५ विनयचूळवग्ग
६ विनयपरिवार
७ पाराजिकखण्ड-अट्ठकथा
८ पाचित्तियादि-अट्ठकथा

९. पाराजिककण्ड – टीका
१० तेरसकण्ड – टीका
११ विनयसङ्गह – अट्ठकथा (महा)
१२ ,, ,, (चूळ)
१३ कङ्खावितरणी – अट्ठकथा
१४ खुद्दसिक्खा – टीका (प्राचीन)
१५ ,, ,, (नवीन)
१६ कङ्खा-टीका (नवीन)
१७ विनयगण्ठिपद
१८ विनय-उत्तरविनिच्छय-अट्ठकथा
१९ विनयविनिच्छय-टीका (उत्तरकालीन)
२० विनयकम्मनिद्देस
२१ धम्मसङ्गणि
२२ विभङ्ग
२३ धातुकथा
२४ पुग्गलपञ्ञत्ति
२५ कथावत्थु
२६ मूलयमक
२७ इन्द्रिययमक
२८ तिकपट्ठान
२९ दुकतिकपट्ठान
३० दुकपट्ठान
३१ अट्ठसालिनी – अट्ठकथा
३२ सम्मोहविनोदनी – अट्ठकथा
३३ पञ्चपकरण – अट्ठकथा
३४ अभिधम्म – अनुटीका
३५. अभिधम्मत्थसङ्गह – अट्ठकथा
३६ –टीका
३७ अभिधम्मत्थविभावनी – टीका
३८ सीलक्खन्ध
३९. महावग्ग
४० पाथेय्य
४१ सीलक्खन्ध – अट्ठकथा

४२ महावग्ग – अट्ठकथा
४३ पाथेय्य – अट्ठकथा
४४ सीलक्खन्ध – टीका
४५ महावग्ग – टीका
४६ पाथेय्य – टीका
४७ मूलपण्णास
४८ मूलपण्णास – अट्ठकथा
४९ मूलपण्णास – टीका
५० मज्झिमपण्णास
५१ मज्झिमपण्णास – अट्ठकथा
५२ मज्झिमपण्णास – टीका
५३ उपरिपण्णास
५४ उपरिपण्णास – अट्ठकथा
५५ उपरिपण्णास-टीका
५६ सगाथवग्गसंयुत्त
५७ सगाथवग्गसंयुत्त – अट्ठकथा
५८ सगाथवग्गसंयुत्त – टीका
५९ निदानवग्गसंयुत्त
६० निदानवग्गसंयुत्त – अट्ठकथा
६१ खन्धवग्गसंयुत्त
६२ खन्धवग्गसंयुत्त – टीका
६३ सळायतनवग्गसंयुत्त
६४ सळायतनवग्गसंयुत्त – अट्ठकथा
६५ महावग्गसंयुत्त
६६ एककदुकतिक – अङ्गुत्तर
६७ चतुक्कनिपात – अङ्गुत्तर
६८ पञ्चकनिपात – अङ्गुत्तर
६९ छक्कसत्तकनिपात – अङ्गुत्तर
७० अट्ठकनवकनिपात – अङ्गुत्तर
७१ दसकएकादसकनिपात – अङ्गुत्तर
७२ एककनिपात – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा
७३ दुकतिकचतुक्कनिपात – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा
७४ पञ्चकादि – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा

७५ अङ्गुत्तर — टीका (१)
७६ अङ्गुत्तर — टीका (२)
७७ खुद्दकपाठ — मूल — अट्ठकथा
७८ धम्मपद — मूल — अट्ठकथा
७९ उदान — मूल — अट्ठकथा
८० इतिवुत्तक — मूल — अट्ठकथा
८१ सुत्तनिपात — मूल — अट्ठकथा
८२ विमानवत्थु — मूल — अट्ठकथा
८३ पेतवत्थु — मूल — अट्ठकथा
८४ थेरगाथा — मूल — अट्ठकथा
८४ थेरीगाथा — मूल — अट्ठकथा
८६ पाठचरिय
८७ एकनिपातजातक — अट्ठकथा
८८ दुकनिपातजातक — अट्ठकथा
८९ तिकनिपातजातक — अट्ठकथा
९ चतुक्क — पञ्च — छनिपातजातक — अट्ठकथा
९१ सत्त — अट्ठ — नवनिपातजातक — अट्ठकथा
९२ दस-एकादसनिपातजातक — अट्ठकथा
९३ द्वादस — तेरस — पकिण्णकनिपात — जातक — अट्ठकथा
९४ वीसति जातक — अट्ठकथा
९५ चत्तालकी — सोलसकी — निदान — अट्ठकथा
९६ चूळनिद्देस
९७ चूळनिद्देस — अट्ठकथा
९८ महानिद्देस
९९ "
१०० जातक — टीका
१०१ बुमजातक — अट्ठकथा
१०२ अपदान
१०३ " —अट्ठकथा
१०४ पटिसम्भिदामग्ग
१ ५ पटिसम्भिदामग्ग — अट्ठकथा
१०६ पटिसम्भिदामग्गगण्ठिपद
१०७ विसुद्धिमग्ग — अट्ठकथा

१०८ विसुद्धिमग्ग – टीका
१०९ बुद्धवंस – अट्ठकथा
११० चरियापिटक – अट्ठकथा
१११ नामरूप – टीका (नवीन)
११२ परमत्थविनिच्छय (नवीन)
११३ मोहविच्छेदनी
११४ लोकपञ्ञत्ति
११५ मोहनयन
११६ धातुप्पत्ति
११७ अग्गवत्ति
११८ छगतिदीपनी
११९ सहस्सरंसिमालिनी
१२० दसवत्थु
१२१ सहस्सवत्थु
१२२ सीहळवत्थु
१२३ पेन्वोदन्न
१२४ नयानुपस्सति
१२५ धम्मचक्क (पवत्तनसुत्त)
१२६ धम्मचक्क – टीका
१२७ दाठाधातुवंस
१२८ दाठाधातुवंस – टीका
१२९ चूळवंस
१३० दीपवंस
१३१ थूपवंस
१३२ अनागतवंस
१३३ बोधिवंस
१३४ महावंस
१३५ महावंस – टीका
१३६ धम्मदान
१३७ महारक्खापन
१३८ न्यास
१३९ पन – प्पिनु – टीका
१४० महापर – टीका

१४१ रूपसिद्धि – अट्ठकथा
१४२ रूपसिद्धि – टीका
१४३ बालावतार
१४४ वुत्तिमोग्गल्लान
१४५ पञ्चिका – मोग्गल्लान
१४६ पञ्चिका – मोग्गल्लान – टीका
१४७ कारिका
१४८ कारिका – टीका
१४९ लिङ्गत्थविवरण
१५० लिङ्गत्थविवरण – टीका
१५१ मुखमत्तसार
१५२ मुखमत्तसार – टीका
१५३ महागण
१५४ चूळगण
१५५ अभिधान
१५६ अभिधान – टीका
१५७ सद्दनीति
१५८ चूळनिरुत्ति
१५९ चूळसन्धिविसोधन
१६० सद्दत्थभेदचिन्ता
१६१ सद्दत्थभेदचिन्ता – टीका
१६२ पदसोधन
१६३ सम्बन्धचिन्ता – टीका
१६४ रूपावतार
१६५ सद्दावतार
१६६ सद्धम्मदीपक
१६७ सोतमालिनी
१६८ सम्बन्धमालिनी
१६९ पदावहमहाचक्क
१७० ग्यादि (मोग्गल्लान)
१७१ वण्णना (सुत्तपाठ)
१७२ महाका (महाकच्चायन)
१७३ बालत्तजन

१७४ मुत्तावलि
१७५ सम्बन्धचिन्तोद्धरणी
१७६ वेसन्तरजातकनिस्सयपाठ
१७७ सनामसद्दविनयसंगनी
१७८ सीमसम्भेदम्
१७९ कच्चायनसार
१८० वाच्चवाचक
१८१ गन्धमालिनी
१८२ गन्धमालिनी – निस्सय
१८३ कच्चायन – निस्सय
१८४ रूपसिद्धि – निस्सय
१८५ जातक – निस्सय
१८६ जातकपत्ति
१८७ धम्मपदपत्ति – निस्सय
१८८ कम्मवाचा
१८९ सम्मापन
१९० समासतम्भिखा
१९१ समासतम्भिखा – टीका
१९२ समासमुलपतिम्भनासु
१९३ सिक्खा – टीका
१९४ रतनमाला
१९५ रतनमाला – टीका
१९६ रागविधान
१९७ दसपुञ
१९८ दसपुञ – टीका
१९९ दण्डविधिनि
२०० धम्मनीति (धातुवृत्ति)
२०१ पदसाधनसार (० पञ्जिका)
२०२ सामण्णी
२०३ धम्मसङ्गणासारण
२०४ महीसिद्धि
२०५ गुणावासगार
२०६ गुणावासगार – टीका

२०७ तगोगावुधि
२०८ सन्धि (वन्निल)
२०९ सन्धि—टीका
२१० चतुरास
२११ अरियसच्चावतार
२१२ विधिमपत्थ
२१३ सद्धम्मुपाय
२१४ सारसङ्गह
२१५ सारपिण्ड
२१६ पटिपत्तिसङ्गह
२१७ मूलकारण
२१८ बालतक्क (बालतर्क)
२१९ तक्कभासा (तर्कभाषा)
२२० सद्दकारिका
२२१ कासिकावुत्तिपकिति (काशिकावृत्ति-पासिनी—पाणिनि)
२२२ सद्धम्मदीपक
२२३ सच्चतत्तबोध
२२४ बालप्पबोधनसुत्तिकरण
२२५ अत्तब्याख्यम्
२२६ पुब्बनिरुत्तिमञ्जूसा
२२७ मञ्जूसाटीकाब्याख्यम्
२२८ मनुटीकाब्याख्यम्
२२९ पकिण्णकनिकाय
२३० सत्थपयोग
२३१ मरुमपयोग
२३२ रोम्याम
२३३ रोम्याम—टीका
२३४ सत्यकविपस्सप्रकाश
२३५ राजमत्तन्त
२३६ पराभव
२३७ कोमरञ्ज
२३८ बुद्धजातक
२३९ बुद्धजातक—टीका

२४० दाठाधातुवंस — मूल — टीका
२४१ पतिमविसेस — टीका
२४२ अलकार — टीका
२४३ पसिन्दपञ्चिका
२४४ वेदविभिनिमित्तनिरुत्तिवण्णना
२४५ निरुत्तिब्याख्यम
२४६ वुत्तोदय
२४७ वुत्तोदय — टीका
२४८ मिलिन्दपञ्ह
२४९ सारत्थसङ्गह
२५० अमरकोस — निस्सय
२५१ पिण्डो — निस्सय
२५२ कलाप — निस्सय
२५३ रोमनिदानब्याख्यम्
२५४ दसगमन — टीका
२५५ अमरकोस
२५६ दण्डी — टीका
२५७ " "
२५८ " "
२५९ कोमप्पज — टीका
२६० अलंकार
२६१ अलंकार — टीका
२६२ नसग्गमञ्जूसा
२६३ पुब्बग्गम
२६४ पतमत्रमा — टीका
२६५ विरत्थ
२६६ विरत्थ — टीका
२६७ चूळमणिसार
२६८ राजमत्तन्त — टीका
२६९ मुग्धबन्धन
२७० महाबालबोधर
२७१ " " — टीका
२७२ पतिवेक

२७३ कच्चायन – रूपावतार
२७४ पुम्मरसारी
२७५ वस्सावतार (सद्दावतार)
२७६ ,, –टीका
२७७ न्यायबिन्दु
२७८ न्यायबिन्दु – टीका
२७९ हेतुबिन्दु
२८० हेतुबिन्दु – टीका
२८१ लिपकथियपाता
२८२ लिपकथियपाता – टीका
२८३ चरितरत्नाकर (वृत्तरत्नाकर)
२८४ व्यायमितिकम्म
२८५ मुत्तिसङ्गह
२८६ मुत्तिसङ्गह – टीका
२८७ सारसङ्गह – निस्सय
२८८ रोगयात्रा – निस्सय
२८९ रोगनिदान – निस्सय
२९० सद्दत्थभेदचिन्ता – निस्सय
२९१ पाठ – निस्सय
२९२ व्यायामितिकम्म – निस्सय
२९३ बृहज्जातक – निस्सय
२९४ रतमाला
२९५ मग्गुतिसङ्गह

(४) बयिन्नौङ (१५५१–८१)—तुङ्गू का राजा 'मिन्‌ग्यिन्यो' (१४८६-१५३१) धार्मिक राजा था। उसने अनेक विहारों का निर्माण किया। उसके पुत्र ने 'पेगू' को जीत लिया और क्रमशः 'मर्तबान' और 'प्रोम' पर भी अधिकार कर लिया। तलैङ देश अभी भी श्यान लोगों के हाथ में था और वहाँ के बर्मी राजा के उत्तराधिकारी ने सम्पूर्ण बर्मा को एक सूत्र में बाँधने का कार्य सम्पन्न किया। वह व्यक्ति 'बयिन्नौङ' (१५५१-८१) था और अकबर का समकालिक था। तलैङ लोगों के विद्रोह को शान्त कर उसने पहले 'पेगू' को लिया फिर दक्षिण और उत्तरी

बर्मा ही नहीं शान् राज्यों को भी अपने अधीन किया। वह बौद्ध धर्म का भक्त था। उसने रंगून के 'श्वेदगोन्' प्रोम के 'श्वेमाडो' और पगान के 'श्वेजिगोन्' आदि विहारों की अनेक बार मरम्मत की तथा और कितने ही विहार तथा चैत्य आदि बनवाये। शान् लोगों में धर्मप्रचार का विशेष प्रबन्ध उसने किया। उसका राज्य बर्मा से बाहर कम्बोज, अयोध्या (स्याम) और युथोदया (ऊपरी स्याम) आदि तक फैला हुआ था, जहाँ उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अनुरुद्ध को उपराज बनाकर भेजा था।

बयिनौङ् के बाद राजशक्ति क्षीण हुई। १५९९-१६०० ई० में अराकानियों ने पेगू नगर को लूटकर ध्वस्त किया। बर्मी लोग तलैङों से एका नहीं कर सके।

अलौङ्पया (१७५२ ई०) के साथ हम उस समय में आ जाते हैं जब अंग्रेजों ने भारत में अपनी नींव डाली थी। तलैङों ने आवा पर अधिकार कर लिया पर वह नहीं मुड़ा। इसने तलैङों को उत्तरी बर्मा से निकाल बाहर किया। १७५५ ई० में इसने तलैङों के गढ़ रंगून को भी ले लिया। अलौङ्पया ने तलैङों के विद्रोह में भिक्षुओं को भी नहीं छोड़ा और उन्हें हाथियों से कुचलवा कर मरवाया क्योंकि षड्यन्त्र में वे भी सम्मिलित थे। जो भिक्षु बच गये वे सितङ् नदी के पार के नगरों में भाग गये। बर्मी सैनिकों ने हाथ लगे तलैङ स्त्री-पुरुषों को दास बनाकर बाजार में बेच डाला। न बच्चे अपनी माताओं को खोज पाते थे न माताएँ अपने बच्चों को। सारे देश में क्रन्दन मचा था। इस प्रकार से अलौङ्पया ने बड़ी निर्दयता से तलैङों को दबाया। यह एकता बड़ी कीमत देकर कायम की गयी। पिछले दो सौ वर्षों में दोनों जातियाँ धीरे-धीरे इतनी घुलमिल गयीं कि आज तलैङ नगरों में सर्वत्र बर्मी भाषा ही बोली जाती है और गाँवों में ही तलैङ बोलनेवाले रह गये हैं। ब्याह-शादी के कारण भी दोनों जातियाँ बहुत घुलमिल गयी हैं।

(५) धार्मिक विचार—पुगान विजय के होने पर १० ० ई० से

आसपास बर्मी भिक्षुओं में चीवर कन्धे पर रखने के ढंग को लेकर विवाद खड़ा हो गया। उत्तरासंग (ऊपरी चीवर) को दाहिना कन्धा खोल कर पहनने को ठीक बतलाने वाले एकांसिक कहे जाते और दोनों कन्धों को ढाँकनेवाले पारुपनवादी। एकांसिका पक्ष का समर्थन प्रभावशाली स्थविर गुणाभिलंकार ने किया। पारुपनवादी (प्रारोपण) राजा होने से धीरे-धीरे सम्पूर्ण बर्मा पारुपन-वादी हो गया। राजा कीर्ति श्री राजसिंह के समय स्याम से भिक्षु बुला कर सिंहल में भिक्षुसंघ स्थापित किया गया। राजा तमिल ब्राह्मणों से प्रभावित था। उसने शर्त रखी कि भिक्षु सिर्फ गोयी (उच्च) जाति के ही लोग बनाये जायें। बौद्ध धर्म के लिए यह तीव्र लांछन की बात थी पर आज भी बहुसंख्यक स्यामी-निकाय इसको मानता है। दूसरी जातिवाले कैसे इसको मानते? १८० ई० में 'अम्बगहपति' के नतृत्व में कुछ सिंहल तरुण उपसम्पदा लेने बर्मा पहुँचे। बर्मी संघराज ञाणाभिवंश ने उनकी प्रार्थना मंजूर की। उन्हें उपसम्पदा मिल गयी। अगोयी भिक्षुओं के लिए अब रास्ता खुल गया। उस समय बर्मा की राजधानी अमरपुर थी और वहीं इनकी उपसम्पदा हुई। इसीलिये ये 'अमरपुरनिकाय' के कहे गये। इसके बाद बर्मा से उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुओं का एक और भी सम्प्रदाय लंका में स्थापित हुआ जिसे 'रामञ्ञनिकाय' कहते हैं।

'बोदावपया' के समय (१७८२ १८१९ ई०) ये ही घटनाएँ घटीं। उसके बाद बौग्यिदा (१८१९ ३७ ई०) राजा हुआ। इसने राजधानी को अमरपुर से आवा में परिवर्तित की। उसे सिंहासन से वंचित होना पड़ा। दो और राजाओं के बाद 'मिन्-दोन् मिन्' (१८२२-७७ ई०) गद्दी पर बैठा। उसके समय में उत्तरी बर्मा में शान्ति रही कुछ प्रगति भी हुई। वह राजधानी को मांडले ले गया। इसी के सभापतित्व में लगातार तीन वर्षों तक त्रिपिटक का संशोधन किया गया। फिर उसे ७२९ संगमरमर की पट्टियों पर खोदा गया जो आज भी मांडले के पास 'कुथो-दाव्' विहार में मौजूद है।

६ परतन्त्र और स्वतन्त्र बर्मा—मिन-डोन्-मिन् के मरने के आठ वर्ष बाद ही १८८५ ई० में मांडले पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अन्तिम राजा थीबो (थिब) को कैदी बनाकर भारत भेज दिया गया। अंग्रेजों ने बर्मा और तलैङ दोनों के झगड़े को जारी रखा। करेनों का ईसाई हो जाना उनके काम में सहायक हुआ। १९४८ में स्वतंत्र होते ही बर्मा ने बौद्ध धर्म को अपना राज-धर्म घोषित किया। इस राजनीतिक इतिहास की उथल पुथल में बर्मा में बौद्धधर्म भी पनपता रहा। छापेखानों के युग आने पर त्रिपिटक के नये संस्करण निकले।

१९५४-५६ तक बर्मा में छट्ठ सङ्गायन का आयोजन रहा और साथ में ही पालि त्रिपिटक तथा अट्ठकथाएँ आदि मुद्रित हुईं। इसी संस्करण को आधार बना कर सम्पूर्ण त्रिपिटक भिक्षु जगदीश काश्यप के नेतृत्व में भारत में देवनागरी में प्रथम बार सम्पादित हुआ।

बर्मा तथा थाई भूमि में भिक्षुओं के लिए कविता करना अनुचित समझा जाता रहा है इसलिए उन्होंने व्याकरण तथा अभिधर्म को अपना मुख्य विषय बनाया। यहाँ (बर्मा) उन्नीसवीं सदी में 'गन्धवंस' (ग्रन्थों का इतिहास) तथा 'सासनवंस' (बौद्धधर्म का इतिहास) नामक दो ग्रन्थ लिखे गये। 'गन्धवंस' में सम्पूर्ण पालि ग्रन्थों की सूची दी हुई है तथा बर्मा में लिखे गये ग्रन्थ यहीं पर द्रष्टव्य हैं[1]।

७ पञ्ञासामी—ये उन्नीसवीं सदी में हुए और इन्होंने 'सासनवंस' नामक बौद्ध धर्म का इतिहास लिखकर बर्मा के लिए लिखा। इसे 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' (लन्दन) ने १८९७ ई० में प्रकाशित किया। ये मिन्-डोन्-मिन् राजा के शिक्षक थे।

---

१ द्र०—भरतसिंह उपाध्याय "पालि साहित्य का इतिहास", ७७-५८१।

इस ग्रन्थ में दस परिच्छेद हैं—

(१) बुद्धवर्षादि तथा नव स्थानों में शासन-प्रतिष्ठा की कथा
(२) सिंहल द्वीप में शासन-प्रतिष्ठा की कथा
(३) सुवर्णभूमि में०
(४) 'योनक' राष्ट्र में०
(५) वनवासी राष्ट्र में०
(६) अपरान्त राष्ट्र में०
(७) काश्मीर-गान्धार राष्ट्र में०
(८) 'महिंसक' राष्ट्र में०
(९) महाराष्ट्र में०
(१०) चीन राष्ट्र में०

भौगोलिक नामों के सम्बन्ध में 'पञ्ञासामी' ने जो गलती की है, वह सम्भव है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ऐसा ही भौगोलिक अज्ञान हमारे देशों में था।

— ० —

दूसरा अध्याय

२ थाई देश में थेरवाद तथा पालि

(१) थाई जाति—थाई जाति का शान् जाति से सम्बन्ध है। थाई भूमि में आने से पहले वह 'युनन्' में रहती थी। बंगाल की खाड़ी से प्रशान्त महासागर तक मुख्यतया चीना-मंगोल भूषभूमवासी जातियाँ बसती हैं—(१) तिब्बती-बर्मी (२) थाई चीनी और (३) मानख्मेर। इनमें सबसे पुरानी जाति मानख्मेर है। आज इस जाति की शाखाएँ चम्पा से लेकर नेपाल तक तथा बर्मा होते हुए कम्बोज तक पायी जाती हैं, ये हैं—उत्तर आसाम के खासी मनायो कचोरी नागा-नीलगिरि के मारदा जोहि ग्रामी परव्यामी रामी ममर, मुख्य तथा नवार, किरपती अथवा नागा केरन आदि। इनको तिब्बती लोग मोन्पा कहते हैं। इनके एक के कारण प्रदेश का नाम मोन्युल् है। इनमें नवार, बर्मा के मोन् (तलैंग) केरेन भी हैं। ईसवी सन् के आरम्भ या कुछ पहले से सामन्ती सभ्यता कायम करने में सफल हुए थे। पीछे ये बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आये। उनके प्राचीन राजाओं के पूर्वज प्रायः भारतीय राजवंशों के सामन्त थे। इसलिए ब्राह्मण-धर्मों के प्रति आग्रह होना उनका स्वाभाविक था।

(२) थेरवाद—जब भारत में सबल महायान फैल गया और नालन्दा विक्रमशिला के एक से एक धुरंधर विद्वान् उसके अनुयायी हो गये तो बर्मा स्याम आदि में भी उसी की दुन्दुभी बजने लगी। थेरवाद की पुनःस्थापना के समय कम्बोज में महायान था। थाई मूलतः उत्तर के रानवाम थे जहाँ अब भी स्वायत्त शासित भिन्न हैं और स्याम की तरह थेरवाद चलता है। थाईयों (ताईयों) की एक शाखा 'श्यान ताई' है। आजकल श्यानों की संख्या ६६ लाख है। बर्मा के प्रदेश में उनका बहुमत है और वह उस प्रदेश को श्यान स्वायत्त भूखण्ड कहते हैं जिसकी

राजधानी नासक एक समृद्ध नगर है। श्याम भूखण्ड में
प्रदेश है जहाँ १२ लाख थुमी बसते हैं। चीनों के सहोद
दो अलग-अलग स्वायत्त इलाकों में ताई बसते हैं।
मुश्किल से दो लाख होगी पर उनके भाई-बन्धु बर्मा (श
और लाव के निवासी हैं।

किसी समय यांगत्सी नदी के दक्षिण की चीनी भूमि ता
थी। हान् (चीनी) जाति दक्षिण की ओर बढ़ी औ
'श्याम-ताइयों' को आत्मसात् कर लिया। दक्षिणी मु
प्राधान्य बराबर बना रहा। इन्हीं की भूमि से होकर
चीन का व्यापार मार्ग था जिससे आनेवाले चीनी माल
शताब्दी के चीनी यात्री चाङ्क्याङ् न बलिया (बम
इस मार्ग के पूर्वी छोरवाले मार्ग के स्वामी ताई लोग थे।
से उनको बहुत लाभ था। इसलिए इसका रास्ता किन
को भी मालूम नहीं था। इसी मार्ग द्वारा भारतीय सं
जिनमें ही भारतीय वहाँ बस गये। सामन्त राजकुमार
के लिए वहाँ पहुँचे जिन्होंने उसे गान्धार नाम दे दिया

यह भूमि ऐतिहासिक काल में नन्चाउ के नाम से
संस्कृति के प्रभाव में सारे ताई यहीं आय। नियम
देखा ही जाता है। चाउ काल में नान्चाउ के राजा का
यहाँ के राजा ईमोसून न चीन में पुन भजा था। बर्मी
को ८३२ ई में लूटकर ध्वस्त करके वास नन्चाउ क
चीनी उन्हें लड़ाकू मानते थे। उनको सम्पूर्ण राजा के
ने वैसे ही उनके राजा को सामन्त बनाया जैसे व तिब्बत
थे। इसवीं सदी के आसपास व दक्षिण की ओर
उनकी वीरता को देखकर कम्बुज राजा उन्हें अपनी
कम्बुज की शक्ति का ह्रास देखकर भाई सरदार अपन
राज्य स्थापित करने में सफल हुए। वर्तमान उत्तरी

को पहले से ही मोनों ने ले लिया था। यहाँ मेनाम् नदी की एक शाखा के किनारे उनका प्रमुख नगर 'हरिपुंजय' बसा था। इसे आजकल ल्यम्फुन् कहा जाता है। यही थाईयों का सबसे पुराना राज्य था। इन्हीं के कारण युनन् (चीन) के थाई आज भी थेरवादी हैं जब कि सारे चीन में केवल महायान का नाम सुना जाता है। बर्मा का हरिपुंजय से सम्बन्ध ग्यारहवीं सदी में हुआ। ईत्सिङ और फाहियान की यात्राओं के उद्धरणों में जिनमें ही विहारों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। ग्यारहवीं शताब्दी सदी के भारत तथा बृहत्तर भारत में सर्वास्तिवाद की समाप्ति हो गयी थी। महायान ने इसमें प्रथम उसे ही आत्मसात् किया। पर यहां उसका विनय बराबर चलता रहा क्योंकि महायान का अपना विशेष विनय नहीं था। विनय सर्वास्तिवाद (मूलसर्वास्तिवाद) का आज भी तिब्बत में चलता है। उसी के अनुसार भिक्षुओं को उपसम्पदा दी जाती है यद्यपि तिब्बत का बौद्ध धर्म महायान से भी चार कदम आगे बढ़ा हुआ वज्रयान है।

(१) हरिपुंजय—हरिपुंजय में थाई प्रथम धर्म सम्पर्क में आये। उनके इतिहास 'जिनकालमाली' में आता है—हरिपुंजय राज्य १०२१ ई० में स्थापित हुआ। कम्बोज पहले ही जिसका भी पूरा था जिसके राज्य में हरिपुंजय पड़ता था। १२८० ई० में पगान के पतन होने पर थाई सरदारों को पुनः गढ़ने का मौका मिला। थाई सरदार 'मिदरई' ने 'योन' राष्ट्र में हरिपुंजय के पास मिदमई नगर १२९०–९२ ई० में बसा कर उसे अपनी राजधानी बनायी। उस समय सुखोदय कम्बोज की पश्चिमी राजधानी थी जिसे थाई सरदार इन्द्रादित्य ने १२१० ई० में ले लिया था। सुखोदय को प्रमुख स्थान दिलाने वाला राम (खम्हेङ) था। राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से उसका शासन बहुत महत्त्व रखता है। इसी ने कम्बोज लिपि की सहायता से थाई लिपि बनायी। इस सम्राट का वैसा ही महत्त्व था जैसा बर्मा का धम्मचेति या पगान का अनरुद्ध। यह प्रारम्भ में अपने लेख में लिखता है—

"सिमूमिस २१बार हुरहुम दान न धोबभाग की दृष्टि मा सुरसार को ममात

राजधानी मानजू एक समृद्ध नगर है। श्याम भूखण्ड के उत्तर में 'स्वोदयाव' प्रदेश है जहाँ १२ लाख फुमी बसती है। चीनों के सहोदर, दक्षिण युनन के दो अलग-अलग स्वायत्त इलाकों में ताई बसते हैं। यद्यपि उनकी संख्या मुश्किल से दो लाख होगी पर उनके भाई-बन्धु बर्मा (शान्) स्याम (थाई) और लाव के निवासी हैं।

किसी समय यांग्त्सी नदी के दक्षिण की चीनी भूमि ताई (थाई) जाति की थी। हान् (चीनी) जाति दक्षिण की ओर बढ़ी और उसने कितने ही श्याम-ताइयों को आत्मसात् कर लिया। दक्षिणी युनन् में ताइयों का प्राधान्य बराबर बना रहा। इन्हीं की भूमि से होकर ईसा पूर्व के भारत से चीन का व्यापार मार्ग था जिससे आनेवाले चीनी माल को ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के चीनी यात्री चाङ्क्यान ने बल्खिया (बल्ख) में देखा था। इस मार्ग के पूर्वी छोरवाले मार्ग के स्वामी ताई लोग थे। इस व्यापार मार्ग से उनको बहुत लाभ था। इसलिए इसका रास्ता कितने ही समय तक चीन को भी मालूम नहीं था। इसी मार्ग द्वारा भारतीय संस्कृति यहाँ पहुँची। कितने ही भारतीय यहाँ बस गये। सामन्त राजकुमार भी भाग्य-परीक्षा के लिए यहाँ पहुँचे जिन्होंने उस भाण्डार लाभ दे दिया।

यह भूमि ऐतिहासिक काल में नन्चाउ के नाम से चीन में प्रसिद्ध थी। संस्कृति के प्रभाव में सारे ताई नहीं आये। विषम विकास जातियों में देखा ही जाता है। थाङ-काल में नान्चाउ के राजा का उल्लेख मिलता है। यहाँ के राजा ईमोमुन ने चीन में दूत भेजा था। बर्मा की पुरानी राजधानी को ८३२ ई० में लूटकर ध्वस्त करने वाले नन्चाउ के थाई (ताई) ही थे। चीनी उन्हें लड़ाकू मानते थे। उनको सन्तुष्ट रखने के लिए थाङ-सम्राटों ने वैसे ही उनके राजा को दामाद बनाया जैसे वे तिब्बत के सम्राट् को बनाते थे। उत्तरी नदी के आसपास से दक्षिण की ओर आकर बसने लगे। उनकी वीरता को देखकर कम्बुज राजा उन्हें अपनी सेना में रखते थे। कम्बुज की शक्ति का ह्रास देखकर थाई सरदार अपने छोटे-मोटे पहाड़ी राज्य स्थापित करने में सफल हुए। वर्तमान उत्तरी थाई भूमि (स्याम)

को पहले से ही मोनों ने ले लिया था जहाँ मनाम् नदी की एक शाखा के किनारे उनका समृद्ध नगर 'हरिपुंजय' बसा था। इसे आजकल ल्यम्फुन कहा जाता है। यही थाइयों का सबसे पुराना राज्य था। उन्हीं के कारण युनन् (चीन) के थाई आज भी थेरवादी हैं जब कि सारे चीन में केवल महायान का नाम सुना जाता है। बर्मा का हरिपुंजय से सम्बन्ध ग्यारहवीं सदी में हुआ। ईत्सिङ और फाहियान की यात्राओं के उद्धरणों से कितने ही विहारों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। सातवीं-आठवीं सदी से भारत तथा बृहत्तर भारत में सर्वास्तिवाद की समाप्ति हो गयी थी। महायान ने सबसे पहले उसे ही उदरस्थात् किया। पर यहाँ उसका विनय बराबर चलता रहा क्योंकि महायान का अपना विनय नहीं था। विनय सर्वास्तिवाद (मूलसर्वास्तिवाद) का आज भी तिब्बत में चलता है। उसी के अनुसार भिक्षुओं को उपसम्पदा दी जाती है यद्यपि तिब्बत का बौद्ध धर्म महायान से भी आगे मन्त्र जाप बढ़ा हुआ वज्रयान है।

(१) हरिपुंजय—हरिपुंजय में थाई सबसे पहले सम्पर्क में आये। उसके इतिहास 'जिनकालमाली' में आता है—हरिपुंजय राज्य १७२१ ई० में स्थापित हुआ। सम्भवतः पहले ही निश्चय हो चुका था जिससे राज्य में हरिपुंजय पड़ता था। १२८० ई० में पगान के ध्वस्त होने पर थाई सरदारों को पुनः पतन का मौका मिला। थाई सरदार 'मिङरै' ने 'योन' राष्ट्र में हरिपुंजय से लगा चियङमई नगर १२९०-९२ ई० में बसा कर उसे अपनी राजधानी बनायी। उस समय सुखोदय कम्बोज की पश्चिमी राजधानी थी जिसे थाई सरदारों ने १२५० ई० में ले लिया था। सुखोदय का प्रमुख शासक किसान वाला राम (कमहेङ) था। राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से उसका शासन बहुत महत्त्व रखता है। इसी ने कम्बोज लिपि की सहायता से थाई लिपि बनायी। पर कम्बोज का वैसा ही असर था जैसा बर्मा का धम्मचेतिय का पगान पर अनरुद्ध। यह प्रारम्भ में अपने समय में लिखता है—

"शिलालिपि १२१४ पूर्वाषाढ़ के चौथे मास की पूर्णिमा गुरुवार को सम्पन्न

हुई। श्री सज्जनालय-सुखोदय के राजा लिन्थाइ तथा रामखम्हेङ के पौत्र ने सज्जनालय पर कई वर्ष राज्य करने के बाद 'त्रैभूमिक' माता को अभिधर्म पढ़ाने के लिए लिखा। उसके आधार ग्रन्थ थे—'जिनालंकार' 'सारत्थदीपनी' 'बुद्धवंस' 'सारत्थसंगह' 'मिलिन्दपञ्ह' 'अनागतवंस' 'चरिया-पिटक' 'लोकपञ्ञत्ति' 'समन्तपासादिका'। अब प्रश्न उठ सकता है, राज-वंश के राजा ने कैसे ऐसे विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ को लिखा। उत्तर है—परमभट्टारक त्रिपिटक पारंगत थे। उन्होंने भदन्त 'अनोमदस्सी' 'धम्मसेन' जैसे पंडितों से अध्ययन किया था और हरिपुंजयवासी भदन्त बुद्धघोष से भी पत्राचार करके पढ़ा था। चियङ्-माई (हरिपुंजय-योनरट्ठ) ने थेरवाद को अपनाने में शीघ्रता की थी। इसलिए स्याम में सबसे पहले उन्होंने पालि के ग्रंथ लिखे। रतनपञ्ञ के ग्रन्थ 'जिनकालमाली' से बहुत से उद्धरण आगे दिये गए हैं। पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ में यहीं के स्थविर 'बोधिरंसि' ने 'सिहिङ्गबुद्धरूपनिदान' और 'चामदेवीवंस' नामक दो इतिहास ग्रन्थ लिखे।

(४) अयोध्या द्वारवती—१३५० ई० में एक थाई राजकुमार ने सुखोदय से दक्षिण अयोध्या की स्थापना की और वहीं रामाधिपति सुवर्ण दोल के नये नाम से अपना अभिषेक कराया। सुखोदय निर्बल हो चुकी थी। १३७८ई०में सुखोदयाधिपति ने अयोध्या का सामन्त होना स्वीकार किया और १४३८ई० में सम्पूर्ण विलयन भी। हरिपुंजय(चियङ्माई)ने अधिक उत्तर तथा बर्मा के समीप होने से कुछ समय उससे अपने को बचाया पर अन्ततः १५५६ई०में उसने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो दिया। अब बर्मा की सारी पूर्वी सीमा थाई राज्य से मिली हुई थी और किसी काल का एक बड़ा साम्राज्य कम्बोज अब स्याम की दया पर था।

बर्मा ने स्याम को पराजित कर १५६९-८४ ई० तक अपने अधीन रखा। इससे पहले स्याम में भारतीय शकाब्द चलता था। किसी समय सिंहल कम्बोज आदि में भी शकाब्द का रिवाज था। नेपाल में अठारहवीं सदी के बाद तक शकाब्द चलता रहा। बर्मा में किसी बड़ी विजय के उपलक्ष्य में ६३८ ई० में एक संवत् (थाक) चलाया गया या बाहर से लिया गया।

अपनी विजय के चिह्न स्वरूप बर्मा ने अपने संवत् को स्याम पर लादा। इस प्रकार १५६९ के बाद यहाँ भी वही संवत् चलन गया जिसे भारतीय पंचांग में लिख करने के लिए चूल (छोटा) शक कहते हैं।

अयोध्या ने सुखोदय से राज्य के साथ-साथ संस्कृति को भी उत्तराधिकार में पाया। यद्यपि बर्मा और स्याम दोनों थेरवादी बौद्ध थे, परन्तु युद्ध के समय शत्रु के साथ कोई दया दिखलाने के लिए तैयार नहीं होता। अतः बर्मी सेनाओं ने स्याम के बौद्ध विहारों और मूर्तियों के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा बख्तियार खिलजी की सेना ने नालन्दा और विक्रमशिला की मूर्तियों के साथ किया होगा। धातु की विशाल मूर्तियों पर सोने की परत चढ़ी हुई थी। उसे निकालने के लिए मूर्तियों को तोड़कर आग में डाल दिया गया। अयोध्या की तो सचमुच ईंट से ईंट ऐसी बजी कि उसको फिर से बसाना असंभव समझा गया और नये राजा फया-ताक्-सिन् ने वहाँ से हटकर बंकाक में राजधानी बसाना पसन्द किया।

अयोध्या काल की एक और महत्त्वपूर्ण बात है स्याम का सिंहल के धर्म ऋण से उऋण हो जाना। पोर्तुगीजों के धर्मान्ध शासन (१५२०–१६५८ ई०) ने सिंहल के बौद्ध धर्म का उजाड़ करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। सिंहल के कैथोलिक उन्हीं की देन हैं। सिंहलियों ने अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए देश के कितने पहाड़ों को उजाड़ बना रखा था पर भिक्षु-संघ नष्ट हो चुका था। सिंहल से निमन्त्रण पाने पर अयोध्या के राजा ने १७५२ ई० में महास्थविर उपालि के साथ कितने ही स्थविरों को भेजा जिन्होंने सिंहल में भिक्षु-संघ की स्थापना की। आज सिंहल के भिक्षुओं की अधिक संख्या 'स्यामी-निकाय' (उपालि-वंश) की है।

'ताक-सिन्' के बाद सेनापति चक्री ने अपने राजवंश की स्थापना की जो आज तक चला जा रहा है।

(५) बंकाक-राजवंश—१७८४–५ ई० तक संवत्सर रहे और बाद में १८५१–६८ ई० तक स्याम के राजा। मोङ्कुट अधिकारी राज नहीं थे पर प्रभावशाली पालि-पण्डित और उदारचरित भाषा के सौजन्य

को गद्दी पर बैठाया। 'वजिरञाण' ने कोई विरोध नहीं किया। उसने अपने व्यवहार से सौतेले भाई राम तृतीय के हृदय को जीत लिया। अप्रैल १८५१ ई० में उसके मरने पर २७ वर्ष के बाद उसे ही गद्दी पर बैठाया गया। 'वजिरञाण' के पत्रों और पद्यों से मालूम होता है कि उनका पालि पर असाधारण अधिकार था। ये अंग्रेजी भी जानते थे। अंग्रेजी और फ्रेंच इन दो साम्राज्यों के बीच में रहकर स्याम की सत्ता को बनाये रखने में इनका बड़ा हाथ था। इन्होंने संघराज होने के समय अपने 'रामञ्ञ (बर्मी) निकाय' में सुधार कर 'धम्मयुत्तिक' नाम से उसे आगे बढ़ाया था पर स्याम में भिक्षुओं की सबसे अधिक संख्या 'महानिकाय' को ही मानती थी। महानिकाय तेरहवीं सदी से पहले से ही थाईयों में चला आ रहा था। अशान्ति के समय भागे बर्मी शरणार्थी स्याम में चले आये जिनके साथ उनके भिक्षु (रामञ्ञ) भी स्याम में आ बसे जो उन्नीसवीं सदी में स्याम के राजनीतिकों को अपनी ओर खींचने में सफल हुए, जिसके उदाहरण स्वयं 'महामुकुट वजिरञाण' थे। आज तक सौ वर्षों तक उन्हीं में से स्याम के संघराज होते थे। अभी हाल में ही 'महानिकाय' का संघराज बना है।

(६) ईसाई बनाने का षड्यन्त्र—सत्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में ही डच, फ्रेंच और अंग्रेज स्याम को हड़पने में लगे हुए थे। अयोध्या के राजा 'नराइ' (नारायण) को अपने प्रभाव में लाने में (पहले अंग्रेजों और पीछे फ्रांसीसियों का समर्थक) एक ग्रीक महाशय 'फाल्कान' सफल हो गए। वे अपने ही नये कैथोलिक नहीं बने, प्रत्युत थाईयों को भी कैथोलिक बनाना चाहते थे। बौद्ध धर्म बहुत गहराई तक पहुँच गया था। नराई को धर्म बदलने की हिम्मत नहीं हुई। जब फ्रेंच सेना के साथ फ्रेंच सेना भी बैंकाक पहुँच गयी तो स्यामी फ्रांसीसियों के उद्देश्य को समझने लगे। उन्होंने 'फाल्कान' को फांसी पर लटका दिया। मुँ की सेना कठिनाई से भाग सकी। स्याम में उतने ही ईसाई न बन सके जितने वियतनाम में हैं।

स्याम में भी कारण रखना बौद्ध भिक्षुओं के लिए उचित नहीं समझी

जानी इसलिए व्याकरण आदि ही उनके लिखने के विषय होते हैं। आधुनिक ग्रंथों में मुद्रित त्रिपिटक स्याम में ही पहले पहल छपा।

(७) रतनपञ्ञ (१५१७)—ऊपर इनके ग्रन्थ 'जिनकालमाली' का उल्लेख किया जा चुका है। पालि के इस पद्यमय इतिहास में ये लिखते हैं—

त्रिरत्न-वन्दना

"ज्ञानरूपी किरण श्रेष्ठ धर्म-रूपी किरण द्वारा मोह के अत्यन्त घने अन्धकार को नष्ट कर, जिसने विनय के पात्र तीनों वस्तुरूपी कमलों को खिलाया उस बुद्धरूपी सूर्य की मैं वन्दना करता हूँ।

संघ-सहित बुद्ध और धर्म को नमस्कार कर मैंने जो बहुत पुण्यप्रवाह प्राप्त किया उससे नष्ट-बाधावाला हो मैं 'जिनकालमाली' नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।"

हरिपुञ्जय वर्णन

"शास्ता के परिनिर्वाण के १२ ४ वर्ष बाद (६६१ ई०) इस चूल सकराज के बाईसवें वर्ष में फाल्गुन पूर्णिमा को 'वासुदेव' नामक ऋषि ने 'हरिपुञ्जय' नगर को बसाया। उसके दूसरे साल 'चम्मदेवी' ने लवपुर (लाव) से आकर 'हरिपुंजय' में राज्य किया। उसके बाद चूल-शकाब्द ४०१ में आदित्य राजा का हरिपुंजय में अभिषेक हुआ। उसके पश्चात् चूल-शकाब्द ५२१ में हरिपुंजय नगर में महाधातु का प्राप्त होना पुरानी कथा में आता है जो वहीं के राजवंश के इतिहास-ग्रन्थ में प्राप्त होता है। प्राचीन समय में वासुदेव सुकदन्त बुद्धजटिल अनुशिष्या में साधु हुए।"

लंका द्वीप में भिक्षु-संघ की स्थापना

"वे स्थविर एक मत हो क्रमशः सिंहल द्वीप में 'वनरतन' स्वामी के पास जा अभिवादन कर, मधुर वचन से सत्कार कर वहीं रहने लगे। उन स्थविरों और 'धम्मकित्ति' (धर्मकीर्ति) आदि महास्थविर-सम्पूर्ण उनतालीस स्थविरों ने सिंहल द्वीप में प्रचलित आचार्य-परम्परा अनुसार

ध्यानादि और उच्चारण-क्रम को सीख उत्तम अर्थ की कामना से उपसम्पदा पाने की प्रार्थना की ।

शास्ता के परिनिर्वाण से १९६८ वर्ष बाद (१४२५ ई०) शक संवत् ७८६ में महासर्व वर्ष में द्वितीय आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशी शनिवार, तेरस तिथि ज्येष्ठा नक्षत्र के योग में विद्यमान सिंहलराज (षष्ठ पराक्रमबाहु) द्वारा 'कल्याणी' नामक नगर में बने बेड़े में आरोहण कर 'धम्मचाराचार्य' 'वनरत्न महास्वामी' और उपाध्याय 'धम्मचारी' के साथ बीस गणनात संघ द्वारा उपसम्पादित किये गये ।

वे स्थविर उपसम्पन्न हो धन्तधातु, 'समन्तकूट' के पदचिह्न और सोलह महास्थानों की वन्दना कर आचार्य-उपाध्याय से अनुज्ञा ले क्रमश लौट आये । दुर्भिक्ष के भय से वे सिंहल द्वीप में चार ही मास रहे । लौटते समय उन्होंने उपाध्याय के कार्य के लिए महाविक्रमबाहु और उत्तम प्रज्ञ दो स्थविरों एवं वन्दना के लिए धातु माँगी । उनमें विक्रमबाहु भिक्षु होने से १२ वर्ष के और महाउत्तमप्रज्ञ १० वर्ष के थे । जहाज से आते समय बड़े स्थविर और तीन स्थविर से भेंट हो गयी । उन दोनों महास्थविरों को भी समुद्र में ही उपसम्पन्न कर 'अयोध्यापुर' में अयोध्याधिपति 'परमराज' की रानी के गुरु शीलविशुद्धि महास्थविर और सद्धर्मकोविद महास्थविर को सम्पादित किया । उसके बाद 'सज्जनालय' में पहुँच वहाँ 'बुद्धसागर' स्थविर को उपसम्पादित कर शीघ्र सुखोदया में छ वर्ष रहे ।

—•—

तीसरा अध्याय

३ कम्बोज और स्याम में थेरवाद तथा पालि

१ स्याम में थेरवाद

स्याम के लोग भी थाई जाति के ही हैं। हरिपुंजय के स्वामी मोनों ने जब थेरवाद स्वीकार किया तब स्यामों का भी थेरवादी होना स्वाभाविक था। थाईयों का यह जातीय धर्म होने से युमन् थाई भी थेरवादी हैं यद्यपि उनके पड़ोस का चीन महायानी है। थेरवाद की सरलता और भिक्षुओं की विनय की पाबन्दी आदि गुण सरल हैं। यहाँ पालि पिटक ही पढ़ा जाता है, स्याम भिक्षुओं ने पालि में लिखा भी होगा, पर उनके बारे में मालूम नहीं हो सका। यही बात युमन् के थाई थेरवादियों के बारे में है।

२ कम्बोज में थेरवाद

(१) ब्राह्मण धर्म—ईसा की सातवीं सदी तक कम्बोज में बौद्धों की नहीं ब्राह्मणों की प्रधानता थी। अंकोरवात तथा अंकोरथोम की इमारतें भी इसी बात को बतलाती हैं। कम्बोज के हजारों संस्कृत शिलालेख भी इसी की पुष्टि करते हैं। यशोवर्मा (८८९–९०९ ई०) ब्राह्मणों का अनुयायी मालूम होता है, पर अंकोरथोम प्रासाद के बिलकुल पास उसने बौद्ध विहार की प्रशस्ति खुदवाई।[1]

पहले श्लोक में ही शंकर की स्तुति करके वे तीसरे में कहते हैं—

"जिसने स्वयं [illegible] इस भव के बन्धन से मुक्ति के साधनों को तीनों लोक को बतलाया, जिसने निर्वाणपद को प्रदान किया, उसी [illegible] करुणाहृदय बुद्ध को नमस्कार करता हूँ।"

उसी लेख में आगे लिखा है—

---

१ दे०—"बौद्ध संस्कृति" पृ० १७४–१७५।

ध्यानादि और उच्चारण क्रम को सीख उत्तम अर्थ की कामना से उपसम्पदा पाने की प्रार्थना की।

शास्ता के परिनिर्वाण से १९६८ वर्ष बाद (१४२५ ई०) शक संवत् ७४६ में महामन्दे वर्ष में द्वितीय आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशी शनिवार, तेरस तिथि ज्येष्ठा नक्षत्र के योग में विद्यमान सिंहलराज (षष्ठ पराक्रमबाहु) द्वारा 'कल्याणी' नामक नगर में बने बेड़े में आरोहण कर 'धम्मचरियाचार्य' 'वनरतन महास्वामी' और उपाध्याय 'धम्मचारी' के साथ बीस गणवाले संघ द्वारा उपसम्पादित किये गए।

वे स्थविर उपसम्पन्न हो सत्पात्र 'समन्तकूट' के पदचिह्न और सोलह महास्थानों की वन्दना कर आचार्य-उपाध्याय से अनुज्ञा ले क्रमशः चार मास। दुर्भिक्ष के भय से वे सिंहल द्वीप में चार ही मास रहे। लौटते समय उन्होंने उपाध्याय के कार्य के लिए महाविक्कमबाहु और उत्तम प्रज्ञ दो स्थविरों एवं वन्दना के लिए धम्मबाहु माँगी। उत्तम विक्कमबाहु भिक्षु होने से १५ वर्ष के और महाउत्तमप्रज्ञ १० वर्ष के थे। जहाज में आते समय बड़ा स्थविर और सोम स्थविर से भेंट हो गयी। उन दोनों महास्थविरों को भी समुद्र में ही उपसम्पन्न कर 'अयोध्यापुर' में अयोध्याधिपति 'परमराज' की नगरी के पुत्र शीलविशुद्धि महास्थविर और सद्धर्मकीर्ति महास्थविर का सत्कार किया। उसके बाद 'मर्तबान' में पहुँच वहाँ 'बुद्धसागर' स्थविर को उपसम्पादित कर पीछे सुनोध्या में छः वर्ष रहे।"

तीसरा अध्याय

३ कम्बोज और लाव में थेरवाद तथा पालि

१ लाव में थेरवाद

लाव के लोग भी थाई जाति के ही हैं। हरिपुंजय के स्वामी थाइयों ने जब थेरवाद स्वीकार किया, तब लावों का भी थेरवादी होना स्वाभाविक था। थाईयों का यह जातीय धर्म होने से युमन् ताई भी थेरवादी हैं यद्यपि उनके पड़ोस का चीन महायानी है। थेरवाद की सरलता और भिक्षुओं की विनय की पाबन्दी आदि गुण सत्य हैं। वहाँ पालि पिटक ही पढ़ा जाता है, लाव भिक्षुओं का पालि में लिखा भी होगा पर उसके बारे में मालूम नहीं हो सका। यही बात युमन् के ताई थेरवादियों के बारे में है।

२ कम्बोज में थेरवाद

(१) ब्राह्मण धर्म—ईसा की नवमी सदी तक कम्बोज में बौद्धों की नहीं ब्राह्मणों की प्रधानता थी। अंकोरवात तथा अंकोरथोम की इमारतें भी इसी बात का समर्थक हैं। कम्बोज के हजारों संस्कृत शिलालेख भी इसी की पुष्टि करते हैं। यशोवर्मा (८८९–९०९ ई०) ब्राह्मणों का अनुयायी मालूम होता है, पर अंकोरथोम प्रासाद के बिलकुल पास उसने बौद्ध विहार की स्थापना करवाई।[1]

पास के लेख में ही शंकर की स्तुति करने के तीसरे में वर्णन है—

"जिसने स्वर्ग प्रदान करके इस भव के बन्धन से मुक्ति के साधनों को दिखा और को समझाया, जिसने निर्वाणपद को प्रदान किया, उसी बन्धनरहित करुणाहृदय बुद्ध को नमस्कार करता हूँ।"

इसी लेख में आगे लिखा है—

---

१ दे०—"बौद्ध संस्कृति" पृ० १७४–१७५।

"राजाधिराज कम्बुज भूमिपति राजा यशोवर्मा ने बौद्धों के हित के लिए इस सौगताश्रम को बनवाया।

इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों के एकान्त प्रेमी कम्बुज राजवंश ने बौद्धों के प्रभाव को स्वीकार किया।

इस अभिलेख में कुलाध्यक्ष द्वारा सम्मान आदि के नियम बताये गये हैं, जो बहुत कुछ शैवाश्रमों (शैव मठों) की भाँति ही हैं—

विद्या-सम्पन्न आचार्य जिसने बौद्ध शास्त्र और व्याकरण पढ़े हैं, उसका सम्मान ब्राह्मण से कुछ कम होना चाहिए।

इससे ज्ञात हुआ है कि कम्बोज देश में ब्राह्मणों का सम्मान बौद्धों से अधिक था।

(२) बौद्ध प्रसार—महापराक्रमबाहु (११६४-८७ ई०) ने कम्बुज राजा के पास उपहार के साथ एक राजकन्या भी भेजी थी। बर्मा के राजा ने उसे पकड़ मँगवाया। उसके प्रतिशोध में पराक्रम ने भी सैनिक अभियान भेजकर बर्मा के कुसुमी बन्दरगाह को लुटवाया। कम्बोजराज जयवर्मा सप्तम (११८२-१२०२) ने पेगू पर अपनी विजयपताका फहराकर बदला लिया। जयवर्मा सप्तम के राज्य की सीमा चीन से बंगाल की खाड़ी तक थी। जयवर्मा के मरने के बाद परम शासन लिखा गया जिससे ज्ञात होता है कि वह बौद्ध था—कट्टर नहीं क्योंकि ब्राह्मणों का प्रभाव अभी कम नहीं हुआ था। उसके एक शिलालेख में आदिनाथ के साथ बुद्ध पूजित हैं फिर बोधिचार्य पूजित हैं जिससे संसार का अर्थ स्पष्ट होता है, उस संघ का वर्णन है फिर क्षत्रपुम के सजीव अवतार लोकेश्वर की वन्दना है। इससे पता लगता है कि उसका आदर स्वरूप पालि बौद्ध धर्म नहीं महायान बौद्ध धर्म था। इसी लेख में आगे कहा गया है—"उसने चम्पा जाकर युद्धक्षेत्र में वहाँ के राजा को पकड़ कर फिर दयावश उसे राज्य देकर छोड़ दिया। उसके इस गौरवपूर्ण कृत्य को दूसरे राजाओं ने सुना। राजा ने अपने गुरु के परिवार को राजवंशिक की भाँति सेनापति की उपाधि दी"[1]।

---

१ द्र०—"बौद्ध संस्कृति" पृ० ६८३।

जयवर्मा सप्तम (११८२-१२०२ ई०) ने 'राजविहार' नामक नगर बनाकर उसे "मुनीन्द्रमाता" (प्रज्ञापारमिता) की सेवा के लिए दान में दे दिया। प्रज्ञापारमिता को अपनी माँ की मूर्ति के रूप में उसने बनवाया था। प्रज्ञापारमिता की मूर्ति से प्रकट है, कि वह महायान को मानता था, जो उस समय नालन्दा और विक्रमशिला में मान्य था। राजा और भूमिपतियों ने ३,१४० गाँव मन्दिर को दिये थे जिनमें सब मिलाकर १२,६४० व्यक्ति रहते थे। वहाँ पर ६६,६२५ स्त्री-पुरुष देवपरिचारक थे। बर्मी और चम्पा (के बन्दी) सब मिलाकर ७९,३६५ व्यक्ति होते थे। चीनी इतिहास में भी जयवर्मा सप्तम का 'चम्पा' को जीतकर अपने राज्य में मिलाने का उल्लेख है।

राजा ने भारी परिमाण में चाँदी-सोना और हीरे आदि इस मन्दिर को भेंट-स्वरूप दिया था। वहाँ पर ९७० विद्यार्थी अपने अध्यापकों के साथ रहते थे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इसने ११७ आरोग्यशालायें और १६८ धर्मशालायें स्थापित की थीं जिनमें वर्ष में ८३८ गाँव लगे थे।

जयवर्मा सप्तम के पश्चात् इन्द्रवर्मा द्वितीय फिर जयवर्मा अष्टम फिर श्रीन्द्रवर्मा और भी इन्द्रजयवर्मा गद्दी के अधिकारी हुए। इन शासन-कालों में कम्बोज का पतनारम्भ हो गया। चीन मंगोलों के हाथ में था। कुब्लैखान ने पहले चम्पा लिया फिर वहीं से इस कम्बुज को करद बनाने के उद्देश्य से १२९६ ई० में वहाँ गया। इसमें वह सफल न हुआ पर कम्बोज के लोगों के बारे में उस दूत ने बहुत-सी आश्चर्य बातें लिखी हैं। भिक्षुओं के बारे में वह कहता है—

"वे अपना सिर मुंडाते हैं, पीला कपड़ा पहनते हैं, दाहिना कंधा नंगा रखते हैं, वे मांस-मछली खाते हैं, पर मद्य नहीं पीते। जिन पुस्तकों का वे पाठ करते हैं उनकी संख्या बहुत है और वे तालपत्र पर लिखी जाती हैं। इन भिक्षुओं में कुछ के पास चीन के सदृश पालकियाँ और सोने व चाँदी के छाते होते हैं। गम्भीर बातों पर राजा इनसे परामर्श लेता है। यहाँ बौद्ध भिक्षुणियाँ नहीं हैं।"

इससे यह पता चलता है कि तेरहवीं सदी में जहाँ पर महायान-वज्रयान का प्रभाव कम होकर पालि बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ चुका था। मांस मछली का ग्रहण तथा मद्य से परहेज इसी कारणवश था।

वह फिर लिखता है—

"शैव अपने जूड़ों को लाल या सफेद कपड़ों से बांधते हैं। उनके मन्दिर बौद्ध मन्दिरों से छोटे होते हैं क्योंकि ताव् (ब्राह्मण) धर्म उतना समृद्ध नहीं है जितना कि बौद्ध धर्म। वे दूसरे के हाथ से भोजन नहीं ग्रहण करते और न खुले आम खाते हैं। गृहस्थों के लड़के पढ़ने के लिए भिक्षुओं के पास जाते हैं और बड़े होने पर गृहस्थ बनने के लिए (घर) लौट जाते हैं। लेख साधारणतया काले मृगचर्म पर लिखा जाता है।"

कम्बोज के हजारों शिलालेख संस्कृत में गद्य-पद्य रूप में प्राप्त हैं।

(३) कम्बुज भाषा और संस्कृत—आज भी वहाँ ब्राह्मण धर्म कम नहीं है पर धार्मिक क्षेत्र में पालि का आधिपत्य है। ख्मेर (कम्बोज) लिपि प्राचीन पल्लव तथा चालुक्य लिपियों से उद्भूत है जिनसे सुदूर भारत तथा सिंहल की भी लिपियाँ विकसित हुईं। आज भी कम्बोज भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्राप्य है जिनका उच्चारण ख्मेरों ने अपने अनुरूप कर लिया है। उदाहरणस्वरूप संस्कृत का 'देवता' शब्द सामान्य ख्मेर भाषा में 'तेपदा' और साहित्यिक ख्मेर भाषा में 'तेवदा' हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य शब्द भी हैं।

(४) महायान से हीनयान—कम्बुज में बौद्ध धर्म वज्रयान तक नहीं पहुँचा था। वह महायान तक ही आ पाया था। वज्रयान में पहुँचने पर उसे भारत जावा सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) आदि की ही भाँति नष्ट होना पड़ता। लेकिन हीनयान (पालि पिटक) ने आकर उसकी रक्षा कर ली। स्याम (थाई) उस परिवर्तन में सहायक हुआ जहाँ बर्मा पहले ही पहुँच चुका था। थाई 'सुखोदया' को कम्बोज से छीन चुके थे। सिंहल से आकर पालि बौद्ध धर्म को पहले स्यामियों ने स्थापित किया।

चौथा अध्याय

४ आधुनिक भारत में पालि

भारत ने तो चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म से छुट्टी पा ली थी परन्तु उस पर बौद्ध धर्म ने जो अमिट सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ा था उसके कारण उसे फिर उसे बुलाना पड़ा। इसके निमित्त स्वरूप कितने ही व्यक्ति हैं, जिनमें पहला नाम अनगारिक धर्मपाल का आता है जिन्होंने अपनी मातृभूमि सिंहल को छोड़कर अपना शेष सम्पूर्ण जीवन भारत में इस कार्य के लिए दिया और अन्त में यहीं 'सारनाथ' में इस शरीर-कलेवर को १९३३ ई० में छोड़ा। इसके बाद डाक्टर अम्बेडकर ने लाखों की संख्या में शाक्य-पुत्रों को त्रिरत्न की शरण में खड़ा कर दिया। आज जो बौद्ध धर्म भारत को अपनी ओर खींच सका है, वह पालि बौद्ध धर्म ही है।

पालि-पिटक-ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में विशेषकर बंगला और हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। बंगाल में 'चटगाँव' वाले पहले से ही बौद्ध थे पर बंगला में संख्या में उतने ग्रन्थों का अनुवाद न हो सका जितना हिन्दी में आज तक सम्पन्न हो पाया है। 'दीघनिकाय' (राहुल काश्यप) 'मज्झिमनिकाय' (राहुल) 'संयुत्तनिकाय' (काश्यप धर्मरक्षित) 'अङ्गुत्तरनिकाय' (आनन्द कौसल्यायन) 'विनयपिटक' (राहुल) एवं 'जातक' (आनन्द कौसल्यायन) आदि के अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं। 'अभिधम्मपिटक' के मूल ग्रन्थों का अनुवाद करनेवाले तथा पढ़नेवालों दोनों ही के लिए हौवा-सा है। अतः इस ओर प्रवृत्ति नहीं हो रही है परन्तु 'अभिधम्मपिटक' के सारभूत ग्रन्थ' अभिधम्मत्थसङ्गह' (आचार्य अनुरुद्ध कृत) का हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कर दिया है।

भारत में आज लाखों नर-नारी बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुए हैं और हो रहे हैं। इनके शील-ग्रहण की वाणी पालि में उच्चरित होती है। भारत का

ही मूल पालि साहित्य सिंहल बर्मा कम्बोज तथा स्याम की लिपियों में छपा था। रोमन लिपि में भी वह 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' की कृपा से प्रकाशित हो गया था। परन्तु भारत की किसी भी लिपि में उसका न होना लज्जा की बात थी। हाल में ही नव नालन्दा ने इस कार्य को प्रारम्भ किया और कुछ ही वर्षों में विपुल गति से नागरी में सम्पूर्ण त्रिपिटक-प्रकाशन कार्य को भिक्षु जगदीश काश्यप तथा उनकी शिष्यमण्डली ने सम्पन्न कर डाला। इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन का श्रेय भिक्षु जगदीश काश्यप को है।

काश्यप जी तथा पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के निर्देशन में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय भी अट्ठकथाओं के नागरी संस्करण का प्रकाशन प्रारम्भ करनेवाला है और इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथा' को लिया गया है।

पालि साहित्य का बृहद् इतिहास हिन्दी में डाक्टर भरतसिंह उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत हो चुका है। वर्तमान ग्रन्थ को १५० पृष्ठों में लिखना था इसलिए बहुत विस्तार नहीं किया जा सका। पालि भाषा-काव्य के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए 'पालि काव्यधारा' लिख चुका हूँ जो जल्दी ही 'साहित्य अकादमी' से प्रकाशित होने जा रही है।

—०—

चौथा अध्याय

४ आधुनिक भारत में पालि

भारत ने तो चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म से छुट्टी पा ली थी परन्तु उस पर बौद्ध धर्म ने जो अमिट सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ा था उसके कारण उसे फिर उसे बुलाना पड़ा। इसके निमित्त स्वरूप कितने ही व्यक्ति हैं, जिनमें पहला नाम अनगारिक धर्मपाल का आता है जिन्होंने अपनी मातृभूमि सिंहल को छोड़कर अपना शेष सम्पूर्ण जीवन भारत में इस कार्य के लिए दिया और अन्त में यहीं 'सारनाथ' में इस शरीर-कलेवर को १९३३ ई० में छोड़ा। इसके बाद डाक्टर अम्बेडकर ने लाखों की संख्या में भारत-पुत्रों को त्रिरत्न की शरण में खड़ा कर दिया। आज जो बौद्ध धर्म भारत को अपनी ओर खींच सका है, वह पालि बौद्ध धर्म ही है।

पालि-पिटक-ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में विशेषकर बंगला और हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। बंगाल में 'चटगाँव' वाले पहले से ही बौद्ध थे पर बंगला में संख्या में उतने ग्रन्थों का अनुवाद न हो सका जितना हिन्दी में आज तक सम्पन्न हो पाया है। 'दीघनिकाय' (राहुल काश्यप) 'मज्झिमनिकाय' (राहुल) 'संयुत्तनिकाय' (काश्यप धर्मरक्षित), 'अङ्गुत्तरनिकाय' (आनन्द कौसल्यायन) 'विनयपिटक' (राहुल) एवं 'जातक' (आनन्द कौसल्यायन) आदि के अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं। 'अभिधम्मपिटक' के मूल ग्रन्थों का अनुवाद करनेवाले तथा पढ़नेवालों दोनों ही के लिए समस्या-सा है। अतः इस ओर प्रवृत्ति नहीं हो रही है परन्तु 'अभिधम्मपिटक' के सारभूत ग्रन्थ 'अभिधम्मत्थसङ्गह' (आचार्य अनुरुद्ध कृत) का हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कर दिया है।

भारत में आज लाखों नर-नारी बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुए हैं और हो रहे हैं। इनके शील-शरण की वाणी पालि में उच्चरित होती है। भारत का

ही मूल पालि साहित्य सिंहल, बर्मा, कम्बोज, तथा स्याम की लिपियों में छपा था। रोमन लिपि में भी वह 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' की कृपा से प्रकाशित हो गया था। परन्तु भारत की किसी भी लिपि में उसका न होना लज्जा की बात थी। हाल में ही नव नालन्दा ने इस कार्य को प्रारम्भ किया और कुछ ही वर्षों में विद्युत गति से नागरी में सम्पूर्ण त्रिपिटक-प्रकाशन कार्य को भिक्षु जगदीश काश्यप तथा उनकी शिष्यमण्डली ने सम्पन्न कर डाला। इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन का श्रेय भिक्षु जगदीश काश्यप को है।

काश्यप जी तथा पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के निर्देशन में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय भी अट्ठकथाओं के नागरी संस्करण का प्रकाशन प्रारम्भ करनेवाला है और इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथा' को लिया गया है।

पालि साहित्य का बृहत् इतिहास हिन्दी में डाक्टर भरतसिंह उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत हो चुका है। वर्तमान ग्रन्थ को १५० पृष्ठों में लिखना था इसलिए बहुत विस्तार नहीं किया जा सका। पालि-भाषा-काव्य के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए 'पालि काव्यधारा' लिख चुका हूँ, जो जल्दी ही 'साहित्य अकादमी' से प्रकाशित होने जा रही है।
